जीवन ही परमात्मा है। जीवन के अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं। जो जीवन को जी
ने की कला लेते हैं, वे प्रभु के मंदिर के निकट पहुंच जाते हैं। और जो जीवन से भा
गते हैं वे जीवन से तो वंचित होते ही हैं, परमात्मा से भी वंचित हो जाते हैं। परमा
त्मा अगर कहीं है तो जीवन के मंदिर में विराजमान है और जिन्हें भी उस मंदिर में
प्रवेश करना है, वे जीवन के प्रति धन्यता का बांध आनंद और अनुग्रह का भाव ले
कर ही प्रवेश कर सकते हैं। लेकिन आज तक ठीक इससे उल्टी बात समझायी गयी
है। आज तक समझाया गया है, जीवन से पलायन (एस्केप) जीवन से पीठ फेर लेना
, जीवन से दूर हट जाना, जीवन से मुक्ति की कामना। आज तक यही सब सिखाया
गया है और इसके दुष्परिणाम हुए हैं। इसके कारण ही पृथ्वी एक नरक और दुख
का स्थान बन गयी है। जो पृथ्वी स्वर्ग बन सकती थी, वह नरक बन गयी है।
मैंने सुना है, एक संध्या स्वर्ग के द्वार पर किसी व्यक्ति ने जाकर दस्तक दी। पहरेदार
ने पूछा, 'तुम कहां से आते हो?' उसने कहा, 'मंगल ग्रह से आ रहा हूं। पहरेदार
ने कहा, 'तुम नरक जाओ। यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं है। स्वर्ग के दरवाजे तुम्हारे ि
लए नहीं हैं। अभी नरक जाओ। वह आदमी गया भी न था कि उसके पीछे एक और
आदमी ने भी द्वार खटखटाया। पहरेदार ने फिर पूछा—तुम कौन हो? उसने कहा,
मैं एक मनुष्य हूं और पृथ्वी से आया हूं। द्वारपाल ने दरवाजा खोल दिया और कहा
तो तुम आ जाओ, तुम नरक से ही रहकर आ रहे हो (यू हेव बीन थ्रू हेल आलरेडी
) अब तुम्हें और किसी नरक में जाने की जरूरत नहीं।
मनुष्य ने पृथ्वी की जो दुर्गति कर दी है वह बड़ी हास्यजनक और देखने जैसी है। औ
र बहुत भले लोगों ने इस दुर्गति में हाथ बंटाया है। वे सारे लोग जिन्होंने जीवन की
निंदा की है और जीवन को तिरस्कृत (कन्डम) किया है, जिन्होंने जीवन को असार
और बुरा कहा है, जिन्होंने जीवन के प्रति घृणा सिखायी है, उन सारे लोगों ने पृथ्व
ी को नरक बनाने में हाथ बंटाया है। जीवन के प्रति दुर्भाव छोड़ना होगा। धार्मिक म
नुष्य को मन में जीवन के प्रति एक धन्यता का, एक कृतज्ञता(ग्रेटीटयूड) का भाव
लेना होगा। जीवन उसे असार नहीं दिखाई पड़ेगा। और अगर कहीं जीवन असार मा
लूम होता है तो वह समझेगा कि मेरी कोई भूल होगी जिससे जीवन गलत दिखाई प.
ड रहा है। जब भी जीवन गलत दिखाई पड़ता है तो धार्मिक आदमी अपने को गलत
समझते हैं। लेकिन मनुष्य की पुरानी भूलों में से एक यह है कि अपनी भूल दूसरे प
र थोप देने की उसकी पुरानी प्रवृति है। अपनी गलती को, अपने दोष को, अपनी व्य
र्थता (मीनिंगलेसनेस) को हम जीवन पर थोपकर मुक्त हो जाते हैं कि जीवन ही दु
ख है, हम क्या करें।
सचाई दूसरी है। हम जिस चित्त को लिए बैठे हैं वह दुख का सृजन करने वाला चि
त्त है। हम जिस मन को लिए बैठे हैं, जिन प्रवृतियों को लिए बैठे हैं, वे प्रवृतियां दु
ख को पैदा करने वाली और दुख को जन्म देने वाली वृतियां हैं। पृथ्वी वैसी ही हो
जाती है जैसे हम हैं। हम मौलिक रूप से केंद्रिय हैं, पृथ्वी नहीं।

इस पृथ्वी को आप वैसा ही पाएंगे जैसे आप हैं। इस पृथ्वी को आप आनंद पूर्ण पाएंगे , अगर आपके हृदय में आनंद की वीणा बजनी शुरू हो गयी हो। और इसी पृथ्वी क ो आप दुख से भरा पाएंगे, अगर आपके हृदय का दीया बुझा है और अंधकारपूर्ण है। आपके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। पृथ्वी जरूर वही है जो आप हैं। जीवन को हम जिस दृष्टि से देखते हैं इस पर ही सब कुछ निर्भर करता है। धार्मिक व्यक्ति जीवन से भागने वाला व्यक्ति नहीं है। भागने वाले होंगे कमजोर, भागने वाले होंगे सुस्त और आलसी, भागने वाले होंगे डरपोक और कायर, जिनमें जीवन का सामना करने का साहस और हिम्मत नहीं है। धार्मिक व्यक्ति से ज्यादा साहसी तो कोई होत ा ही नहीं। धार्मिक व्यक्ति भागता नहीं है, स्वयं को बदलता है और स्वयं की बदला हट के साथ ही पाता है कि सारा जीवन बदल गया है। जिस दिन वह खुद को बदल लेता है उस दिन वह पाता है कि सारे जीवन की पूरी स्थिति बदल गयी है। जीवन कुछ और हो गया है। हमारी आंखों पर निर्भर है वह, जिसे हम देखते हैं। हमारे प्र ाणों पर निर्भर है वह, जिसका हम अनुभव करते हैं। और इसीलिए मैं कहता हूं जी वन के प्रति आनंद का भाव, जीवन के प्रति अहोभाव, जीवन के प्रति अनुग्रह का बो ध, यह धार्मिक व्यक्ति की जीवन क्रांति का पहला सूत्र है।

दूसरा सूत्र है जीवन के प्रति आश्चर्य का बोध। तीन हजार वर्षों में अगर मनुष्य ने कोई चीज खो दी है तो आश्चर्य खो दिया है। आश्चर्य के साथ ही खो गया है धर्म। आश्चर्य के साथ ही खो गया है जीवन का रहस्य; आश्चर्य के साथ ही खो गया है वह सब जो रहस्यपूर्ण (मिस्टिरियस) है। आश्चर्य हमने कैसे खो दिया है? छोटे बच्चे तो आज भी आश्चर्य को लेकर पैदा होते हैं, लेकिन मां-बाप उनके आश्चर्य का ग ला घोंट देते हैं। छोटे बच्चे तो आज भी वैसे ही पैदा होते हैं जैसे पहले होते थे। लेि कन उनके आश्चर्य को हम उनके बोध के जगने के पहले ही नष्ट कर देते हैं। हमार ी सारी शिक्षा संस्थाएं हमारे सारे संस्कार देने वाली व्यवस्था हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति एक चीज की बुनियादी शत्रु है और वह चीज है आश्चर्य का भाव। पहले त ो धर्मों ने आश्चर्य के भाव को नष्ट कर दिया। कैसे किया? जीवन में जो जो अज्ञात (अननॉन)

था, और अज्ञात ही नहीं, जो अज्ञेय (अननॉएबिल) था, धर्मों ने यह घोषणा कर दी है कि वह सब हम जानते हैं। धर्मों ने कह दिया कि सृष्टि कैसे बनी, हमें पता है। परमात्मा ने कैसे प्रकृति और सृष्टि बनायी है, यह हमें पता है। धार्मिक लोगों ने बहु त असत्य बोला है। क्या दुनिया में इससे बड़ा कोई असत्य हो सकता है कि हमें पत ा है कि जीवन कैसे जन्मा, कि हमें पता है कि परमात्मा क्या है? परमात्मा और ज ीवन है अज्ञात अज्ञात ही नहीं अज्ञेय। लेकिन धर्मों ने यह घोषणा की कि हमें पता है। धर्म गुरुओं ने यह घोषणा की कि हमें मालूम है। उन्होंने इतने जोर से दावा कि या कि हमें पता है और फिर उन्होंने यह भी कहा है कि अगर कोई कहेगा कि हमें पता नहीं है और यह कोई अगर सिद्ध करना चाहेगा कि तुम अज्ञानी हो तो हम अ

पनी दलील को तलवार से सिद्ध करके बता देंगे कि हम जो कहते हैं वह ठीक है। ि जसके हाथ में तलवार है वह जो कहता है सब ठीक है।

मनुष्य को पता नहीं है कुछ भी। मनुष्य का अज्ञान बहुत गहरा है, लेकिन कुछ अहं कारी लोगों ने, कुछ ऐसे लोगों ने जो यह स्वीकार नहीं कर सकते थे कि हम नहीं जानते हैं, जानने का भ्रम पैदा किया। क्योंकि न जानने की स्वीकृति बहुत बड़ी विन म्रता (ह्यूमिलिटी) है। जो वस्तुतः धार्मिक होता है उसी में वह विनम्रता होती है कि मैं नहीं जानता हूं। लेकिन पंडित में वह विनम्रता नहीं होती है कि मैं नहीं जानता हूं। उसकी घोषणा होती है कि मैं जानता हूं। न केवल यही, बल्कि यह कि दूसरे जो जानते हैं वह गलत जानते हैं। ठीक तो केवल मैं ही जानता हूं। मेरी किताब ठीक। मेरा संप्रदाय ठीक। मेरा तीर्थंकर ठीक। मेरा पैगंबर ठीक। मेरा अवतार ठीक। मैं ज ो जानता हूं वह ठीक है और बाकी सब गलत है। इस तरह की घोषणाओं की निरं तर पुनरुक्ति से और बच्चों के मन में बचपन से ही इन बातों को प्रविष्ट करा देने से वह जो जीवन में अज्ञात था, वह विलीन हो गया और छिप गया। हमें लगने ल गा कि हम सब कुछ जानते हैं और जब मनुष्य को लगने लगता है कि मैं सब कुछ जानता हूं तो आश्चर्य की कोई संभावना नहीं रह जाती। तब विस्मय का कोई कार ण नहीं होता। तब रहस्य के प्रविष्ट होने का कोई द्वार नहीं रह जाता। आदमी अपने ज्ञान के कारागृह में ही बंद हो जाता है और वह चारों तरफ जो अज्ञात मौजूद है उसके लिए कोई दरवाजा, कोई खिड़की नहीं रह जाती कि उसमें वह प्रवेश करे।

पहले धर्मों ने मनुष्य के आश्चर्य की हत्या की--धर्म शास्त्रों ने धर्म गुरुओं ने। फिर उ नके पीछे आया विज्ञान, और विज्ञान ने और भी मनुष्य को यह ख्याल दे दिया कि हम सब जानते हैं। विज्ञान ने भी फिक्शन खड़े किये। क्रिश्चियन्स कहते हैं कि ईश्वर ने चार हजार सौ वर्ष पूर्व दुनिया, की सृष्टि की। छह दिन में सृष्टि की और सांतवें दिन विश्राम किया, रविवार के दिन। फिर विज्ञान आया और विज्ञान ने पुरानी कल पनाओं को तो कहा कि कल्पनाएं(फिक्शन) हैं, लेकिन नयी कल्पनाएं खड़ी कर दीं। वैज्ञानिक कहते हैं कि परमात्मा ने सृष्टि की, यह तो पता नहीं। लेकिन अरबों वर्ष पहले धुएं की नीहारिकाएं थीं। उन्हीं नीहारिकाओं से सूरज का जन्म हुआ। सूरज से पृथ्वी का जन्म हुआ। पृथ्वी से चांद पैदा हुआ है। ये सब बातें भी अत्यंत झूठी और बेबुनियाद हैं। इन बातों के लिए भी न कोई कारण है और न कोई वैज्ञानिक आधार है इन बातों को कहने का। लेकिन आदमी अपने अज्ञान को स्वीकार ही नहीं करना चाहता। किसी न किसी भांति वह यह भ्रम पैदा करना चाहता है कि हम सब जान ते हैं।

एडीसन का नाम आपने सुना होगा। एक हजार अविष्कार किए एडीसन ने। शायद दु निया में किसी एक आदमी ने इतने अविष्कार नहीं किये। विद्युत की बात को एडीस न जितना जानता था शायद कोई नहीं जानता था। एडीसन अमेरिका के एक छोटे से गांव में गया। उस गांव के स्कूल के बच्चे ने एक प्रदर्शनी सजायी थी। उसमें कुछ विद्युत के खेल-खिलौने बनाये थे जो बिजली से चलते थे। मोटर बनायी थी, जहा

ज बनाया था। एडीसन भी देखने गया था। बच्चों को क्या पता था कि जो देखने आ या है वह जगत का विद्युत के संबंध जानने वाला सबसे बड़ा विचारक है। एडीसन उन बच्चों के खिलौनों को देखकर खूब खुश होने लगा और उसने पूछा, बच्चो ये च लते कैसे हैं? बच्चों ने कहा इलेक्ट्रिसिटी से, विद्युत से, एडीसन ने पूछा, क्या मैं पूछ सकता हूं , यह विद्युत क्या है वे बच्चे ठगे रह गये। बच्चों के अध्यापक भी ठगे र ह गये। प्रधान अध्यापक भी ठगे रह गये। उनमें से किसी को पता भी नहीं कि यह आदमी एडीसन है। फिर एडीसन ने कहा आप घबराएं नहीं मेरा नाम है एडीसन। अ ापने सुना होगा, वह बोले सुना है। आप ही ने तो विद्युत की खोज बीन की है। एडी सन ने कहा, तुम निश्चिंत रहो। चिंतित मत हो। मैं भी नहीं जानता हूं। मैं भी उत्त र नहीं दे सकता हूं कि यह विद्युत क्या है? मुझे भी कोई पता नहीं कि विद्युत क्या है? मुझे भी कोई पता नहीं कि विद्युत क्या है।

हम केवल विद्युत का उपयोग करना सीख गये हैं। विद्युत क्या है हमें पता नहीं। अ णु क्या है,हमें पता नहीं। अणुबम जरूर हम बनाना सीख गये हैं। एक माली बगीचे में एक बीज बो देता है और पौधा बड़ा हो जाता है। पूछें माली से पौधा क्या है? पू छें माली से बीज पौधा कैसे बन जाता है? माली कहेगा मुझे पता नहीं। हालांकि बी ज को मैं बो देता हूं और पौधा बन जाता है। मैं बीज से पौधा बनाना सीख गया हूं । लेकिन पौधा क्या है! बीज क्या है, मुझे पता नहीं।

विज्ञान भी इस बगीचे में काम करने वाले मालियों की तरह है, जो बीज से पौधा ब नाना सीख गया है। लेकिन जीवन क्या है? विज्ञान के पास भी कोई उत्तर नहीं है। और मैं आपसे कहता हूं, इसका मतलब यह मत समझ लेना कि धर्मों के पास उत्तर है। धर्मों के पास भी उत्तर नहीं है। विज्ञान के पास भी उत्तर नहीं है। आज तक अ ादमी के लिए जीवन के जो चरम प्रश्न हैं उनका कोई भी उत्तर उपलब्ध नहीं है। प हले धार्मिक लोग धोखा देते रहे कि हमें उत्तर पता है। अब वैज्ञानिक धोखा दे रहे हैं कि हमें उत्तर ज्ञात है। और चाहे धार्मिक धोखा दें, चाहे वैज्ञानिक, इससे कोई फ र्क नहीं पड़ता है। आदमी को धोखा दिया जाता रहा है।

आज इस सीधे से सत्य को हम स्वीकार करने का साहस नहीं कर सकते कि हमें ज्ञा त नहीं है कि सत्य क्या है। सत्य अज्ञात है। जीवन और परमात्मा सब अज्ञात हैं। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि अगर दुनिया में चाहते हैं आप कि धर्म वापस लौट अ ाये तो रहस्य के बिना, विस्मय के बिना, आश्चर्य के बिना धर्म वापस नहीं लौट सक ता है। पंडितों ने, दार्शनिकों ने चिंतकों ने बड़े कल्पना के जाल रचे, शब्दों के जाल रचे, अनुमानों के जाल रचे और इतने तर्क दिए उन अनुमानों के लिए के सामान्य मनुष्य को यह भ्रम पैदा हो गया कि शायद ये लोग जानते हैं। शायद इन्हें पता है। और इस जानने के भ्रम में, इस ख्याल में कि हम जान गये हैं, जीवन के प्रति हमारे जो कदम उठ सकते थे, रहस्य के, विस्मय के, आश्चर्य के वे उठने बंद हो गये हैं। बचपन से ही हम बच्चों के साथ किये जाने वाले बहुत बड़े-बड़े अपराधों में यह ए क बड़ा अपराध है। बच्चे पूछते हैं वृक्ष क्या है? दरख्त हरे क्यों हैं? आकाश में तारे

क्यों हैं? यह तितली इतनी सुंदर क्यों है? और हम सब इस भांति सिर उठाकर उत्तर देते हैं कि जैसे हमें पता है। और छोटे बच्चे समझ लेते हैं कि पिता जो कहते हैं ठीक कहते होंगे।

छोटे बच्चों को धोखा दिया जा रहा है। उनके भोलेपन का, उनकी निर्दोषता(इनोसेंस) का शोषण किया है। ईमानदार मां-बाप और ईमानदार शिक्षक कहेंगे कि हमें कुछ भी पता नहीं। हम भी तितलियों के मामले में, आकाश और तारों के मामले में उतने ही बच्चे हैं जितने की तुम हो। हमें कुछ भी पता नहीं है। जीवन के संबंध में हम भी उतने ही अज्ञानी हैं जितने तुम हो। तो बच्चों के भीतर आश्चर्य का और विस्मय का विकास होगा। तो वे युवा होते-होते अत्यंत आश्चर्य से भर जाएंगे। उनके हृदय में आश्चर्य लहरें लेने लगेगा। वे विस्मय से भर जायेंगे। वे जीवन के प्रति 'जानते हैं,' इस भाव से नहीं, बल्कि 'नहीं जानते हैं' इस भाव से देखेंगे। लेकिन हम, एक भूल से पड़ जाते हैं, एक परिचय(एक्वेंटेंस) को ज्ञान (नॉलेज) समझ लेते हैं। एक मां अपने बच्चे को जन्म देती है। निश्चित ही अपने पेट में बड़ा करती है, लेकिन क्या वह जानती है, जो पेट में बड़ा हो रहा है वह क्या है? अगर मां इस भूल में पड़ जाए तो गलती करती है। यद्यपि उसके ही पेट में जो जन्म ले रहा है और बड़ा हो रहा है उसके ही खून और मांस-मज्जा से जो पल रहा है वह भी उसके लिए अज्ञात और अपरिचित है। वह भी उसके लिए पता नहीं कौन है और क्या है। वह बच्चा पैदा होगा। मां सोचती होगी कि मैं जानती हूं अपने बच्चे को। झूठी है यह बात। कोई मां अपने बेटे को नहीं जानती है। कोई बाप अपने बेटे को नहीं जानता। लेकिन परिचय हो जाता है तो हम सोचते हैं कि हम जानते हैं। फिर हम नाम रख लेते हैं। बच्चे का नाम राम और कृष्ण और कुछ। और सोचते हैं कि पहचान गये। असलियत यह है कि उसका कोई नाम है जो पैदा हुआ है। नाम झूठे हैं जा हम दे रहे हैं। हम ही इन नामों को रखते हैं। और हम ही इन नामों को पुकारेंगे और फिर हम कहेंगे कि हम भलीभांति जानते हैं कि यह राम है। यह राम नाम झूठा है कि उसका नाम क्या है। जो घर में जन्म लेता है हम उससे परिचित हैं। लेकिन रोज-रोज उसे देखते हैं तो लगता है कि उसे जानते हैं।

पति सोचता है कि हम पत्नी को जानते हैं पत्नी सोचती है कि हम पति को जानते हैं। कोई किसी को नहीं जानता। पति और पत्नी तो बहुत दूर हम अपने को ही नहीं जानते। स्वयं का भी हमें कोई पता नहीं है। और जिन्हें स्वयं को भी पता नहीं है उन्हें और किस चीज का पता हो सकता है? जिन्हें अपना ही ज्ञान नहीं उन्हें और किस चीज का ज्ञान हो सकता है? हमारा अज्ञान बहुत गहरा है। लेकिन इस अज्ञान को हम ज्ञान के शब्द सीखकर छिपा लेते हैं और ज्ञानी बन जाते हैं। अज्ञान से भी खतरनाक वह ज्ञान है जो अज्ञान को छिपाने में सहयोगी बनता है। वे वस्त्र जो अज्ञान को छिपा लेते हैं बहुत खतरनाक हैं। आदमी के जीवन में जो भी सत्य है और सुंदर है और श्रेष्ठ है उसे ज्ञान के वस्त्रों में ही खो दिया है। पता है आपको सत्य क्या है? पता है आपको शुभ क्या है? कुछ भी हमें पता नहीं है। लेकिन चूंकि किसी क

ो भी कुछ पता नहीं है और हम सभी यह घोषणाएं करते हैं कि हमें पता है। इसलि
ए मनुष्य जाति में से कोई उंगली उठाकर नहीं कह सकता कि झूठ बोल रहे हो। ह
म सब एक ही नाव पर सवार हैं। हम सब एक ही बीमारी से पीड़ित हैं, इसलिए ह
में पता भी नहीं चलता कि कोई बड़ा झूठ जीवन में बोला जा रहा है। बहुत बड़े-बड़े
झूठ प्रचलित हुए हैं, लेकिन अगर झूठ सभी को पकड़ ले तो उनका पता चलना बं
द हो जाता है।

एक बार ऐसा हो गया कि एक गांव में एक जादूगर आया और उसने आकर गांव
में कुएं में कोई मंत्र पढ़ा और कोई चीज उसमें डाल दी और कहा कि इस कुएं का
पानी जो भी पियेगा पागल हो जायेगा। सांझ होते-होते गांव में सभी लोगों ने उस
कुएं का पानी पिया, क्योंकि प्यास नहीं सही जा सकती। पागलपन सहा जा सकता है
। मजबूरी थी जानते हुए भी पागल हो जाएंगे , पानी पीना पड़ा। सारा गांव सांझ ह
ोते-होते पागल हो गया। सिर्फ राजा, उसकी रानी और उसका वजीर बच गये। उन
के मकान में दूसरा कुआं था। वे गांव के कुएं का पानी नहीं पीते थे। उनका अपना
कुंआ था। वे तीनों बच गये। पूरा गांव तो पागल हो गया है। लेकिन सांझ उन्हें पता
चला कि भूल हो गयी हमारे बचने में। पूरे गांव के लोग जुलूस बनाकर घर के सा
मने आ गए और नारा लगाने लगे और उन्होंने कहा : ऐसा मालूम होता है कि राज
ा का दिमाग खराब हो गया है। राजा को बदलेंगे हम यह राजा नहीं चल सकता। य
ह लोकतंत्र का जमाना है। पागल राजा नहीं चल सकते। उतरो नीचे महल से तुम्हा
रा दिमाग खराब हो गया है। हम तुम्हारा इलाज करेंगे।

राजा बहुत घबड़ाया। उसके सिपाही भी पागल हो गये थे। उसके नौकर चाकर भी
पागल हो गये थे। उसके सैनिक भी पागल हो गये थे। उसने अपने वजीर से कहा, '
क्या करें हम। बात उल्टी है। पागल ये लोग हो गये हैं। लेकिन भीड़ जब पागल हो
जाती है तो बताना बहुत कठिन है कि वह पागल है। क्या करें हम? वजीर ने कहा
'एक ही रास्ता है। पीछे के दरवाजे से हम भागें जितनी तेजी से भाग सकें। और
उसी कुएं का पानी पी लें जिस कुएं का इन लोगों ने पीया है तभी हम बच सकते
हैं। वह राजा और वजीर भागे। उन्होंने जाकर उस कुएं का पानी पी लिया। फिर
उस रात उस गांव में बड़ा जलसा मनाया गया और गांव के लोगों ने बड़ी खुशी मन
ायी और भगवान को धन्यवाद दिया कि राजा का दिमाग ठीक हो गया है।

जब सारा समूह एक ही पागलपन से पीड़ित होता है तो पहचानना कठिन हो जाता
है कि पागलपन क्या है। और अगर कोई आदमी पहचान ले तो नहीं आदमी उल्टा
मालूम होता है। भीड़ पागल नहीं मालूम पड़ती है। जीसस क्राइस्ट पागल मालूम पड़
ते हैं, इसलिए भीड़ ने उन्हें सूली पर लटका दिया। सुकरात पागल मालूम पड़ता है,
इसलिए भीड़ ने उसे जहर पिला दिया। मंसूर पागल मालूम पड़ता है, इसलिए भीड़
ने उसे जहर दिया। मंसूर पागल मालूम पड़ता है, इसीलिए भीड़ ने उसकी चमड़ी
खींच ली। गांधी पागल मालूम पड़ते हैं, तो भीड़ ने गोली मार दी। आज तक जमीन
पर जितने लोगों ने भीड़ के कुएं का पानी नहीं पिया उनके साथ यही व्यवहार हुआ

है और भीड़ निश्चिन्त है। भीड़ तो शक पैदा नहीं होता, क्योंकि चारों तरफ सभी लोग गवाह होते हैं कि ठीक हैं हम। मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं कि मनुष्य जाति की सबसे बड़ी विक्षिप्तताओं में सबसे बड़े पागलपनों में ज्ञान का पागलपन है। और ज्ञान में कुएं से हम सबने पानी पी लिया है। चाहे उस ज्ञान के कुएं का नाम हिंदुओं का कुआं हो, चाहे उस ज्ञान के कुएं का नाम मुसलमानों का कुआं हो, चाहे उस ज्ञान के कुएं का नाम जैनियों का कुआं हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। कुएं का नाम कुछ भी हो, लेकिन ज्ञान के कुएं से जिसने भी पानी पी लिया है उसके ज ीवन में आश्चर्य का भाव नष्ट हो जाता है। और जहां आश्चर्य गया वहां धर्म गया, वहां दर्शन गया। और जहां विस्मय गया, जहां जीवन को विस्मय से देखने वाली आं खें गयीं, वहां सब-कुछ चला गया। वहां फिर कुछ भी शेष नहीं रह जाता। फिर पर मात्मा की कोई खोज नहीं हो सकती। क्योंकि परमात्मा अगर कुछ है तो वही है जि से हम रहस्य कहते हैं, जिसे मापने और जांचने का कोई उपाय नहीं, जिसे तौलने के लिए कोई तराजू नहीं। जिसको प्रकट करने के लिए कोई शब्द नहीं। जिसको बता ने के लिए कोई शास्त्र नहीं है, कोई सिद्धांत नहीं है। लेकिन शास्त्रों और सिद्धातों और ज्ञान की दीवालें बीच में खड़ी हो जाती हैं और जीवन एक तरफ रह जाता है। बहुत दिन हुए चीन के एक गांव में बहुत बड़ा मेला लगा हुआ था। हजारों लोग वह ां इकट्ठे थे। कहीं इकट्ठे होने का मौका भर मिल जाये, फिर आदमी इकट्ठे होने से चू कते नहीं है। जरूर इकट्ठा हो जाते हैं। असल में अकेले होने से आदमी इतना घबरा या होता है कि जहां भी भीड़ का मौका मिलता है, वहां जरूर पहुंच जाता है। बहुत लोग इकट्ठे हो गये थे। बड़ा मेला था। एक कुआं था उस मेले के किनारे। उस कुएं पर कोई पाट नहीं था कोई घेरा नहीं था। एक आदमी उस कुएं में गिर गया। वह बहुत जोर-जोर से कुएं के भीतर से चिल्लाने लगा कि मुझे बचाओ,मैं मरा जा रहा हूं! लेकिन उस मेले में इतना शोर था कि कौन सुनता? एक बौद्ध भिक्षुक कुएं के प ास से निकला। उसे सुनाई पड़ा कि कोई कुएं के भीतर के चिल्लाता है कि मैं मरा जा रहा हूं, मुझे बचाओ! उस भिक्षु ने झांककर नीचे देखा और कहा, 'मेरे मित्र, ज ीवन में आनंद भी क्या है जो बचने की तुम कामना करते हो। जीवन एक दुख है। जीवन है पाप। पाप से बचने का प्रयोजन? और यह जो तृष्णा है बचने की, यह जो लोभ है जीवन का, यही अगले जन्म का बंधन हो जाएगा। शांत रहो।

उस आदमी ने कहा कि मुझे उपदेश नहीं चाहिए। कृपा करके मुझे बाहर निकालिए। लेकिन उस भिक्षु ने कहा, 'मैं किसी के कर्मों के बीच में बाधा नहीं बन सकता। तु मने कुछ किया होगा। किसी को कुएं में गिराया होगा और अब तुम गिरे हो। तुम ि पछले जन्म का कर्म-फल भोगते हो, मित्र। सुनी नहीं तुमने यह सिद्धांत की बात औ र अब मरते क्षणों में मोह छोड़ो जीवन का। शांति से मरो तो निर्वाण हो जायेगा, न हीं तो फिर लौटकर आना पड़ेगा।

भिक्षु आगे बढ़ गया। उसके पीछे ही कन्फ्यूशियस का एक संन्यासी आया। उसने भी कुएं में चिल्लाते आदमी की आवाज सुनी। वह किनारे गया और झांका। उसने कहा

कि समझ गया कन्फ्यूशियस ने लिखा है अपनी किताब में कि वही राज्य श्रेष्ठ है जो अपने कुओं पर पाट बांध देता है। जो कुओं पर पाट नहीं बांधता है वह राजा अन्यायी है। तुम घबराओ मत, हम आंदोलन उठायेंगे। हम जाकर जनता को समझाएंगे। अभी हम मेले में जाते हैं। अभी हम राजा के महल पर पहुंचते हैं। हर कुएं पर पाट होना ही चाहिए ताकि कोई गिर न सके।

उस आदमी ने कहा, 'वह पीछे करना। मैं मरा जा रहा हूं। पहले मुझे बाहर निकालो। लेकिन उसने कहा, सवाल तुम्हारा नहीं है, सवाल जनता जनार्दन का है। एक आदमी बचता है मरता है,यह सवाल नहीं है। कुएं पर पाट होना चाहिए। और तुम घबराओ मत। निश्चिन्त रहो। तुम्हारे बच्चे ऐसी दुनिया में रहेंगे जहां कुएं पर पाट हो। उसने कहा 'बच्चो का सवाल नहीं है। मैं मरा जाता हूं। उस आदमी ने कहा, बचचों के लिए एक बड़ी कुर्वानी मां-बाप को करनी पड़ती है। तुम तो तो मर जाओगे लेकिन बच्चे ऐसी दुनिया में रहेंगे जहां कोई कुएं में नहीं गिर सकेगा। तुम बेफिक्र रहो।

वह कन्फ्यूशियस भी आगे चला गया। उसने जाकर भीड़ में शोरगुल मचाया। वह एक मंच पर खड़ा हो गया। उसने समझाना शुरू कर दिया कि ऐसे कुएं नहीं चाहिए जिन पर पाट न हों। उन दोनों के चले जाने के बाद एक ईसाई साधु, एक ईसाई मिशनरी वहां से निकला। कुएं में किसी को चिल्लाता देखकर वह तत्क्षण कुएं में कूद पड़ा और उस आदमी को बाहर निकाल लिया। उस आदमी ने कहा, बहुत धन्यवाद। तुम्हीं सच्चे धार्मिक आदमी हमें मालूम पड़ते हो। एक बौद्ध भिक्षु निकला। उसने कहा कि कर्मों का फल भोग रहे हो अपने। कन्फ्यूशियस का भिक्षु निकला। उसने कहा हम राज्य में परिवर्तन करने के लिए आंदोलन चलायेंगे। तुम्हीं एक सच्चे धार्मिक हो।

उस ईसाई मिशनरी ने कहा—नहीं मित्र माफ करो। मैंने तो तुम्हें इसलिए निकाला है कुएं से, क्योंकि जीसस क्राइस्ट ने कहा है, जो सेवा करता है स्वर्ग उनको उपलब्ध होता है। हम तो यही चाहते हैं कि रोज-रोज लोग कुएं में गिरते रहें और हम उन्हें निकालते रहें। जितने ज्यादा लोग कुएं में गिरेंगे उतनी ही हमारी सेवा होगी और उतना ही स्वर्ग का राज्य (किंगडम ऑफ गाड) हमारा हो जाएगा। तुम रोज रोज गिरो और अपने घर के लोगों को भी समझाओ कि वे भी गिरें। सेवा बहुत जरूरी है। बिना सर्विस के कोई परमात्मा को पहुंचता ही नहीं है।

आदमी कुएं में मर रहा है, लेकिन उसे देखने वाला कोई भी नहीं है। क्योंकि शास्त्र बीच में आ जाते हैं। जीवन चारों तरफ है, लेकिन उसे देखने वाला कोई भी नहीं है, क्योंकि शब्द बीच में आ जाते हैं। परमात्मा हर क्षण मौजूद है। लेकिन उससे पहचान नहीं होगी, क्योंकि ज्ञान बीच में आ जाता है। ज्ञान से बड़ी बाधा, जीवन और मनुष्य के बीच दूसरा कोई अवरोध, दूसरा कोई पहाड़ नहीं है। लेकिन ज्ञान को हम समझते हैं कि बड़ी ऊंची बात है। हम समझते हैं कि ज्ञान अर्जित कर लिया तो बहुत कमाई कर ली। लेकिन ज्ञानी नहीं, केवल वे ही विनम्र लोग, केवल वे ही विनम्र ि

चत्त(हंबिल मांइड) जो जानते हैं कि हमें कुछ भी पता नहीं, उस परम सत्य के नि
कट पहुंच पाते हैं और उसे जान पाते हैं।
ज्ञान के भ्रम वाले लोग कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं होते। अज्ञान में ही जीते और न
ष्ट हो जाते हैं। यह बात बड़ी उल्टी मालूम होगी। मैं आपको यह कह रहा हूं कि अ
गर अपने अज्ञान का परिपूर्ण बोध हो जाता है तो आपके जीवन में ज्ञान का जन्म ह
ो सकता है। लेकिन वह ज्ञान बहुत दूसरा है। उस ज्ञान से जो शास्त्र मिलता है--गीत
ा, पुराण और बाइबिल से, उपनिषदों और वेदों से, महावीर और बुद्ध से जो ज्ञान ि
मलता है वह नहीं। शब्दों से जो ज्ञान मिलता है वह नहीं। शब्द हैं मुर्दा। उनका कोई
 मूल्य नहीं, उनमें कोई जीवन नहीं। खुद के प्राणों के साक्षात् से जो ज्ञान मिलता है
 वह बात और है। और उसे जानने के लिए अज्ञान का स्पष्टबोध होना चाहिए। जिसे
 अज्ञान का बोध हो जाता है , जो जानता है कि 'मैं नहीं जानता' उसके लिए रहस्
य के द्वार खुल जाते हैं। लेकिन हमने बहुत संग्रह कर रखे हैं। हम उन तोतों की भां
ति हैं जिन्हें सब-कुछ सिखा दिया गया है और याद करा दिया है। और हम इन्हीं श
ब्दों को दोहराते हैं। कोई पूछे आपसे,ईश्वर है? कौन सा उत्तर आता है आपके भीत
र। किसी के भीतर आता होगा, है, अगर उसकी किताबों में ऐसा लिखा है। अगर
उसके गुरुओं ने ऐसा बताया है। किसी के भीतर आता होगा, 'नहीं है' अगर उसकी
 किताब में ऐसा लिखा है और उसके गुरुओं ने ऐसा बताया है। हिंदुस्तान में पूछो ई
श्वर है? तो बताते हैं, 'है' और रूस में पूछो तो वह बताते हैं 'नहीं है'। हम सोच
ते हैं हिंदुस्तान बड़ा आस्तिक है और रूस बड़ा नास्तिक है। नहीं साहब, दोनों रटे हु
ए तोते बोल रहे हैं। हिंदुस्तान के तोते को बताया जा रहा है कि ईश्वर है, तो वे
कहते हैं कि ईश्वर है। रूस के तोते को बताया जा रहा है कि ईश्वर नहीं है तो वे
कहते हैं कि ईश्वर नहीं है।
सीखी हुई बातें जो दोहरा रहा है वह आदमी के पद से नीचे गिर रहा है। सीखी बा
तें जो दोहरा रहा है वह अपने को तोता बना रहा है, अपने को मशीन बना रहा है।
 लेकिन अगर मैं पूछूं कि ईश्वर है? और आपके भीतर कोई उत्तर न उठे, न हां,
न ना, मैं पूछूं ईश्वर है? और आपके भीतर सन्नाटा छा जाए। और सत्य यही होगा
 कि सन्नाटा छा जाए, क्योंकि आप नहीं जानते है कि है या नहीं।मैं पूछूं क्या ईश्वर
 है? और आपके भीतर शून्य हो जाए, आपके भीतर कोई उत्तर न आए, आप मौन
 रह जायें, आपके भीतर कोई शब्द घनीभूत न हो, आपके भीतर कोई प्रतिक्रिया(रि
सपोंस) न हो, आपके भीतर अप्रतिक्रिया (नान रिसपोंस) की स्थिति हो जाए। मैं पू
छूं ईश्वर है? और आपके भीतर सब सन्नाटा हो जाए। इस स्थिति को मैं कह रहा
हूं अज्ञान का बोध कि मुझे पता नहीं है, और इसी सन्नाटे में उसकी पगध्वनियां सुना
ई पड़नी शुरू होती हैं जो परमात्मा है। इसी मौन(साइलेंस)में जीवन का संस्पर्श उप
लब्ध होता है और तब फिर खोजने हिमालय नहीं जाना पड़ता है। और तब खोजने
गंगा के तट की यात्राएं नहीं करनी होती हैं। और तब खोजने काशी और मक्का मद
ीना नहीं जान होता है। फिर जेरूसलम की यात्रा नहीं करनी होती है। फिर मंदिर म

स्जिद में सिर नहीं टेकने पड़ते हैं। इतने शांत मन से, ऐसे मन से, जिसके पास उत्त
र हनीं है, परमात्मा के द्वार खुल जाते हैं। अगर आपका मन उस अवस्था में आ जा
येगा जहां से उत्तर नहीं आता है, जहां चुप्पी और मौन रह जाता है, तो आप एक
अदभुत द्वार को खोलने में समर्थ हो जाएंगे जिसकी आपको कल्पना भी नहीं हो सक
ती।

उस विनम्र मौन में (हंपिल साइलेंस)में कुछ घटित होता है। कोई क्रांति हो जाती है
और एक नये मनुष्य का जन्म हो जाता है। अब तक जिन लोगों ने भी जाना है उन्
होंने ज्ञान से नहीं जाना। मौन से जाना है। ज्ञान बहुत बकवासी है, ज्ञान बहुत मुखर
है और परमात्मा के निकट तो वह पहुंचते हैं जो सब भांति मौन और शांत हो जा
ते हैं, जिनके भीतर कोई उत्तर नहीं। इसलिए मैं आपसे सब उत्तर छीन लेना चाहत
ा हूं। सब उत्तर आप छोड़ दें। अपनी ज्ञान की झोली में जितने कंकड़ पत्थर हों वे
फेंक दें। आमतौर से साधु समझाते हैं कि हमने जो समझाया है उसे अपनी गांठ में
बांध लेना, छोड़ मत देना। मैं उल्टी बात समझाता हूं। मैंने जो समझाया है वह, औ
र मुझसे पहले जिन्होंने समझाया है वह सब, कृपा करके आप छोड़ दें। और अपने म
न को बिलकुल ही खाली और शून्य कर लें। अगर आज ही सारे ज्ञान को छोड़कर
चुपचाप और मौन हो सकें तो हो सकता है कि कोई अनजान अतिथि आपके द्वार क
ो खटखटाने लगे और कहे, 'खोलो मैं आ गया हूं। क्योंकि जो आदमी अपने ही ज्ञान
से भरा है, परमात्मा के ज्ञान के लायक उसके भीतर अवकाश(स्पेस) ही नहीं होता
है जो अपने ज्ञान को छोड़ देता है, उसमें परमात्मा के ज्ञान का अवतरण शुरु हो
जाता है।आकाश से वर्षा होती है। वर्षा के दिनों में पहाड़ी पर भी पानी गिरता है,
झीलों में भी पानी गिरता है, गड्ढों में भी पानी गिरता है। लेकिन पहाड़ पानी से खा
ली रह जाते हैं। क्योंकि वे खुद ही पहले से भरे हुए हैं, लेकिन गड्ढे पानी से भर जा
ते हैं, क्योंकि वे पहले से खाली हैं। बादल कुछ भेद नहीं करते कि तुम पहाड़ हो ि
क तुम गड्ढे हो। दोनों पर पानी गिरा देते हैं। लेकिन पानी गिरा हुआ व्यर्थ जाता है।
पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं, क्योंकि वे अपने में भरे हैं। उनके पास कोई रि
क्त स्थान नहीं है, कोई जगह नहीं है जहां पानी भर सकें। गड्ढे में पानी भर जाता है
। परमात्मा की वर्षा भी प्रतिक्षण हो रही है, प्रतिपल प्रतिश्वास। लेकिन जो अपने भ
ीतर भरे बैठे हैं वे खाली रह जाते हैं। और जो अपने भीतर खाली हैं वह उसके ज्ञा
न और प्रकाश से भर जाते हैं।

जीवन-क्रांति का दूसरा सुख है स्वयं को ज्ञान से खाली कर लेना। बड़ी मुश्किल है य
ह बात । आदमी और सब कुछ छोड़ सकता है, ज्ञान छोड़ने में उसके प्राण कंपते हैं
। धन छोड़ सकते हैं। हजारों लोग धन छोड़कर त्यागी हो जाते हैं। पत्नी बच्चों को
छोड़ सकते हैं। सैकड़ों लोग संन्यासी हो जाते हैं। लेकिन ज्ञान नहीं छोड़ पाता है आ
दमी। एक आदमी संन्यासी हो जाता है, फिर भी मुसलमान बना रहता है। फिर भी
हिंदू बना हरता है। मैं तो हैरान हो गया हूं कि कैसे पागलों की दुनिया है? अगर गृ
हस्थ हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, जैन हो तो समझ में आता है। लेकिन साधु

भी जैन, हिंदू मुसलमान और ईसाई कैसे हो सकता है? जिसने समाज ही छोड़ दिया उसने भी समाज का ज्ञान नहीं छोड़ा अब तक! समाज ने तो ज्ञान दिया है उसको पकड़े हुए बैठा है। एक साध भी कहता है कि मैं जैन हूं, हिंदू हूं, मुसलमान हूं। ये बीमारियां साधुओं के पास नहीं होनी चाहिए। वह धन छोड़ देता है, घर छोड़ देता है, लेकिन ज्ञान नहीं छोड़ पाता है। ज्ञान मनुष्य के अहंकार की गहरी से गहरी पकड़ है ज्ञान। इसलिए जिनको यह ख्याल हो जाता है कि हम जानते हैं वे भटक जाते हैं। उनके जानने के रास्ते बंद हो जाते हैं।

एक फकीर मर रहा था, वह मरणशैया पर पड़ा था। कुछ लोग इकट्ठे थे। वैसे जिंदा फकीर के साथ कभी कोई इकट्ठा नहीं होता, या तो मरते हुए फकीरों के पास लोग इकट्ठे होते हैं,या जो मर चुके हैं उनके पास इकट्ठे होते हैं।

आदमी मुर्दों का बड़ा पुराना पूजक है। मरते हुए फकीर के पास लोग इकट्ठे थे और पूछने लगे कि तुमने ज्ञान कहां से पाया। तुम्हें ज्ञान कैसे मिला। तुमने कैसे जाना जीवन को? तुम प्रभु को कैसे उपलब्ध हुए।

उसने कहा, 'यह बड़ा कठिन मामला है। मैं एक गांव से गुजर रहा था। मैंने बड़े-बड़े गुरुओं की शरण ली, लेकिन कोई गुरु, गुरु साबित नहीं हुआ। असल में जो भी कहते हैं कि हम गुरु हैं वे दुकानदार होते हैं। वे कभी गुरु हो नहीं सकते। तो बहुत गुरु खोजे। कहीं कोई ज्ञान नहीं मिला । बहुत शास्त्र देखे बहुत सिद्धांत याद हो गये, लेकिन जीवन में कोई फर्क न हुआ। कोई रोशनी न उतरी। लेकिन एक भ्रम पैदा हो गया कि मैं भी जानता हूं। फिर मैं एक गांव से गुजर रहा था, और जिस आदमी को यह भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूं उस भ्रम के बाद दूसरी चीज शुरू हो जाती है कि कोई फंस भर जाए उसके चंगुल में फिर वह बना उपदेश दिये बिना नहीं रह सकता । कोई उस मुट्ठी में आ भर जाय, फिर व उपदेश जरूर देगा। तो उस फकीर न कहा, मुझे ख्याल हो गया कि मैं जानता हूं। अब एक ही काम था कि जो मैंने जान लिया था उसे दूसरों को समझा दूं। एक गांव से निकल रहा था। गांव के लोग बड़े नास्तिक मालूम होते थे। कोई सभा में आया ही नहीं। वे बड़े अश्रद्धालु मालूम होते थे और दिनभर में नहीं बोल पाया था तो मेरी तो बड़ी मुसीबत हो गयी थी। तो मैं तो इस तलाश में था कि कोई एकाध श्रद्धालु मिल जाय तो उसको उपदेश दे दूं। कोई तो नहीं मिला। एक छोटा-सा बच्चा मिल गया। वह बच्चा एक हाथ में दीया लिये मंदिर में दीया रखने जाता था। मैंने उस बच्चे से कहा बेटे ठहर, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दे दे। इस दिये में रोशनी कहां से आयी है? बता सकता है इस दिये में ज्योति कहां से आयी?

उस फकीर ने कहा—मैंने सोचा था बच्चा उत्तर नहीं दे सकेगा, फिर मुझे उपदेश देने का मौका मिल जाएगा। लेकिन बच्चे ने मुझे बड़ी मुश्किल में डाल दिया। वह बच्चा हंसने लगा और उसने फूंक मार कर दीया बुझा दिया और कहा कि स्वामी जी, ज्योति कहां चली गयी? आप बता सकते हैं। अगर आप बता देंगे कि ज्योति कहां चली गयी तो मैं भी बता दूंगा कि ज्योति कहां से आयी है।

उसी दिन मेरे सारे पढ़े लिखे शास्त्र व्यर्थ हो गये। मेरी गुरुओं से पायी शिक्षा दो कौ. डी की हो गयी। मैं निपट अज्ञानी की तरह खड़ा हो गया और मुझे ख्याल आया, मैं यह भी नहीं बता सकता कि ज्योति कहां चली गयी। मैं जो कि यह भी बताता हूं कि सृष्टि कहां से आयी और सृष्टि कहां विलीन हो जाएगी। मैं तो यह भी बताता हूं कि परमात्मा पूर्व में बैठा है कि पश्चिम में। मैं तो यह भी बताता हूं कि परमात्म ा कौन-सी प्रार्थनाएं सुनकर खुश होता है और कौन सी बातें सुनकर नाराज। और मु झे यह भी पता नहीं कि ज्योति कहां चली गयी। मैंने उस बच्चे के चरणों में सिर र ख दिया और कहा कि तूने मेरा ज्ञान छीन लिया। मैं कृतार्थ हो गया। तू मेरा पहला गुरु है।

क्या आप अपने ज्ञान को छोड़ देने की हिम्मत और साहस कर सकते हैं। अगर कर सकते हैं तो आपके भी जीवन में क्रांति हो सकती है। क्योंकि ज्ञान का भाव छूटते ह ी जीवन भर जाएगा एक रहस्य से। सब अपरिचित हो जाएगा और सब अज्ञात । ि जस वृक्ष के पास से आप रोज-रोज गुजरते आज जब आप फिर उसके पास से निक लेंगे तो पायेंगे कि यह वही वृक्ष नहीं है जो कल देखा था, वे वे ही पत्ते नहीं है। ज ब घर लौटेंगे और उन्हीं बच्चों को देखेंगे जिनको कल देखा था तो आप पायेंगे कि ये वे ही बच्चे नहीं हैं। गंगा में बहुत पानी बह गया। जीवन की गंगा बहुत बदल जी है। सब नया हो जाएगा। सब अदभुत हो जाएगा। जिस दिन सब आश्चर्य से भर ज ाएगा उसी दिन उसकी गंध मिलनी शुरू होती है, उसी संगीत ध्वनि आती है, जिसे हम प्रभु कहते हैं। परमात्मा के मंदिर के निकट केवल वही पहुंचाते हैं जिनकी आत्म ाएं आश्चर्य से भर उठती हैं।

द्वितीय प्रवचन

जीवन ही है मुक्ति

मैं एक नये बनते हुए मंदिर को देख रहा था। मंदिर की दीवालें बन गयी थीं। शिख र निर्मित हो रहा था। सैकड़ों मजदूर पत्थर तोड़ने में लगे थे। मैंने पत्थर तोड़ते ए क मजदूर से पूछा। 'मित्र, क्या कर रहे हो?' उस मजदूर ने बहुत गुस्से में मुझे देख ा और कहा, 'क्या आपके पास आंखें नहीं हैं? क्या आपको दिखाई नहीं पड़ता कि मैं पत्थर तोड़ रहा हूं?' कोई क्रोध होगा उसके मन में। कोई निराशा होगी। और प त्थर तोड़ना कोई आनंद का काम भी नहीं हो सकता है। मैं उस मजदूर को छोड़ क र आगे बढ़ गया और दूसरे मजदूर से पूछा। वह भी पत्थर तोड़ रहा था, 'मित्र, क या कर रहे हो?' उस मजदूर ने क्रोध से तो नहीं, लेकिन अत्यंत उदासी से मेरी त रफ देखा और कहा,'आजीविका कमा रहा हूं,बच्चों के लिए रोटी कमा रहा हूं। निश्चि चत ही केवल रोटी कमाना बहुत आनंद की बात नहीं हो सकती है। उदास था और दुखी था, लेकिन फिर भी पहले पत्थर तोड़ने वान से भिन्न थी उसकी दशा। क्रोधि त नहीं था। मैं और आगे बढ़ा और तीसरे पत्थर तोड़ने वाले आदमी से मैंने पूछा, ' मित्र, क्या कर रहे हो?' वह कोई गीत गुनगुनाता था। उसने आंखें ऊपर उठाईं। उ

सकी आंखों में किसी आनंद की झलक थी। उसने कहा 'देखते नहीं हैं आप, भगवान का मंदिर बना रहा हूं?' वह भी पत्थर तोड़ रहा था।

वे तीनों ही पत्थर तोड़ रहे थे। एक क्रोध से भरा था। एक उदासी से और एक आनंद से। वे तीनों एक ही काम कर रहे थे। लेकिन जो आदमी पत्थर तोड़ रहा था वह क्रोध से भरेगा ही, क्योंकि जीवन तो पत्थर तोड़ने के लिए नहीं है और जिनका जीवन पत्थर तोड़ने में ही नष्ट हो जाता है वे अत्यंत क्रोधित हो उठते हों तो आश्चर्य नहीं। दूसरा व्यक्ति क्रोधित तो नहीं था, लेकिन उदास था। क्योंकि जिंदगी रोटी कमाने में ही व्यतीत हो जाये तो उदासी के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं आ सकता है और वे लोग अभागे हैं जो रोटी कमाने में ही जीवन नष्ट करते हैं। लेकिन तीसरा व्यक्ति भगवान का मंदिर बना रहा था। वह भी पत्थर तोड़ रहा था। लेकिन भगवान का मंदिर बनाना एक आनंद है और धन्य हैं वे लोग जो जीवन में भगवान का मंदिर बनाने में समर्थ हो पाते हैं। हम भगवान का मंदिर बनाने वाले कैसे बन सकते हैं इस संबंध में ही थोड़ी बातें आपसे करूंगा।

यह बात बड़े दुख से मुझे कहनी पडती है कि पृथ्वी पर अधिकतम लोग या तो तो पत्थर तोड़ते हैं या ज्यादा रोटी कमाते हैं। मुश्किल से कोई सौभाग्यशाली कभी भगवान, का मंदिर बनाने में संलग्न हो पाता है। इसीलिए तो इतना दुख है इतनी उदासी है, इतना क्रोध और इतना विषाद है। लेकिन मनुष्य क्यों जीवन को भगवान का मंदिर नहीं बना पाता है? क्या कारण है कि जीवन एक आनंद नहीं हो पाता? क्या कारण है कि जीवन जीवन एक नृत्य नहीं बन पाता? क्या कारण है कि जीवन की वीणा पर संगीत पैदा नहीं हुआ? जीवन एक दुख भरी रात क्यों है? जीवन एक प्रकाश से भरा दिवस क्यों नहीं? जीवन का कांटों का मार्ग ही क्यों है, फूलों की बगिया से गुजर जाना क्यों नहीं? जीवन विषाद और आंसू ही क्यों है? आनंद और एक मुस्कराहट क्यों नहीं?कोई बुनियादी कारण होगा और उस कारण से शायद एक व्यक्ति का सवाल नहीं है, पूरी मनुष्य-जाति का सवाल है। किसी एक व्यक्ति की भूल नहीं है। जैसे पूरी मनुष्य जाति किसी बुनियादी भूल को कर रही है। उस पहली भूल पर ही मुझे बात करना है।

वह पहली भूल यह है कि आज मनुष्य के इतिहास में, मनुष्य के अगुवा और नेता होने वाले लोग बीमार और रुग्ण रहे। मनुष्य जाति को अब तक स्वस्थ मस्तिष्क का नेतृत्व नहीं मिल सका है। मनुष्य को उन लोगों ने नेतृत्व दिया है जो अपने भीतर दुखी, रुग्ण और विक्षिप्त थे। स्वस्थ व्यक्तित्व का नेतृत्व ही मनुष्य जाति को उपलब्ध नहीं हो सका। रुग्ण लोगों ने सारे जीवन के कुएं को विषाक्त कर दिया। वे खुद जीवन में जिस आनंद को नहीं पा सके अपनी असमर्थता को उन्होंने जीवन की ही भूल समझना शुरु कर दी। उस लोमड़ी की कथा हम सब ने पढ़ी है जो अंगूर के गुच्छों को तोड़ने में संलग्न थी। बहुत उछली-कूदी। उसने पूरी शक्ति लगायी लेकिन अंगूर के गुच्छे न पा सकी। तब वह बहुत गरिमा और गौरव से वापस लौट गयी और राह में जो लोग मिले उनसे उसने कहा, मुझे क्या पता था कि अंगूर खट्टे हैं। मैंने तो

सोचा था, अंगूर पक गये हैं, लेकिन निकट जाकर पता चला कि अंगूर खट्टे हैं। उन्हें तोड़ने मग कोई सार नहीं।

मनुष्य जाति को भी ऐसे लोगों ने नेतृत्व दिया है जिन्हें जीवन के अंगूर उपलब्ध नहीं हो सके और उन्होंने कहा, 'सारा जीवन खट्टा है हमें क्या पता था अन्यथा हम तो. डने ही नहीं जाते। सच्चाई दूसरी थी। जीवन के रस भर फेल वे उपलब्ध नहीं कर सके, लेकिन इस बात को स्वीकार करने से कि जीवन के फल मुझे उपलब्ध नहीं हो सके हैं, अहंकार को बड़ी चोट लगती है। इसलिए दूसरा उपाय आसान है कि जीव न असार है और व्यर्थ है। आज तक मनुष्य के मन को जीवन की असारता की दिश ा ने ही विषाक्त किया है। जमीन पर बहुत विष फैलाने वाले लोग पैदा हुए हैं। जीव न के सारे कुओं में जहर घोल दिया गया है। यही समझाया जाता रहा है कि आज तक कि जीवन व्यर्थ है। जीवन दुख है, और जीवन में करने जैसी एक ही चीज है और वह है जीवन से छूट जाना। आवागमन से मुक्त हो जाना। झूठी हैं ये बातें और इनका कोई अर्थ नहीं है। जीवन को छोड़ देने की बातें, जीवन को व्यर्थ कहने की बातें, जीवन को बुरा बताने की बातें मनुष्य के मन में गहरे बिठा दी गयी हैं। और ऐसा चित्त अगर प्रारंभ से ही इस जीवन को दुख मान लेता हो, अगर जीवन में आ नंद न पास के तो जिम्मेदार कौन है? हम सब जीवन में दुख से भरे हुए हैं। यह जी वन का दोष नहीं है। यह जीवन को देखने का हमारा गलत दृष्टिकोण है जिसने जी वन को दुख से भर दिया है। जीवन बुरा नहीं है। हमारा मन विषाक्त है। हमारे मन रुग्ण हैं। जीवन में कांटे ही कांटे नहीं हैं। और न जीवन ऐसा है कि उसे छोड़ देना ही उससे मुक्त हो जाना ही, उससे भाग जाना ही एकमात्र उपाय हो। नहीं, यह ब ताने वाले लोगों ने सारी मनुष्य जाति के मन को अंधकारपूर्ण कर दिया है। ये ही ल ोग जिन्होंने आदमी के जीवन की निंदा की है, जीवन अनुभव करने की क्षमता को, पात्रता को कम करने वाले लोग भी हैं, लेकिन इनकी शिक्षा का प्रभाव अब तक रह ा है। जीवन-विरोधी शिक्षाओं के प्रभाव ने ही मनुष्य की यह विकृत दशा पैदा कर द ी है।

एक चर्च में एक सुबह उस चर्च के धर्मगुरु ने अपने सुनने वाले लोगों से के बात क ही। हो सकता है आप भी वहां मौजूद रहे हों, शायद आपने यह बात सुनी भी होगी । उस धर्मगुरु ने कहा कि मेरे मित्रो, इनमें से कितने लोग स्वर्ग जाना चाहते हैं। जो स्वर्ग जाना चाहते हैं, अपने हाथ ऊपर उठाएं। धर्म गुरु ने सोचा था सभी लोग हाथ ऊपर उठा देंगे। करीब-करीब सभी लोगों ने हाथ ऊपर उठाये थे, लेकिन सामने बैठ ा हुआ एक व्यक्ति हाथ नीचे ही किये रहा। सभी स्वर्ग जाना चाहते थे। धर्मगुरु को बहुत आश्चर्य हुआ। क्या ऐसा भी आदमी हो सकता है जो नरक जाना चाहता है। ि फर उसने कहा, अब आप अपने हाथ नीचे कर लें और अब मैं पूछता हूं, जो नरक जाना चाहते हैं वे अपने हाथ ऊपर उठाएं। एक भी आदमी ने हाथ नहीं उठाया। उस आदमी ने भी नहीं,जिसने स्वर्ग जाने के लिए हाथ नहीं उठाया था। धर्म-गुरु हैरान हुआ। उसने कहा, मेरे भाई, तुमने न स्वर्ग जाने के लिए हाथ उठाये, न नरक जाने

के लिए। तुम कहां जाना चाहते हो? उससे आदमी ने कहा, मैं यहीं रहना चाहता हूं , जीवन में।और मैं जीवन में ही स्वर्ग बनाना चाहता हूं। न मैं स्वर्ग जाना चाहता हूं न मैं नरक जाना चाहता हूं, क्योंकि जो स्वर्ग जाना चाहते हैं उन्होंने इस पृथ्वी को नरक बना दिया है क्योंकि उनकी आंखें किसी काल्पनिक स्वर्ग में लगी हुई हैं और वास्तविक पृथ्वी उपेक्षित पड़ी रह गई है। जो लोग जीवन को छोड़ देना चाहते हैं ज ीवन को किसी भूल के कारण नहीं। अपनी किसी रुग्णता, अपनी किसी बीमारी के कारण, जीवन को, जीवन के रस को, जीवन के आनंद को उपभोग नहीं करने की क्षमता के कारण। वे लोग जीवन को नरक बनाने में सहयोगी हो जाते हैं। तो उस आदमी ने कहा, जितने लोगों ने हाथ ऊपर उठाए हैं स्वर्ग जाने के लिए यही लोग पृ थ्वी को नरक बनाये हुए हैं। मैं न स्वर्ग जाना चाहता हूं, न नरक जाना चाहता हूं। मैं इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाना चाहता हूं। आज तक मनुष्य को पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की शिक्षा दी नहीं गयी है, इसलिए पृथ्वी नरक बन गयी है। इसलिए हमारा जीवन नरक बन गया है। और मैं आपसे यदि निवेदन कर दूं जो इस जीवन में स्वर्ग में नह ीं हो सकते, उनके लिए कोई स्वर्ग कहीं भी नहीं हो सकता है। और जो लोग इस जीवन को स्वर्ग में परिवर्तित कर सकते हैं उनके लिए इस जगत में किसी लोग में नरक नहीं है। वे जहां भी होंगे, जहां भी उनका जीवन होगा वे वहीं स्वर्ग में होने क ी कला में निष्णात हो गए होंगे।

जीवन एक अवसर है। उसे जो स्वर्ग बना लेता है वह आनेवाले जीवन के स्वर्गों की बुनियाद रख देता है, और इस जीवन को जो नरक लेता है वह आने वाले नरकों क ा रास्ता शुरू कर देता है, यात्रा शुरू कर देता है। हमने पृथ्वी को नरक बनाया है। और किन लोगों ने नरक बनाया है उन लोगों ने, शायद मेरी बात बहुत कठोर मालू म पड़े, लेकिन उन्हीं लोगों ने और मजबूरी है सत्य कहना ही पड़ेगा, उन्हीं लोगो ने जिन लोगों ने पृथ्वी के विरोध में, जीवन के विरोध में शिक्षाएं दी हैं। जीवन का ि नषेध (लाइफ निगेशन) और जीवन की उपेक्षा करना सिखाया गया है। यही समझाय ा गया है कि बुरा है जीवन, दुख है जीवन, पीड़ा है जीवन, बंधन है जीवन, पिछले जन्मों का, दुष्कर्मों का फल है जीवन। जब जीवन ऐसा हो तो फिर जीवन को आनंद का मंदिर कैसे बनाया जा सकता है! जब तो एक ही काम है हमारे हाथ में कि त ोड़ दें इस मंदिर को, गिरा दें इसकी दीवालों को, आग लगा दें और किसी काल्पनि क मोक्ष की तलाश करें, खोज करें।

यह मैं पहली बात आपसे कहना चाहता हूं जीवन-क्रांति की दिशा में। जीवन के सृज न में पहली बात है जीवन के प्रति अहोभाव। जीवन के प्रति धन्यता का बोध। जीव न के प्रति आनंद की धारणा। जीवन के सौंदर्य और जीवन के रस के प्रति अनुग्रह (ग्रेटीटयूड)। जीवन के जो जो शत्रु हैं उन्हें जीवन से कुछ भी नहीं मिलेगा। शत्रुता से कभी किसी को कुछ भी नहीं मिला है। जीवन के मित्र जो हैं—जीवन अपनी निधिय ों के द्वार केवल उनके लिए ही खोलता है। जो प्रेम से जीवन के द्वार पर दस्तक देते हैं, जो प्रेम से जीवन को आलिंगन करने के लिए तत्पर होते हैं, जो प्रेम से जीवन

के द्वार पर प्रार्थना करते हैं, जो प्रेम से जीवन को पुकारते हैं और बुलाते हैं और ि
जनके हृदय में जीवन के विरोध में कोई कांटा नहीं होता, जीवन के संगीत के लिए
फूलों की मालाएं होती हैं केवल उनके लिए ही जीवन एक मंदिर बन पाता है। अन्
यथा फिर जीवन एक पत्थर तोड़ने से ज्यादा नहीं हो सकता है।
जीवन का निषेध घातक सिद्ध हुआ है, विषाक्त सिद्ध हुआ है। लेकिन धर्मों के नाम
पर जीवन का निषेध ही प्रचलित रहा है। हम उसी आदमी को धार्मिक कहते हैं जो
जीवन को जितना तोड़ दे और जीवन से जितना दूर भाग जाये। जो जीवन का जि
तना शत्रु हो, जीवन को जितना तिरस्कार जितनी निंदा कर सके, जीवन को जितना
कुत्सित , जीवन को जितना बुरा सिद्ध कर सके, जीवन को जितनी गाली दे सके
वह आदमी उतना ही बड़ा धार्मिक प्रतीत होता है। यही लोग हैं अधार्मिक, यही लो
ग हैं जिन्होंने जीवन को धार्मिक होने से वंचित कर रखा है। लेकिन इनका प्रभाव र
हा है जीवन पर, और आज तक मनुष्य-जाति इनकी ही अंधेरी छाया के नीचे बढ़ती
रही है और जिन्हें हमने मार्गदर्शक समझा है वे ही इन मार्गों को भ्रष्ट करने वाले
लोग हैं। इनकी तरकीब क्या रही है? इन्होंने किस भांति जीवन को बुरा और निंदि
त कर दिया है? इन्होंने जीवन को किस भांति विकार-ग्रस्त सिद्ध कर दिया है? इन्ह
ोंने किस भांति मनुष्य के मन में जीवन और आवागमन से छूटने का भाव पैदा कर ि
दया? इनकी तरकीब (टेक्नीक) क्या है? इन्होंने किस विधि का उपयोग किया है ि
जससे जीवन के सब कुएं विषाक्त हो गये? बड़ी अदभुत तरकीब है शायद आपको ख
याल में भी न आयी हो। इनकी तरकीब है चीजों को तोड़ कर देखना। इनकी तरक
ीब है विश्लेषण(एनालिसिस)। इसे समझना बहुत जरूरी है, क्योंकि इसे समझ लें तो
जीवन कैसे नष्ट किया गया है वह हमारी समझ में आ जाएगा।
मैं एक जलप्रपात देखने गया था। एक बड़ी सुंदर रमणीय पहाड़ी से नदी गिरती थी।
उसकी मर्मर ध्वनि, उसके पास खड़े हुए वृक्षों का आनंद, उस नदी की तीव्रता औ
र वेग सब अदभुत थे। और प्राणों के किसी अनजाने तल को छू लेते थे। अपने एक
मित्र के साथ मैं उस जगह को देखने गया था। हम दोनों गाड़ी से उतर कर पहाड़ों
में प्रवेश करने लगे तो मैंने अपने मित्र से कहा कि आप अपनी गाड़ी के ड्राइवर को
भी बुला लें। वह भी देख लेगा। मैंने उस ड्राइवर को कहा कि तुम भी आ जाओ।
उसने कहा, वहां क्या रखा है? पहाड़ी और पानी और कुछ भी नहीं, वहां है क्या?
वहां है क्या पहाड़ और पानी के सिवाय! और मुझे हैरानी होती है कि लोग सैकड़ों
मील से चलकर देखने क्या आते हैं! कुछ पत्थर पड़े हैं साहब, कुछ पानी गिरता है
और कुछ भी नहीं है। मैंने अपने मित्र से कहा कि तुम्हारा ड्राइवर कोई धर्मगुरु होने
के लायक है। उस विश्लेषण की कला का क्या पता है। उसने जलप्रपात के उस सौं
दर्य को दो छोटी सी चीजों में तोड़ कर स्पष्ट कर दिया है--पत्थर पड़े हैं वहां और
पानी है वहां और क्या है। बात खत्म हो गयी, कुछ भी नहीं है वहां।
विश्लेषण जीवन की सब चीजों में पूछता है और क्या है? एक सुंदर चेहरे पर धर्मगु
रु पूछता है, है क्या इसमें हड्डियां और मांस के सिवाय? आदमी के शरीर में क्या है

? पीव है, मज्जा है, ,खून है, हड्डियां हैं और क्या है? फूल में क्या है? कुछ भी तो नहीं है। कुछ थोड़े से केमिकल्स क्लोरोफिल। और क्या है? एक फूल के सौंदर्य की तारीफ पर धर्मगुरु कहेगा, है क्या इसमें? थोड़े से रंग हैं थोड़े से रसायन हैं और है क्या? एक कविता को धर्मगुरु के सामने रखें, एक काव्य को। वह कहेगा है क्या? कुछ शब्दों का जोड़ है और कुछ भी नहीं। अगर जीवन को हम इस भांति देखना शुरु करें तो जरूर असर हो जाएगा। पाया जाएगा जीवन में कुछ भी नहीं है।

तीन हजार वर्षों से विश्लेषण ने आदमी को बड़े धोखे में डाला है। हर चीज को तो. ड कर देखा जा सकता है और कुछ भी नहीं पाया जाएगा। एक जिंदा आदमी को हम काट डालें और खोजें क्या है इसमें, तो हड्डियां मिलेंगी, मांस मिलेगा, आदमी कहीं भी नहीं मिलेगा। एक मूर्ति को काट-पीट डालें तो पत्थर के टुकड़े मिलेंगे, कोई सौंदर्य की प्रतिमा खोजने से भी नहीं मिलेगी। एक कविता को तोड़ डालें तो शब्द मिलेंगे, कोई काव्य (पोएट्री) नहीं। एक सुंदर चेहरे को काट-पीट डालें तो क्या मिलेगा भीतर? इन चीजों को खंड खंड टुकड़ों में तोड़ने की कला ने सारे जीवन को असार सिद्ध करने की तरकीब धर्मगुरुओं के हाथ में दे दी है। किसी भी चीज को तोड़-फोड़ डालें और पूछें क्या है इसमें? प्रेम में क्या है? सौंदर्य में क्या है? स्वाद में क्या है? रस में क्या है? किसी भी चीज में कुछ नहीं है, अगर विश्लेषण किया जाए तो। बात असल में यह है कि विश्लेषण में केवल क्षुद्र ही हाथ लगता है। जो सूक्ष्म है वह विलीन हो जाता है। उसका कोई दर्शन नहीं हाथ लगता है। जो सूक्ष्म है वह विलीन हो जाता है। उसका कोई दर्शन नहीं हो पाता है । विश्लेषण करने में, जो व्यर्थ है वही हाथ लगता है, जो सार्थक है वह तिरोहित हो जाता है और तब हम कह सकते हैं कि कोई सार नहीं है। जीवन क्या है? जन्मना, रोटी कमाना, बच्चे पैदा करना और फिर मर जाना, और जीवन क्या है? विश्लेषण पूरा हो गया और जीवन में कुछ भी हाथ नहीं लगा। तो जीवन है असार। फिर यही तरकीब धर्मगुरुओं की वैज्ञानिकों के हाथ लग गयी, क्योंकि तीन हजार वर्षों में धर्मगुरुओं ने विश्लेषण में आदमी को दीक्षित कर दिया। फिर विज्ञान का जन्म हुआ तो उसके हाथ में विश्लेषण की तरकीब लग गयी। उसने कहा, कहां है आत्मा आदमी में? हम तो काट-पीट कर देखते हैं, कहीं मिलती नहीं। आत्मा नहीं है। उन्होंने कहा था संसार असार है,वैज्ञानिकों ने कहा आत्मा भी असार है, क्योंकि उसका भी विश्लेषण करते हैं तो पायी नहीं जाती। खोज-बीन करते हैं, चीजें तोड़ते हैं, कुछ भी नहीं मिलता। धर्मगुरुओं को पता नहीं था कि जिस तोड़ने की तरकीब से वे जीवन को असार कह रहे हैं उसी तोड़ने की तरकीब से एक दिन धर्म भी असार हो जाएगा। कोई आत्मा नहीं है, कयोंकि तोड़ने से उसका पता नहीं चलता है।

एक संगीतज्ञ था। उसने अपनी वीणा पर एक गीत गाया। वह सुंदर था। एक वैज्ञानिक भी वहां बैठा सुनता रहा। उसने सोचा, जरूर वीणा में कोई बात होनी चाहिए। रात जब वह संगीतज्ञ सो गया तो वह वैज्ञानिक उसके घर में घुस गया। उसने पूरी वीणा तोड़ कर देख डाली, तार तार कर डाला, टुकड़े टुकड़े कर डाले। हाथ में कुछ

तार लगे, कुछ टुकड़े लगे लकड़ी के, कोई संगीत पकड़ में नहीं आया। उसने कहा, सब असार है। मालूम होता है धोखा था संगीत। संगीत था ही नहीं। मुझे धोखा दिया गया है। वीणा को पूरी तरह खोज लेता है तो भी कोई संगीत मिलता नहीं। जीवन का सत्य विश्लेषण से नहीं मिलता है, संश्लेषण (सिनथेसिस) से मिलता है। जीवन उसके खंड-खंड टुकड़ों में नहीं उसकी परिपूर्णता(होलनेस) में है। सौंदर्य भी परिपूर्णता में है, सत्य भी, जीवन भी, आनंद भी। जो लोग खंडों में तोड़ते हैं वे वंचित हो जाते हैं। उस वंचित रह जाने को वे जीवन पर थोप देते हैं कि जीवन में कुछ भी नहीं है। और जब जीवन में कुछ भी नहीं तो छोड़ो इस जीवन को, भागो इस जीवन से, त्यागो इस जीवन को। फिर खोजो किसी परमात्मा को, खोजो किसी मोक्ष को, जहां सब-कुछ होगा। लेकिन अगर ये विश्लेषण करनेवाले लोग किसी दिन मोक्ष पहुंच भी गये, जैसा कि कभी हुआ नहीं आज तक कि वे पहुंच गये हों। लेकिन अगर किसी दिन मोक्ष पहुंच गये तो पाएंगे कि मोक्ष भी असार है। वहां भी कुछ नहीं है। क्योंकि मोक्ष में वे क्या पाएंगे, जो भी मिलेगा उसका विश्लेषण यह सिद्ध कर देगा कि वहां भी कुछ नहीं है।

बर्ट्रेण्ड रसल ने एक बार यह कहा कि मैं सोचता हूं कि कहीं मुझे मोक्ष मिल गया तो मोक्ष कैसा होगा वहां न शांति होगी, न अशान्ति। वहां न अंधकार होगा, न प्रकाश। वहां न प्रेम होगा, न घृणा, वहां होगा क्या? और मोक्ष से लौटने का कोई उपाय नहीं है। मोक्ष में प्रवेश द्वार (एन्ट्रेंस) तो होता है, गमन-पथ (एग्सिट) नहीं होता। वहां भीतर जा सकते हैं, बाहर आने का कोई मौका नहीं। तो बर्ट्रेण्ड रसल ने कहा, 'वहां करेंगे क्या?'

वहां जो लोग पहुंच गये हैं, अब तक बहुत घबरा गये होंगे। बहुत ऊब (बोरडम) पैदा हो गयी होगी। वहां करेंगे क्या? वहां कोई अभाव नहीं है। कोई दुख नहीं है। कोई पीड़ा नहीं है। वहां कोई कामना नहीं, कोई महत्वाकांक्षा नहीं। वहां लोग हैं और बने रहेंगे, अनंत तक बने रहेंगे। नहीं, बर्ट्रेण्ड रसल ने कहा, मेरी तबीयत बहुत घबराती है। ऐसे मोक्ष से तो नरक ही बेहतर, वहां कुछ करने को तो होगा। यह मोक्ष का विश्लेषण हो गया। रसल ने मोक्ष का विश्लेषण कर लिया। नहीं कुछ वहां भी दिखाई नहीं पड़ता। महावीर, बुद्ध धोखे में पड़ गये मालूम होता है। शायद वह मोक्ष का विश्लेषण नहीं कर पाये। रसल ने मोक्ष का विश्लेषण किया तो पाया कि वहां भी कुछ नहीं हो सकता है।

मनुष्य विश्लेषण की छाया में देखता है आज तक। यह मैं पहला सूत्र आपसे कहना चाहता हूं कि अगर जीवन को एक मंदिर बनाना है तो जीवन को एक संश्लेषण की दृष्टि चाहिए(सिंथेटिक एटीटयूड) से देखने की क्षमता पैदा करनी होती है, विश्लेषण की दृष्टि से नहीं। जब भी हम चीजों को तोड़ देते हैं तो स्मरण रहे, चीजें होती हैं अपनी पूर्णता में और कोई भी चीज खंडों का जोड़ नहीं होती है, खंडों के जोड़ से ज्यादा होती है। एक कविता शब्दों का जोड़ ही नहीं होता है, रंगों के जोड़ से कुछ ज्यादा होता है। एक संगीत वीणा और वीणावादक की अंगुलियां नहीं होती, कुछ

और भी होता है। और वह जो 'कुछ और' है वही रहस्यपूर्ण, वही अदृश्य, वही न दिखायी पड़नेवाला जीवन का रस है, जीवन का आनंद है। जीवन में प्रभु है। जीवन जोड़ से कुछ ज्यादा है। गणित में जोड़ होते हैं, दो और दो चार होते हैं। जीवन में दो और दो चार होते हैं। दो और दो चार हो जाते हैं और एक नयी चीज पैदा हो जाती है और दो और दो में होती ही नहीं, जो उनके मिलने से होती है। अगर मैं किसी से प्रेम करता हूं और उसे अपने हृदय से लगा लूं और एक ओर एक वैज्ञानि क विश्लेषण करे कि दो आदमियों की छाती की जब हड्डियां मिलती हैं तो आनंद कैसे होता होगा? तो हड्डियों के मिलने से कैसे आनंद हो सकता है? कैसे प्रेम हो सक ता है? हड्डियों के मिलने से हो सकता है कोई विद्युत घर्षण से पैदा हो जाती हो। य ह हो सकता है कि हड्डियों को एक दूसरे से गर्मी मिल जाती हो। लेकिन आनंद का क्या संबंध है, प्रेम का क्या संबंध है? तो अगर वैज्ञानिक किसी आलिंगन का विश्लेष ण करेगा तो पायेगा कि यह बेवकूफी है, बिलकुल। कुछ नहीं मिल सकता, इसमें कु छ हो नहीं सकता।

लेकिन जो प्रेम में हैं वे जानते हैं कि आलिंगन में हड्डी होती ही नहीं, शरीर मौजूद ही नहीं रह सकते। जब कोई किसी के प्रेम से अपने हृदय के निकट लाता है तो श रीर मौजूद ही नहीं रह जाते। शरीर अनुपस्थित हो जाते हैं। कोई और चीज उपस्थि त हो जाती है जिसका शरीर से कोई वास्ता नहीं। दिखायी पड़ते हैं कि दो शरीर ि नकट आये, लेकिन निकट कोई चीज आती है। लेकिन शरीर के विश्लेषण से आत्मा को नहीं खोजा जा सकता है। तो वह झूठी हो जाती है, असत्य हो जाती है, असा र हो जाती है। धर्म ने यह काम किया पहले कि सारे जीवन को असार सिद्ध करने के लिए हर चीज का विश्लेषण कर दिया। फिर वैज्ञानिकों के हाथ में विश्लेषण कर ने की ताकत आ गयी। उन्होंने सब चीजों का विश्लेषण करके धर्म को भी असार क र दिया और अब आदमी खड़ा रह गया है। उसके हाथ में कुछ नहीं बचा है--न प्रेम, न परमात्मा, न संसार, न मोक्ष। सब चीजों का विश्लेषण हो गया है और आदमी खाली हाथ खड़ा हो गया है। यह आदमी अगर दुख से नहीं भर जाये, यह आदमी अगर जीवन के प्रति उदासी से न भर जाए, अगर एक आदमी जीवन को अंत करने के लिए तत्पर न होने लगे तो और क्या करे?

विश्लेषण ने आदमी को आत्महत्या सिखायी है। आत्महत्या दो तरह की हो सकती है। या तो एक आदमी सीधे जाए और पहाड़ से कूद जाए और मर जाए। एक आद मी छुरी मार ले, जहर पी ले या एक आदमी धीरे-धीरे मरे जैसे पहले घर छोड़े, ि फर वस्त्र छोड़े, फिर समाज छोड़े, संन्यासी हो जाए। धीरे-धीरे मरने(ग्रेजुअल स्युसाइ ड) के नाम को अब तक संन्यास कहते रहे हैं। धीरे-धीरे मरो। और आदमी इस मर ने की प्रक्रिया में जितना आगे निकल जाए, जितना सूख जाये, जितना सूखी पत्तियों की भांति हो जाए, जीवन के आनंद और जीवन के हर रस को गंदा करने की क्रूरत ा से भर जाए, उस आदमी को हम उतना ही आदर देते हैं। धर्म के तथाकथित झूठे प्रभाव में हमने को नहीं मृत्यु को आदर दिया है, और जो समाज मृत्यु को आदर

देता हो उसके जीवन में आनंद कैसे हो सकता है? आत्मघात को हमने सम्मान दिय
ा है। हमने अब तक केवल मृत्यु के देवता के मंदिरों की पूजा की है। हमने दिये ज
लाये हैं मृत्यु के सामने, जीवन के सामने नहीं। धर्म के हाथों में आदमी को व्यकितग
त आत्महत्या की सूझ मिली,और अब विज्ञान के हाथों में सामूहिक आत्महत्या का
उपाय मिल गया है। धर्म ने कहा, छोड़ें जीवन को, आवागमन से मुक्ति चाहिए, जी
वन ठीक नहीं, शुभ नहीं, पाप है। यह एकमात्र पाप है जीवित होना। मैं पिछले जन्म
ों के पापों के कारण जीवित हूं। आप भी पिछले जन्म के पापों के कारण जीवित हैं।
जिस दिन पाप नहीं रह जाएंगे, जीवन की कोई जगह नहीं रह जाएगी। आप जीवि
त नहीं रहेंगे। आप जीवन में नहीं होंगे। जो लोग पाप से मुक्त हो जाते हैं, वे जीव
न से मुक्त हो जाते हैं। जीवन और पाप पर्यायवाची हैं, एक ही अर्थ रखते हैं। जीवि
त होना और पापी होने का एक ही मतलब है। क्योंकि जो पाप से मुक्त हो जाते हैं
, वे जीवन से भी मुक्त हो जाते हैं। तो जीवन है पाप, फिर क्या करें हम? जीवन
से हटें। जीवन को छोड़ें। जीवन से मुक्त हों। आवागमन से बाहर जाने की कोशिश
करें। जीवन से हट जाने की कोशिश मृत्यु में जाने की कोशिश ही हो सकती है और
काई विकल्प (अल्टरनेटिव) नहीं।या तो जीवन की राह और आनंद में प्रवेश है औ
र या फिर जीवन से पीठ फेरना है, जीवन से भागना है, जीवन से हटना है। जिसे ह
म संन्यास कहते हैं, वह मृत्यु की ओर मुख करने का नाम है। जीवन की ओर पीठ
फेर कर, मृत्यु की तरफ गति करने का नाम है। धर्मों ने व्यक्तिगत आत्मघात सिख
ाया। विज्ञान और आगे बढ़ गया। असल में विज्ञान हर चीज को सामूहिक बनाने का
उपक्रम है। एक व्यक्ति जिसका उपयोग करता है, विज्ञान की कोशिश है कि सभी
उसका उपभोग कर सकें। अकबर के महल में जितनी रोशनी होती थी, विज्ञान ने व
यवस्था कर दी कि उतनी रोशनी अब झोपड़े में भी हो सके। अकबर जितना अच्छा
भोजन करता था, विज्ञान कोशिश करता है कि हर आदमी उतना अच्छा भोजन कर
सके। सम्राटों के पास जितने तीव्र वाहन हो जाएं। विज्ञान जीवन की घटनाओं को
सामूहिक करने की कोशिश करता है। उसने मृत्यु को भी सामूहिक करने की व्यवस्थ
ा कर दी। एक-एक आदमी क्यों आवागमन से मुक्त हो, सारी पृथ्वी एक ही साथ अ
ावागमन से मुक्त क्यों न हो जाए? इसलिए हाइड्रोजन बम और एटम बम का इंतज
ाम किया। सभी को इकट्ठा मोक्ष क्यों न मिल जाए? सभी जीवन से छूट क्यों न जा
एं? जब जीवन दुख है तो जीवन को बचाने की जरूरत क्या है, और जब जीवन पी.
डा और उससे छुटकारा ही एकमात्र लक्ष्य है तो सभी सामूहिक रूप से क्यों न प्रवेश
पा जाएं? एक-एक आदमी कब तक मुक्त तो हो तो रहेगा? एक-एक आदमी को
मोक्ष पाने में कितना समय लग जाएगा? इकट्ठा टोटल हम क्यों न मुक्त हो जाएं।
तो विज्ञान ने मृत्यु को भी सामूहिक (कलेक्टिव) करने का उपाय कर दिया है। इन
दोनों बातों में विरोध नहीं है। विश्लेषण मृत्यु पर ले ही जाता है। चाहे धार्मिक विश
लेषण हो, चाहे वैज्ञानिक विश्लेषण हो। क्योंकि विश्लेषण का मतलब है तोड़ना, तोड़
ना, खंड-खंड करना। जो चीज तोड़ी जाती है मर जाती है। जिसे हम खंड-खंड कर

ते हैं वह नष्ट हो जाती है। जीवन का अर्थ है जोड़ना, जोड़ना, जोड़ना अखंड करना। मृत्यु का अर्थ है तोड़ना। आप मरते हैं तो होता क्या है आपके भीतर? जो चीज संश्लेषित थी वह टूट जाती है अपने तत्वों में। आपके भीतर जो चीज थी वह खंड-खंड में बंट जाती है और क्या होता है? मृत्यु का अर्थ और क्या है? मृत्यु का अर्थ है जो जुड़ा था वह बिखर गया, जो संयुक्त था वह विमुक्त हो गया है, जो साथ साथ था वह अलग अलग हो गया है।

जीवन की प्रक्रिया है अखंडता में और संश्लेषित होने में। और मृत्यु की प्रक्रिया है खंड-खंड होने में, विश्लिष्ट होने में, टूट जाने में। जो भी विश्लेषण काम मार्ग पकड़ेगा—चाहे धर्म, चाहे विज्ञान, अंत में मृत्यु हाथ में आएगी। धार्मिकों ने भी एक तरह की मृत्यु हाथ में ला दी थी। वैज्ञानिकों ने दूसरी तरह की मृत्यु हाथ में ला दी है; लेकिन जीवन अब तक हाथ में नहीं आ सका। न जो जीवन का धर्म पैदा हुआ है, न जीवन का विज्ञान पैदा हुआ है। जोड़ने का इकट्ठेपन का, समग्रता का, और जीवन का कोई भान अब तक नहीं हो सका। इसलिए हम दुख में जीते हैं, इसलिए हम पीड़ा में जीते हैं। इसलिए हम अंधकार में जीते हैं। इसलिए जीवन के साथ हमारा कोई संपर्क नहीं हो पा रहा है। न हम आनंद को जान पाते हैं, न आलोक को। हम कुछ भी नहीं जान पाते। हम बिना जाने जीते हैं और बिना जाने मर जाते हैं।

तो पहली बात आपसे कहना चाहता हूं कि आपको जीवन का मंदिर बनाने वाला बनना है, पत्थर तोड़ने वाला नहीं, रोटी-रोजी कमाने वाला नहीं, क्योंकि अपमानजनक हैं ये बातें कि कोई आदमी सिर्फ रोजी रोटी कमाता है या पत्थर तोड़ता है। उसे पता ही नहीं उस आनंद का, उस गीत का जो परमात्मा के मंदिर के बनाने में उपलब्ध होता है। जो किसी सृजन में उपलब्ध होता है। जो खुद के जीवन को रोज-रोज बनाने में उपलब्ध होता है। उसे पता ही नहीं उस बड़े समन्वय का जहां भीतर का जीवन और नये-नये जोड़ों को उपलब्ध होता है—रोज नया शिखर है, रोज नयी ऊंचाई छूना है। भगवान कहीं बना बनाया, रेडीमेड नहीं बैठा है कि आप पहुंच गए और मुलाकात हो गई। भगवान निर्मित करना होता है अपने भीतर। भगवान को जानना और पहचानना निरंतर सत्ता सृजन, कान्सटेंट क्रिएटीविटी से गुजरने का नाम है। जो अपने जीवन को नये-नये संयोगों से जोड़ता है, श्रेष्ठतर संयोगों में जोड़ता है और जोड़ता चला जाता है, उस परम एकता, अल्टीमेट यूनिटी तक, जिसके आगे फिर कोई जोड़ नहीं रह जाता, कोई समन्वय नहीं रह जाता, उस दिन वह जानता है कि परमात्मा क्या है। जैसे हम एक मंदिर बनाते हैं तो नींव बहुत बड़ी भरनी पड़ती है। फिर हम ईंट जोड़ते चले जाते हैं। फिर मंदिर ऊपर उठने लगता है और छोटा होने लगता है शिखर पर पहुंचकर फिर बहुत ईंटें नहीं रह जातीं एक ही ईंट रह जाती है। छोटा होता चला जाता है शिखर। फिर जहां अकेली ईंट रह जाती हैं, वहीं शिखर आ जाता है।

जीवन के मंदिर में बड़ी विस्मृत भूमि होती है, बुनियाद में, आधार में। फिर जोड़ते चलते हैं हम और छोटी इकाई और छोटी इकाई पैदा होती चली जाती है। जिस दि

न जोड़ आखिरी हो जाता है उस दिन जिसका अनुभव होता है वही आत्मा है। मनुष्य के भीतर जो श्रेष्ठतम एकता पैदा होती है, जो महानतम एकता पैदा होती है, जो बड़े से बड़ा समन्वय पैदा होता है वह जीवन के देवता का अनुभव है। लेकिन हम तो जीवन को तोड़ते हैं। हम तो एक मंदिर में जाकर कह सकते हैं कि क्या है यहां? कुछ ईंटें लगा दी हैं और जोड़ दिया गया है और क्या है? कपड़े को हम कह सकते हैं कि क्या है इस कपड़े में? कुछ भी तो नहीं है, कुछ धागे आड़े और सीधे डाल दिये हैं और कुछ तो नहीं है। कपड़े को हम कह सकते हैं कि क्या है इस कपड़े में? कुछ भी तो नहीं है, कुछ धागे आड़े और सीधे डाल दिये हैं और कुछ तो नहीं है। कपड़े सिर्फ धागे नहीं हैं, क्योंकि धागे में कोई शरीर नहीं ढंक सकता है। कपड़े धागे से कुछ ज्यादा है, क्योंकि धागे में कोई शरीर नहीं ढंक सकता है। कपड़े धागे से कुछ ज्यादा है, क्योंकि धागे जो नहीं करते हैं वह कपड़े करते हैं। नहीं तो आदमी क्या पागल था? वह धागे से ही काम चला लेता। कपड़े का कोई संगठन है, कोई समन्वय है, कोई जोड़ है और उस जोड़ में कुछ नयी उपयोगिता पैदा हो जाती है, कोई नया अर्थ पैदा हो जाता है। वह जो नया अर्थ है उसकी तलाश उसकी खोज ही धर्म है। लेकिन निषेध के धर्म यह नहीं कर पाए। उन्होंने मनुष्य को मरना सिखाया है, जीना नहीं। और जो आदमी जितनी कुशलता से मर सकता है, उसको उतना सम्मान दिया है। जो आदमी मरने में बड़ा अग्रणी हो सकता है उसे शहीद कहा है। लेकिन जो जीवन को जीता है कुशलता से उसे आज तक कोई शहीद कहने वाला नहीं मिला है। बदल देने चाहिए ये मूल्य। मरने वाले को शहीद कहने की क्या जरूरत है? लेकिन जो जीते हैं और जीवन को पूरे अर्थों में जीते हैं वे ही शहीद हैं। मरना बहुत आसान है, जीवन बहुत कठिन है, क्योंकि मरने में सिर्फ मरना पड़ता है और कुछ भी नहीं करना पड़ता। जीने में बहुत कुछ करना पड़ता है। तोड़ना बहुत आसान है, क्योंकि सिर्फ तोड़ना पड़ता है। जोड़ना बहुत कठिन है क्योंकि जोड़ने के लिए कला चाहिए। तोड़ने को तो कोई भी तोड़ सकता है। मंदिर गिराना हो तो हम किन्हीं बड़े कारीगरों को खोजने नहीं जाते। गांव का कोई भी मजदूर यह काम कर देगा। लेकिन एक मंदिर बनाना हो तो गांव के मजदूर काम नहीं देते। हमें किसी बड़े शिल्पशास्त्री को खोजना पड़ता है जो बनाना जानता हो, बनाने की कला जानता हो, जो जोड़ने की कला जानता हो।

अब तक धर्म के नाम पर हमने केवल तोड़ना सिखाया है। छोड़ना सिखाया है, भागना सिखाया है। यह कोई भी कर सकते हैं। इसके लिए कोई जीवन की कला जानना जरूरी नहीं है। लेकिन वह धर्म अब तक पैदा नहीं हो सका जो जोड़ना सिखाए। जीवन का शिल्प, जीवन की कला सिखाए, जीवन को निर्माण करने का सूत्र सिखाए। पहला सूत्र जो मुझे आपसे कहना है वह यह है कि जीवन को विश्लेषण की दृष्टि से देखना बंद कर दें, अन्यथा आपके हाथ में राख के सिवाय कुछ भी नहीं लगेगा। जीवन को देखें संश्लेषण की दृष्टि से और आपके हाथ रस उपलब्ध होना शुरु हो जाए

गा। सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि आप कैसे देखते हैं। जीवन वही हो जाता है जो आपके देखने की दृष्टि हो जाती है।
जापान से एक आदमी ने अफ्रीका के लिए यात्रा की। उसी जहाज से एक अमरीकी भी यात्रा कर रहा था। वे दोनों अफ्रीका पहुंचे। वे दोनों एक ही जहाज में पहुंचे। एक ही समय पहुंचे। एक ही काम से पहुंचे यह उन्हें पता नहीं था। वह जो अमरीकी युवक था वह भी एक बहुत बड़ी जूते की कंपनी का बेचने वाला एजेंट था, सेल्समैन था। वह भी अफ्रीका गया था कि अपनी कंपी के जूते वहां बिकने की व्यवस्था करे। और वह जापानी भी जापन की एक जूता बनाने वाली कंपनी का विक्रेता था, वह भी इसीलिए गया हुआ था। वह दोनों एक ही जहाज में अफ्रीका में उतरे। रास्तों से गुजरकर वे अपने होटल तक पहुंचे। एक ही होटल में ठहरे। एक ही रास्ते से गुजरे। अमरीकी ने जाकर वहां से अमेरिका केबल किया—'मैं लौटते जहाज से वापस आ रहा हूं, अफ्रीका में जूते नहीं बिक सकेंगे क्योंकि यहां जूता कोई पहनता ही नहीं है। सब लोग नंगे पैर हैं। यहां हमारा आना सब व्यर्थ गया, मैं वापस लौट रहा हूं।' जापानी ने भी उसी वक्त जापान केबल किया—कि एक लाख जूते की जोड़ी फौरन भेज दें, यहां बिक्रीस की बहुत संभावना । कोई भी जूता नहीं पहने हुए है। एक भी आदमी के पास जूता नहीं है। फौरन एक लाख जोड़े भेज ही दें, क्योंकि एकदम बिक्री शुरु हो जाएगी। अमेरिकी वापस लौट गया क्योंकि कोई आदमी जहां जूता ही नहीं पहनता वहां कौन खरीदेगा? जहां जूते पहनने का रिवाज ही नहीं वहां जूते का सवाल ही क्या उठाना है। इन दोनों की दृष्टि भिन्न-भिन्न थी। एक ने बाजार खोज लिया, एक ने बाजार खो दिया। जीवन के बाजार में हम सब उतरते हैं। कुछ लोग बाजार खो देते हैं, कुछ लोग बाजार उपलब्ध कर लेते हैं। जो लोग विश्लेषण से देखते हैं उन्हें जीवन असार दिखाई पड़ता है। वे फौरन केबल करते हैं परमात्मा को कि आवागमन से छुटकारा दिलाओ, हम वापस आना चाहते हैं, जीवन व्यर्थ है, यहां कोई सार नहीं। हे पतितपावन, हमें जल्दी वापस बुला लो। यहां हम नहीं रहना चाहते। लेकिन जो जीवन को संश्लेषण की दृष्टि से देखते हैं वे परमात्मा से कहते हैं 'धन्यवाद है तुझे कि जीवन में हमें आने का मौका तूने दिया और इस योग्य समझा। जीवन में बड़ा आनंद है, जीवन में बड़े मौके हैं, जीवन एक बड़ा अवसर है। अनुग्रहीत हैं हम तेरे कि तूने हमें इस योग्य समझा और इस जीवन में भेजा।
रवीन्द्रनाथ ने एक गीत लिखा है और उस गीत में कहा है कि हे परमात्मा मैं किन शब्दों में तुझे धन्यवाद दूं कि तूने मुझे जीने का मैका दिया। तेरा जीवन बहुत अदभुत था और अगर कुछ दुख भी मुझे उस जीवन में मिले होंगे तो वह मेरी भूल से मिले होंगे, तेरे जीवन के कारण नहीं। तेरा जीवन तो बहुत धन्यवाद का था और मेरी एक ही प्रार्थना है कि अगर तूने मुझे इस जीवन में अपात्र न समझ लिया हो तो बार बार मुझे जीवन के दर्शन का मौका देना। मैं बार बार लौट आना चाहता हूं। शायद अगली बार मैं जाऊं और ज्यादा पात्र होकर जाऊं। जो भूलें मैंने आज की वह

कल न करूं। जीवन तूने दिया, धन्यवाद और आगे भी जीवन देना, इसकी प्रार्थना है।

इस हृदय को मैं धार्मिक हृदय कहता हूं। इस हृदय को मैं जानने वाला हृदय कहत ा हूं। इस हृदय ने जीवन के मंदिर को बनाना और जाना। जीवन का निषेध नहीं—ज ीवन का परिपूर्ण स्वीकार, जीवन क्रांति की दिशा में पहला सूत्र है। जो लोग अपने जीवन को बदलना चाहते हैं, पहले तो उन्हें जीवन से मित्रता साधनी होगी, शत्रुता नहीं। पहले तो उन्हें जीवन का आलिंगन लेना होगा, पीठ नहीं फेर लेनी होगी। पहले तो उन्हें जीवन के रस में विभोर होना होगा। लेकिन हम तो जीवन को देखते ही नहीं। सूरज उगता है, आपने कभी उसे धन्यवाद दिया है या कि चल पड़े परमात्मा की खोज में और चल पड़े आनंद की खोज में। सुबह आंख खुलती है और जीवन आ पके भीतर करवट लेता है। कभी आपने धन्यवाद किया है, जीवन को कि एक दिन मुझे और मिला है, अनुग्रहीत हुआ ।। कृतज्ञता ज्ञापन की कभी? आकाश में चांद त ारे होते हैं। मुफ्त, बिना आपसे कुछ लिए रोज निकल आते हैं। फूल बिना कुछ आप से मांगे रोज खिल जाते हैं। जीवन बिना किसी चीज के व्यय किये आपके भीतर आ नंद की बहुत खबर लाता है, लेकिन हम वे लोग हैं जो जीवन को देखते ही नहीं। हम तो ऐसे जीते हैं जैसे एक बोझ ढोते हों। हम तो ऐसे जीते हैं जैसे एक सजा का टते हों। मैं कारागृहों में गया था एक बार। वहां मैंने लोगों से पूछा—कैसे जी रहे हो ? उन्होंने कहा, जीने का कोई सवाल ही नहीं है। हम केवल सजा काट रहे हैं। मैंने कहा—अगर तुम ही सजा काटते हो तो भी ठीक था। मैं बाहर की बड़ी जेल से आ रहा हूं वहां भी लोग सजा ही काट रहे हैं। वहां भी कोई जी नहीं रहा है, क्योंकि उन्हें जीने के प्राथमिक सूत्रों का भी कोई बोध नहीं है।

पहला सूत्र है जीवन के प्रति अहोभाव, जीवन के प्रति अनुग्रह का भाव और जिस ि दन आप अनुग्रह से देखेंगे उसी दिन वे द्वार खुल जाएंगे जो बंद रहे हैं अब तक—औ र आप हैरान हो जाएंगे कि यह भी मौजूद था जो मैं ने कल तक देखा ही नहीं। औ र मैं क्या देख रहा था, दो कैदी एक कारागृह में बंद थे। वे दोनों कारागृह के सींख चे पकड़े हुए खड़े थे। सींखचे के सामने ही एक गंदा डबरा था जिसमें तरह तरह के कीड़े मकोड़े पल रहे थे और जिससे बेहद बदबू उठ रही थी। एक कैदी उस डबरे को देखे जा रहा था और गाली दे रहा था कि कैद में रखा वह तो ठीक, लेकिन इ स डबरे के पास। दूसरा कैदी भी उसके पास ही खड़ा था। उसकी आंखें आकाश की तरफ उठी थीं। आकाश से पूर्णिमा का चांद निकाल आया था और उससे अमृत की वर्षा हो रही थी और कैदी ने अपने बगल के पड़ोसी को हिलाया और कहा पागल! लेकिन चांद भी है, तू चांद को देखता ही नहीं। किसने कहा तू डबरे को देख। डबर ा है यह तो ठीक, लेकिन किसने कहा कि तू डबरे को देख। तू खुद ही चुनाव कर रहा है डबरे को देखने का, क्योंकि चांद भी मौजूद है और पागल! जब मैंने चांद क ो देखा और चांद को देखकर जब मेरी आंखें डबरे पर गयीं तो मैं हैरान हो गया। व ह डबरा भी बदल गया, क्योंकि उसमें चांद की प्रतिच्छाया बन रही थी। उस डबरे

में मुझे चांद दिखाई पड़ा। क्योंकि चांद को मैंने देखा, चांद से मैं परिचित हुआ,फिर उस डबरे में मुझे कीड़े मकौड़े ख्याल में नहीं आए, चांद की प्रतिच्छवि ही मुझे दिखा ई पड़ी। और तू डबरे को देख रहा है। और मैं जानता हूं कि अगर तू चांद को भी देखेगा तो डबरे को ही प्रतिच्छवि चांद में दिखाई पड़ेगी। यह बिलकुल स्वाभाविक है। हमारी दृष्टि हमारे जगत को निर्मित करती है। धर्मगुरुओं ने मनुष्य के जगत को ि वषाक्त कर दिया, असार दुखपूर्ण कहकर। और उन्होंने जो कहा वह हो भी गया। उ नका अभिशाप फलित हो गया। क्या हम इस दुनिया को ऐसे ही जीते रहें या जीवन की दृष्टि को बदलें? परमात्मा अगर कहीं है तो जीवन के मंदिर में विराजमान है और जिन्हें भी उस मंदिर में प्रवेश करना है वे अहोभाव, जीवन के प्रति धन्यता का बोध, जीवन के प्रति कृतज्ञता का बोध लेकर ही प्रवेश कर सकते हैं। पहली सीढ़ी है जीवन के प्रति अहोभाव और उस सीढ़ी तक पहुंचने की दृष्टि है संश्लेषण और स मन्वय, विश्लेषण नहीं।खंड खंड कर देना नहीं। अखंड से देखें, खंड खंड से नहीं। जो अखंड को देखता है वह धार्मिक है, जो खंड को देखता है अधार्मिक है।

एक छोटी-सी कहानी और कहकर मैं अपनी बात को पूरा करूंगा। बड़ी छोटी कहानी है।

स्वर्ग में, स्वर्ग की एक रेस्तरां में बुद्ध, कन्फ्यूशियस और लाओत्सु तीनों बैठकर गप शप कर रहे हैं। स्वर्ग में भी रेस्तरां होते हैं, क्योंकि जो आदमी जमीन से जाते हैं व ह जमीन की बहुत सी चीजें वहां ले जाते हैं। नहीं ले जाते तो वहां बना लेते हैं। ि फर बुद्ध कन्फ्यूशियस और लाओत्सु तीनों ही, पृथ्वी पर शायद ही किसी रेस्तरां में गए हों। जो जमीन से चूक गए, सोचा होगा स्वर्ग में पूरा कर लें। वे तीनों रेस्तरां में बैठकर गपशप करते हैं। एक अप्सरा एक बहुत सुंदर सुराही में जीवन का रस लेक र आती है। बुद्ध यह देखते ही कि जीवन का रस है, आंख बंद कर लेते हैं, 'बस जीवन दुख और असार है। हटो यहां से अन्यथा में यहां से हट जाऊंगा। लेकिन कन्फ यूशियस कहता है, थोड़ा सा चख कर देख लूं कि कैसा है क्योंकि बिना चखे कुछ भ ी कहना उचित नहीं। छोटी सी प्याली में एक घूंट जीवन का रस लेकर वह चखता है और कहता है, नहीं कोई सार नहीं है, कोई सार नहीं है। वह भी आंख बंद कर लेता है। लाओत्सु कहता है कि पूरी सुराही मुझे दे दो क्योंकि जब तक मैं पूरी को नहीं चख लूं कुछ भी कहना उचित नहीं। हो सकता है जो एक घूंट में न हो वह पूरे घूंट में हो। हो सकता है जो खंड में न हो वह अखंड में हो। तो मैं पूरे ही जीवन को पी जाऊं कि फिर कुछ कहूं। पूरी सुराही पी जाता है और नाचने लगता है और बुद्ध से कहता है कि तुमने बिना चखे कहा कि कुछ भी नहीं है। और कन्फ्यूशियस तुमने एक घूंट पिया और कहा व्यर्थ है। लेकिन जीवन तो उसकी पूर्णता में ही जा ना जा सकता है। और मैं तुमसे कहता हूं, जो जीवन को नहीं जानता वही कहता है व्यर्थ है। वही कहता है असार है। और मैं जीवन को जानकर कहता हूं कि सारभू त जो कुछ है, सब जीवन में है। परमात्मा जीवन में है और मोक्ष भी। लेकिन पूरे जीवन को जो जानते हैं वे ही केवल इस सत्य को अनुभव कर पाते हैं। जीवन को

उसकी पूर्णता में जान लेना ही प्रार्थना है, पूजा है। जीवन को उसकी पूर्णता में जान लेना एक संन्यास है, साधुता है। जीवन को उसकी पूर्णता में जान लेना ही मनुष्य का अंतिम और चरम लक्ष्य और परम उद्देश्य है।

तृतीय प्रवचन

स्वतंत्रता की ओर

एक रेगिस्तानी सराय में एक बड़ा काफिला आया था। यात्री थके हुए थे और ऊंट भी थके हुए थे। ऊंटों के मालिक ने खूंटियां गड़वायीं और ऊंटों के लिए रस्सियां बंधवायीं जिससे कि वे विश्राम कर सकें।लेकिन खूंटियां गाड़ते पता चला कि उनमें से एक की खूंटी और रस्सी खो गयी थी। उस ऊंट को खुला छोड़ना कठिन था, क्योंकि रात उसके भटक जाने की संभावना थी। उन्होंने सराय के मालिक से जाकर कहा : 'यदि हमें एक खूंटी और रस्सी मिल जाये तो बड़ी कृपा होगी क्योंकि हमारी एक खूंटी और रस्सी खो गयी है।' सराय के मालिक ने कहा : 'खूंटियां और रस्सियां तो हमारे पास नहीं हैं, लेकिन तुम ऐसा करो, खूंटी गाड़ दो और रस्सी बांध दो और ऊंट को कहो कि सो जाए। काफिले का मालिक तो बहुत हैरान हुआ । उसने कहा कि अगर खूंटी और रस्सी ही हमारे पास होती तो हम खुद ही न बांध देते? हम कौन सी खूंटी गाड़ दें और कौन सी रस्सी बांध दें।

सराय का मालिक इस पर हंसने लगा और बोला : 'यह जरूरी नहीं है कि ऊंट को असली खूंटी और असली रस्सी से ही बांधा जाए, नकली खूंटी से भी ऊंट बांधा जा सकता है। नकली खूंटी गाड़ दो और झूठी रस्सी ऊंट के गले पर बांध दो और उससे कहो कि वह सो जाए। और कोई रास्ता न था, विश्वास तो न आया कि यह बात हो सकेगी, फिर भी उन्होंने झूठी खूंटी गाड़ी। जो खूंटी नहीं थी उस पर उन्होंने चोटें कीं। ऊंट ने चोटें सुनी और समझा होगा कि खूंटी गाड़ी जा रही है। और वह रस्सी जो नहीं थी, उसे उन्होंने उसके गले पर बांधा। ऊंट ने समझा होगा कि रस्सी बांधी जा रही है। जैसा उन्होंने और ऊंटों को सो जाने को कहा था, ऐसा ही उसने भी कहा। वह ऊंट बैठ गया और सो गया।

सुबह जब काफिला उस सराय से रवाना होने लगा तो उन्होंने निन्यानबे ऊंटों की खूंटियां और रस्सियां खोलीं। लेकिन सौवें ऊंट की तो काई खूंटी ही नहीं, न कोई रस्सी थी। इसलिए न तो उसकी खूंटी उखाड़ी गयी और न रस्सी खोली। निन्यानबे ऊंट तो खड़े हो गए किन्तु सौवें ऊंट ने उठने से इनकार कर दिया। वे बहुत परेशान हुए। उन्होंने जाकर फिर उस सराय के बूढ़े मालिक से कहा कि तुमने कौन सा मंत्र किया है, हमारा ऊंट जमीन से बंधा रह गया, उठ नहीं रहा है? सारे ऊंट उठकर जाने को तैयार हो गए, लेकिन सौवां ऊंट जमीन पर वैसा ही बैठा है। उस सराय के बूढ़े मालिक ने कहा : 'जाकर पहले खूंटी तो उखाड़ो रस्सी तो खोलो। वे बोले : वहां न तो कोई खूंटी है और न कोई रस्सी! मालिक ने कहा, तुम्हारे लिए नहीं होगी लेकि

न ऊंट के लिए है, जाओ खूंटी उखाड़ो और रस्सी खोला। जिस भांति झूठी खूंटी गड़ ाई थी और झूठी रस्सी बांधी थी, उस भांति उन्हें निकालना भी तो होगा।
वे गए। उन्होंने उस खूंटी को उखाड़ा जो कि थी ही नहीं और उस रस्सी को खोला जिसका कि कोई अस्तित्व नहीं था। ऊंट उठकर खड़ा हो गया और बाकी साथियों के साथ चलने को तैयार हो गया। वे बहुत हैरान हुए और उन्होंने सराय के मालिक से पूछा कि क्या रहस्य है इस बात का? उसने कहा: न केवल ऊंट बल्कि आदमी भी ऐसी ही खूंटियों से बंधे होते हैं जिनका कि कोई अस्तित्व नहीं है, और ऐसी ही रस्सियां में परतंत्र होते हैं जिनकी कि कोई सत्ता नहीं है। ऊंटों का मुझे कोई अनुभव नहीं है, लेकिन मनुष्यों के अनुभव के आधार पर ही मैंने ऐसी सलाह तुम्हें दी थी!'

मैं भी उस सराय के बूढ़े मालिक से सहमत हूं। मनुष्यों को देखकर मैं भी इस निष्क र्ष पर पहुंचा है। मनुष्य की परतंत्रता भी अत्यंत असत्य और काल्पनिक कारागृहों प र आधारित है। जिन जंजीरों की कोई भी सत्ता नहीं है, मनुष्य उनमें ही कैद है। औ र जो दीवारें स्व-निर्मित भ्रमों से ज्यादा नहीं हैं, मनुष्य उनके ही कारण मुक्त नहीं हो पाता है। आकाश की मुक्ति जिसका अधिकार हो सकती थी, वह अपने ही हाथों बनाये पिंजड़ों से पीड़ित होता रहता है। और एक व्यक्ति नहीं वरन सारी मनुष्य ज ाति ही इस भांति की दासता से घिरी है। मनुष्य मात्र परतंत्र है। क्या यह सत्य आ पका दिखाई नहीं पड़ता है? शायद नहीं। क्योंकि उनका दिखायी पड़ना ही दासता से मुक्त हो जाना है। गुलामी वास्तविक नहीं है कि उसे तोड़ना पड़े। वह है काल्पनिक । इसलिए उसका दिखायी पड़ जाना ही उसका टूट जाना है। इसलिए मैं मानसिक द ासता की जंजीरों के दर्शन की यात्रा पर आज आपको ले चलना चाहता हूं। उस ऊंट को यदि ज्ञात हो जाता कि व झूठी खूंटी और रस्सी से बंधा है तो क्या वह उसी क्षण मुक्त नहीं था? क्या उसे फिर मुक्त होने के लिए कुछ और करना भी आवश्य क था?
स्वतंत्रता सत्य है। स्वतंत्रता स्वभाव है। उसे पाना नहीं है। वह उपलब्ध ही है। बस जो स्वप्नों की परतंत्रता से मुक्त तो हो जाता है, वह पाता कि वह उसे सदा सदैव ही उपलब्ध ही रही है। वह नित्य उपलब्ध ही उपलब्धि है।
और परतंत्रता?
परतंत्रता अर्जित है। परतंत्रता कल्पित है। परतंत्रता अपने ही हाथों निर्मित है। वह असत्य आवरण है। वह झूठी खूंटी है। वह झूठी रस्सी है। इसलिए उसे जान लेना ही उसे पहचान लेना ही, उसे समझ लेना ही उसकी मृत्यु बन जाती है। वह तो एक स् वप्न की भांति है, जिसका कि जागते ही कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है। लेकिन स् वप्न के भीतर ही स्वप्न बड़े सत्य मालूम होते हैं। ऐसी ही यह परतंत्रता भी बड़ी स त्य और वास्तविक प्रतीत होती है। क्या उस ऊंट के लिए उसकी खूंटी सत्य नहीं थी ? क्या उसके लिए उसकी रस्सी वास्तविक नहीं थी? काश! उसने एक बार भी अप नी खूंटी रस्सी पर संदेह किया होता...विचार किया होता? लेकिन वह तो ऊंट ही थ

ा, उसे क्षमा भी किया जा सकता है। लेकिन मनुष्य के लिए हम क्या कहें? मनुष्य को क्षमा नहीं किया जा सकता है। मनुष्य भी तो विचार नहीं करता है। मनुष्य भी तो आंखें खोल कर नहीं देखता है। वह भी तो नहीं पूछता है कि यह कौन सी परतंत्रता है जो कि उसे सब ओर से सब भांति घेरे हुए है? वह भी नहीं खोजता है कि वे कौन से पत्थर हैं जो उसकी आत्मा को ऊंचाइयों पर नहीं उठने देते हैं? और कौन उन परतंत्रताओं को निर्मित करता है? कोई और या कि वह स्वयं? कौन उसे बांधता है, कोई और या कि वह स्वयं? और जिन बंधनों से वह बंधा है, वे वास्तविक भी हैं या कि नहीं? कहीं वह जीवन भर एक दुख-स्वप्न ही तो नहीं देखता रहता है?

एक जंगल में एक बहेलिए के साथ में एक बार थोड़ी देर रुका था। उससे मैंने यह बात पूछी थी कि जिन तोतों को तुम पकड़ते हो, उन्हें तुम पकड़ते हो या कि वे खुद ही तुम्हारे जाल में फंस जाते हैं? उस बहेलिए ने कहा था : तुम मेरे साथ आओ और स्वयं देख लो। फिर तुम्हीं मुझे बता देना कि मैं उन्हें पकड़ता हूं या कि वे खुद ही मेरी पकड़ में आ जाते हैं।’उसने एक रस्सी बांध रखी थी दो वृक्षों के बीच में और उस रस्सी की ऐंठन में बीच-बीच में कुछ लकड़ियां फंसा रखी थीं। रस्सी के बीच कुछ अनाज के दाने डाल रखे थे। तोते उन लकड़ियों पर आकर बैठते और उनके वजन से लकड़ियां घूम जातीं और तोते लटक जाते। फिर वे बेचारे लकड़ियों को इतने जोर से पकड़ लेते कि कहीं गिर न जाएं। गिरने के भय के करण वे उन लकड़ी को पकड़ लेते थे और उनको छोड़ने की सामर्थ्य और साहस नहीं कर पाते थे। इन लकड़ियों को छोड़ने से वे गिरने वाले नहीं थे। क्या वे भूल गए थे कि वे आकाश में उड़ने वाले पक्षी हैं? जिनके पास आकाश में उड़ने वाले पंख हों उन्हें जमीन पर गिरने का भय नहीं होना था। लेकिन इन पागल तोतों को समझाए कौन? आदमी ही नहीं सुनता है तो तोते क्या सुनेंगे। वे अपने ही हाथों उन लकड़ियों में बंध जाते थे जिनसे कि वे बिलकुल भी बंधे हुए नहीं थे और बहेलिया उन्हें पकड़ लेता था। मैं यह देख कर चुपचाप खड़ा रह गया था तो बहेलिया हंसा था और पूछने लगा था : ‘कहिए मैं उन्हें पकड़ता हूं या कि वे स्वयं ही मेरी पकड़ में आ जाते हैं?

मैं क्या कहता तोते अपने ही हाथ से फंसे थे। असल में जो स्वयं ही फंसने को राजी नहीं है, उसे कोई फांस भी कैसे सकता है। मैं स्वयं के सहयोग के बिना परतंत्र बनाया ही कैसे जा सकता हूं? परतंत्रता सदा ही मेरी स्वीकृति है। अर्थात मेरे अतिरिक्त मुझे और कोई परतंत्र नहीं बनाता है। फिर यह परतंत्रता दुख लाती है, पीड़ा लाती है और प्राण स्वतंत्रता के लिए आतुर हो उठते हैं। और इस भांति जीवन एक बेबूझ पहेली बन जाता है। स्वतंत्रता की खोज जीवन को और उलझाती है असली सवाल स्वतंत्रता की खोज का नहीं। असली सवाल परतंत्रता के पूर्ण दर्शन का है। क्योंकि उसे जानना ही उससे मुक्ति बन जाती है। और जो परतंत्रता की असलियत में उतरे बिना ही स्वतंत्रता की खोज में लग जाते हैं, उनकी यह खोज और नई परतंत्रताओं की जन्मदात्री बन जाती है। मोक्ष की खोज में लगे तथाकथित संन्यासियों के बंद

ी जीवन को देखकर यह भलीभांति समझा जा सकता है। स्वतंत्रता पाना नहीं है। व
ह कोई विधायक, पोसिटिव लक्ष्य नहीं है। केवल परतंत्रता जाननी और खोनी है। उ
से खोते ही जो दोष रह जाता हैव वही स्वभाव है, वही स्वतंत्रता है। इसलिए स्वतंत्र
ता की साधना नकारात्मक, निगेटिव है।

स्वतंत्रता आनंद है। स्वतंत्रता आलोक है। लेकिन फिर क्यों हम परतंत्र होने को राजी
हो जाते हैं? यही पूछना है। यही खोजना है। निश्चय ही कुछ कारण हैं जिनके का
रण हम गुलामी में बंधते हैं और फिर धीर धीरे गुलामी हमारी आदत हो जाती है ि
फर हम इस गुलामी से पीड़ा भी पाते हैं, लेकिन हम गुलामी को छोड़ते भी नहीं हैं।
शायद हमें इन दोनों का संबंध ही दिखायी नहीं पड़ता है। बल्कि पीड़ा से मुक्ति के
उपाय और भी गुलामी को बढ़ाते चले जाते हैं।

मैं उन तोतों पर उस दोपहर सोचता था कि कितने नासमझ हैं। लेकिन आज मैं अप
नी भूल को स्वीकार करता हूं। उस समय तक मनुष्य के मन को मैं ठीक से नहीं स
मझ पाया था। और अब, जब कि मैंने मनुष्य के मन को ठीक से जाना है तो समझ
पाया हूं कि तोते जो नासमझी करते हैं वे नासमझियां तो मनुष्य भी करते हैं, इसि
लए तोतों पर हंसने का कोई कारण नहीं है।

क्या आपने कभी मछुओं को मछलियां पकड़ते हुए देखा है? जिस जाल में मछलियां
को खींच कर वे किनारे पर रखते हैं अगर उस जाल में कभी उन मछलियों को देखें
तो बहुत सी मछलियां जाल के धागों को अपने मुंह में पकड़े हुए दिखायी पड़ेंगी।
कोई उन पागल मछलियों से पूछे कि पागलो! जाल की रस्सियों को क्यों पकड़ रखा
है? तो शायद उसे पता चले कि मछलियां जैसे ही जाल में पड़ती हैं, वे अपने बच
ाव के लिए उन जाल के को को जोर से पकड़ लेती हैं ताकि वे धागे के सहारे अप
ने रक्षा कर सकें। लेकिन वे जिन धागों को पकड़ती हैं वे धागे उसी जाल के होते हैं
जो उन्हें ऊपर खींच लेता है और बांध लेता है, और जो उनकी मृत्यु बन जाता है
। हम सार लोग भी उन धागों को पकड़े हुए हैं। शायद इस सुरक्षा के लिए कि हम
बच जाएं। लेकिन जो भूल मछलियां करती हैं वही भूल हमसे भी हो जाती हैं। हम
उन्हीं धागों को पकड़े हुए हैं जो कि जाल के हैं और उनको पकड़े होने के कारण ज
ाल से छूटने में असमर्थ हो जाते हैं। लेकिन मछलियों के जाल हमें दिखाई पड़ते हैं
और तोतों के जाल दिखाई पड़ते हैं, किन्तु आदमियों के मन का जाल और भी सूक्ष
म है। वह दिखाई नहीं पड़ता है। और जब तक हम उस जाल को ठीक से न देख
लें तब तक हम उस संबंध में कुछ भी नहीं कह सकते हैं। और उसे ठीक से देखने
में सबसे बड़ी बाधा कौन-सी है। सबसे बड़ी बाधा यही है कि हम उसे जाल ही नहीं
समझ रहे हैं। हम उसे ही अपनी सुरक्षा और स्वतंत्रता समझ रहे हैं, इसलिए कठि
नाई बहुत बड़ी हो गयी है।

कौन-सा जाल हमारे चित्त को बांधे हुए है और हम किन कारणों से परतंत्र हैं—इन
बातों को ही आज की संध्या मैं आपसे चर्चा करना चाहता हूं।

इस संबंध में सबसे पहली बात जो एक जटिल जाल की तरह मनुष्य को घेर लेती है और जिसका हमें कभी ख्याल भी पैदा नहीं होता है, और जिसके संबंध में हम क भी विचार भी नहीं करते हैं, बल्कि जिसके संबंध में यदि कोई हमें चेताए तो शायद हम नाराज ही होंगे। वह है मनुष्य की यांत्रिकता। यह एक अत्यंत सीधा और सरल और स्पष्ट तथ्य है। लेकिन हम इसे एकदम से देखने और मानने को राजी नहीं हो ते हैं। क्योंकि वह हमारे सारे अहंकार को धूल धूसरित कर देता है। मनुष्य एक यंत्र है। एक मशीन है। हम यंत्र की भांति जीते हैं--मशीनों की भांति। लेकिन हमें यह भ्रम है कि हम मनुष्य हैं और हम स्वतंत्र हैं। साधारणतः मनुष्य एक यंत्र की भांति जीता है, लेकिन वह सोचता है कि मैं यंत्र नहीं हूं। मैं आत्मा हूं। साधारणतः वह सोचता है कि मैं जो कर रहा हूं, वह मैं कर रहा हूं। लेकिन सचाई तो यह है कि हमसे कर्म होते हैं, हम उन्हें करते नहीं हैं। यदि हम कर्मों को करने में स्वतंत्र नहीं हैं। हम करीब करीब उसी तरह यंत्र चालित हैं जैसे कोई बटन को दबा दे और बि जली जल जाए या कोई मोटर को चला दे और मोटर चल पड़े। हमारा जीवन भी बाहर से अनुप्रेरित है। बाहर की घटनाएं घटती हैं और हमारा जीवन भी उसके अनु सार ही उनकी प्रतिक्रियाओं, रिएक्सन्स में संचालित हो जाता है।

एक आदमी आपका अपमान करता है और आप क्रोध से जल उठते हैं। क्या ये जल उठना बिलकुल यांत्रिक ही नहीं है। लेकिन कहेंगे आप यही कि मैंने क्रोध किया। अ पने क्रोध किया या क्रोध आपको हुआ? क्या कभी आपने सोचा है कि क्रोध करने व ाले आप हैं या क्रोध उसी तरह यंत्र की भांति पैदा होता है जैसे बटने दबाने से बिज ली जल जाती है? धक्का देने पर क्रोध का पैदा होना बिलकुल यांत्रिक, मेकेनिकल है उसमें आपने कुछ किया नहीं। यह कहना भूल है कि मैंने क्रोध किया। यही कहना उचित है कि मुझमें क्रोध जागा। करने का भ्रम बहुत खतरनाक है। आप कहते हैं ि क मुझे फलां व्यक्ति पर प्रेम है, लेकिन शायद ही कभी आपने सोचा होगा कि प्रेम आप कर रहे हैं या कि प्रेम हो गया? आप प्रेम के करने वाले हैं या कि मशीन की भांति संचालित हो गए हैं और आपके द्वारा प्रेम होता है।

बुद्ध एक गांव के पास से निकलते थे। कुछ लोगों ने उन पर पत्थर फेंके और उन्हें गालियां दी और अपमानित किया। बुद्ध ने उन मित्रों से कहा : मुझे दूसरे गांव जल्दी जाना है, अगर तुम्हारी बात पूरी हो गई तो मैं जाऊं? या तुम्हारे पत्थर तुम्हें और फेंकने को बाकी हों तो थोड़ा और रुकूं लेकिन ज्यादा देर न रुक सकूंगा। दूसरे गांव मुझे जल्दी पहुंचना है। उन लोगों ने कहा : 'क्या आप इसे बातचीत कहते हैं? हम ने तो स्पष्ट ही अपमान किया है और गालियां दी हैं। और पत्थर फेंके हैं। लेकिन क या आपको यह दिखायी नहीं पड़ता है कि ये गालियां हैं, यह अपमान है? आपकी आंखों में कोई क्रोध भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। बुद्ध ने कहा : अगर दस वर्ष पहले तुम आए होते तो तुम मुझे क्रोधित करने में समर्थ हो जाते, क्योंकि तब मैं अपन ा मालिक नहीं था। तब मेरे भीतर सारी क्रियाएं यांत्रिक थीं। मेरा कोई आदर करत ा तो मैं प्रसन्न होता और मुझे कोई गालियां देता तो मैं अपमानित होता। ये सारी ि

क्रयाएं बिलकुल यंत्र की भांति होतीं, मैं इनका उस वक्त मालिक नहीं था। लेकिन तुम थोड़ी देर करके आए हो। अब मैं अपना मालिक हो गया हूं। अब कुछ भी मेरे भीतर यांत्रिक नहीं है। जो मैं नहीं करना चाहता हूं, वह अब नहीं होता। वही होता है, जो मैं करना चाहता हूं।

जो मैं नहीं करना चाहता वह भी यदि मेरे भीतर होता हो तो उसे कर्म नहीं कह ज ा सकता। वह एक्शन नहीं, रिएक्शन है, प्रतिकर्म है, प्रतिक्रिया है। हमारे जीवन में सब प्रतिक्रियाएं हैं। और जिसके जीवन में सब प्रतिक्रियाएं हैं, कोई कर्म नहीं हैं, उस के जीवन में कोई स्वतंत्रता संभवना नहीं हो सकती। वह एक मशीन की भांति है, वह अभी मनुष्य नहीं है। क्या आपको कोई स्मरण आता है कि आपने कभी कोई क र्म किया हो? एक्शन किया हो, जो आपके भीतर से जन्मा हो जो बाहर की किसी घटना की प्रतिक्रिया या प्रतिध्वनि न हो? शायद ही आपका ऐसी घटना याद आए ि जसके आप करने वाले मालिक हों। और अगर आपके भीतर आपके जीवन में ऐसी घटना नहीं है जिसके आप मालिक हैं तो इससे बड़े आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है? क्या ऐसी स्थिति में स्वयं को अपना मालिक समझना शेखचिल्लीपन ही न हीं है? हम यही समझते रहते हैं कि हम कुछ कुछ कर रहे हैं और हम अपने कर्मों को करने में स्वतंत्र हैं। जब कि हमारा जीवन एक यंत्रवत, एक मशीन की तरह च लता है। हमारा प्रेम, हमारी घृणा और क्रोध, हमारी मित्रता, हमारी शत्रुता, सब यां त्रिक हैं, मैकेनिकल हैं। उसमें कहीं कोई चेतना, कांसियसनेस कहीं किसी स्वबोध का कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन हम इन सारे यांत्रिक कर्मों को करके सोचते हैं कि हम कर्ता हैं। मैं कुछ कर रहा हूं। और यह कहने का भ्रम हमारी सबसे बड़ी परतंत्र ता बन जाती है। यही वह खूंटी बन जाती है जिसके द्वारा हम जीवन में कभी स्वतं त्र होने में समर्थ नहीं हो पाते और यही वह रस्सी बन जाती है जिसके द्वारा कभी हम अपने मालिक नहीं हो पाते। शायद आप सोचते हों कि जो आप सोचते हैं वह आप सोच रहे हैं तो भी आप गलती में हैं। एकाध विचार को स्वयं में चित्त से अल ग करने की कोशिश करें, तो आपको पता चल जाएगा कि आप विचारों के भी मा लिक नहीं हैं। वे भी आ रहे हैं और जा रहे हैं जैसे समुद्र में लहरें उठ रही हैं और ि गर रही हैं। जैसे आकाश में बादल घिर रहे हैं और मिट रहे हैं। जैसे वृक्षों में पत्ते लग रहे हैं और झड़ रहे हैं। वैसे ही विचार भी आ रहे हैं और जा रहे हैं, आप उन के भी मालिक नहीं हैं। इसलिए विचारक होने का केवल भ्रम है आपको , किन्तु आ प विचारक हैं नहीं।

विचारक तो आप तभी हो सकते हैं, जब आप अपने विचारों के मालिक हों। लेकि न एक विचार को भी अलग करने की कोशिश करें और आपको पता चलेगा कि व ह अलग होने से इनकार कर देगा और तब आपको अपनी असमर्थता और कमजोरी का बोध होगा। और तब शायद आप समझेंगे जैसे सांझ पक्षी अपने वृक्ष पर आकर डेरा ले लेते हैं, ऐसे चारों तरफ उड़ते हुए पक्षी अपने वृक्ष पर आकर डेरा ले लेते

हैं, ऐसे चारों तरफ उड़ते हुए विचार भी आपके मन पर बसेरा कर लेते हैं। लेकिन आप उनके मालिक नहीं हैं।

और क्या कभी आपको ख्याल आया कि एकाध विचार आपके भीतर भी पैदा हुआ है? कोई एकाध विचार आपका भी है या कि सब विचार दूसरों के हैं और उधार हैं। अगर आपके भीतर कभी भी एक विचार का जन्म न हुआ हो जिसको आप कह सकें कि यह मेरा है तो आप निश्चित जान लें कि ये विचार जो आपके मालूम होते हैं, आपके नहीं हैं। वे सब उधार हैं, और बाहर के हैं।

न तो कर्म हमारे हैं, वे यांत्रिक हैं और न विचार हमारे हैं, वे संगृहीत हैं। और इन्हीं कर्म और विचारों के कारण हम अपने को कर्ता और विचारक समझ लेते हैं। और जो ऐसा समझ लेता है वह यहीं रुक जाता है, उसकी आगे की यात्रा बंद हो जाती है। ये दो बातें पहले सूत्र में जान लेनी जरूरी हैं कि कर्म और विचार हमारी मालकियत नहीं है। वे यांत्रिक हैं।

एक रात किसी होटल में एक नया मेहमान आकर ठहरा। ठहरते समय होटल के मालिक ने उससे कहा, मित्र, कहीं और ठहर जाएं तो अच्छा है। होटल में केवल एक ही कमरा खाली है, वह हम आपको दे सकते हैं। लेकिन उसके ठीक नीचे जो मेहमान ठहरा है, उसके कारण वह कमरा हम किसी को भी देने में असमर्थ हैं। क्योंकि आप जो थोड़े हिल डुले भी, थोड़ आवाज भी आपसे हो गई तो उस व्यक्ति से आपका झगड़ा हो जाने की संभावना है। पहले भी जो लोग उस कमरे में ठहरे थे उनका नीचे के मेहमान से झगड़ा हो गया और इसलिए जब तक नीचे का मेहमान ठहरा हुआ है, हमने तय किया है कि ऊपर का कमरा खाली ही रखेंगे। उस नए अतिथि ने कहा: 'आप चिंता न करें। कोई संभावना नहीं है कि मेरा झगड़ा हो जाए। दिन भर में काम मैं व्यस्त रहूंगा और रात लौटूंगा, दो-चार घंटे सोकर सुबह ही अपनी यात्रा पर आगे निकल जाऊंगा। इसलिए कमरा दे दें, झगड़े की कोई चिंता न करें। कमरा दे दिया गया। वह मेहमान दिन भर गांव में काम करके रात लौटा। कोई बारह बज गए होंगे, वह थका-मांदा आया । उसे नीचे के मेहमान का कोई ख्याल भी न रहा। वह आकर बिस्तर पर बैठा। उसने एक जूता खोल कर नीचे पटका। जूते की आवाज से उस से उसे ख्याल आया कि नीचे के व्यक्ति की नींद न टूट जाए, इसलिए उसने दूसरा जूता आहिस्ता से खोल कर चुपचाप रख दिया और सो गया।

कोई दो घंटे बाद नीचे के महानुभाव ने आकर उसका दरवाजा खटखटाया। वह नींद में से उठा। परेशान था कि सोते हुए मुझसे क्या भूल हो गई? उसने दरवाजा खोला। नीचे के मेहमान ने कहा: महाशय, आपका एक जूता गिरा तो मैंने समझा कि आप आ गए हैं। लेकिन दूसरे जूते का क्या हुआ? उसने मेरी नींद समझा कि आप आ गए हैं। लेकिन दूसरे जूते का क्या हुआ? उसने मेरी नींद खराब कर दी। मैंने इस विचार को निकालने की बहुत कोशिश की मुझे क्या मतलब है कि किसी दूसरे के जूते का क्या हुआ? कुछ भी हुआ हो, लेकिन जितना ही मैं इस विचार को निकालने की कोशिश करने लगा, उतना मैं मुसीबत में पड़ गया। सारी नींद धीरे-धीरे उड़

गई और मुझे आपका दूसरा जूता हवा में लटका हुआ दिखाई पड़ने लगा, क्योंकि वह गिरा नहीं । मैंने उसे जूते को हटाने की बहुत कोशिश की अपने मन से, लेकिन मैं अपनी आंख बंद करता तो आपका जूता लटका हुआ दिखाई पड़ता और मन में ख्याल आता कि दूसरे जूते का क्या हुआ? आखिर कोई रास्ता न देख कर मैं आया हूं आपने पूछने! मुझे क्षमा करें, क्योंकि आपकी नींद मैंने तोड़ी है। लेकिन इसके सिवाय और कोई रास्ता न था। अब दूसरे जूते के संबंध में मेरी जिज्ञासा समाप्त हो जाए तो जाकर मैं लेटूं और निश्‍िचतता से सो सकूं। आज ही मैं इस सत्य को जान सका हूं कि एक व्यर्थ के विचार को भी चित्त से हटाना कितना कठिन है?

आप भी ऐसे बहुत से विचारों से परिचित होंगे जिनका हटाना संभव नहीं हुआ होगा । जिनको हटाने में आप समर्थ नहीं हो सके होंगे। तो क्या कारण है कि उन विचारों के मालिक होने का भ्रम हम अपने भीतर पैदा न करें? कौन सी वजह है कि मैं समझूं कि ये विचार मेरे हैं? यदि मैं विचारों का मलिक हूं तो चाहूं तब विचार बंद हो जाने चाहिए और जब चाहूं तब जन्मने चाहिए। और यदि मैं न चाहूं कि विचार चलें तो मेरा मन शांत और पूर्ण मौन हो जाना चाहिए। लेकिन क्या ऐसा होता है? कोशिश करके देखें कि एक क्षण को भी मौन होना संभव है? एक क्षण भी विचारों की धारा को तोड़ना आसान नहीं है। एक विचार को भी बाहर फेंक देना आसान नहीं है। सचाई तो यह है कि जिस विचार को भी आप बाहर फेंकना चाहेंगे, उसी विचार से आपकी शत्रुता खड़ी हो जाएगी। और आप पाएंगे कि व विचार बलपूर्वक आपके भीतर प्रवेश कर रहा है। और आप पाएंगे कि आप हार गए हैं और वह विचार जीत गया है। जिन विचारों को हम हटाना चाहते हैं, वे लौट कर आ जाते हैं और इस बात की घोषणा करते हैं कि आप मालिक नहीं हो। लेकिन जिंदगी भर इस बात को सुनने पर भी हमको यह भ्रम बना रहता है कि हम विचारों के मालिक हैं।

एक व्यक्ति था नसरुद्दीन। वह एक सांझ अपने घर से बाहर निकल रहा था और तभी उसने देखा कि जमाल नामक एक दूसरे गांव का उसका मित्र द्वार पर आकर खड़ा था। नसरुद्दीन ने कहा, मित्र बहुत दिनों के बाद तुम आए हो, तुम ठहरो घर पर, मैं कुछ मित्रों से जरूरी मिलने जा रहा हूं। उनसे मिलकर तीन घंटे बाद में वापिस लौटूंगा, तब तुमसे मिल सकूंगा। या तुम्हारी मर्जी हो तो तुम भी मेरे साथ चले चलो तो मित्रों से तुम्हारा भी मिलना हो जाएगा और रास्ते में तुमसे बातचीत भी हो सकेगी। जमाल ने कहा, 'मेरे कपड़े धूल भरे हो गए हैं फिर रास्ते भर पसीने से डूब गया हूं। इन कपड़ों को पहनकर किसी के घर जाना उचित न होगा। अगर तुम दूसरे कपड़े दे सको तो मैं उन्हें पहन लूं और तुम्हारे साथ चलूं। नसरुद्दीन ने अपने पास जो सबसे अच्छा कोट था, अच्छे कपड़े थे वे मित्र को पहना दिए और उनको पहनाकर अपने गांव में जहां मिलने जाना था, वहां गया।

वह पहले घर पहुंचा। वहां जाकर उस भवन के मालिक से उसने कहा : यह हैं मेरे मित्र। मैं आपको इनका परिचय करा दूं। इनका नाम है जमाल, मेरे बहुत पुराने और घनिष्ठ मित्र हैं। और ये कोट और कपड़े पहने हुए हैं, ये मेरे हैं।

जमाल को बहुत परेशानी हुई होगी। बाहर निकलकर उसने कहा: तुम आदमी कैसे हो? इस बात को कहने की क्या जरूरत थी कि कपड़े किसके हैं? इतना ही काफी था कि तुम मेरे बावत बता देते। मेरे कपड़ा के संबंध में बताने की तो कोई जरूरत भी न थी। अब दूसरे घर में ख्याल रखना, मेरे कपड़ों के बावत कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है। नसरुद्दीन दूसरे मकान में पहुंचा। उसने जाकर कहा: ये हैं मेरे मित्र जमाल, इनसे मिलिए। रही कपड़ों की बात, सो कपड़े उनके ही हैं, मेरे नहीं।

जमाल तो बहुत परेशान हो गया। बाहर निकलकर उसने कहा: तुम पागल तो नहीं हो? इस बात को बताने की जरूरत क्या थी कि कपड़े मेरे हैं! नसरुद्दीन ने कहा, मैंने तो बहुत रोकने की कोशिश की, लेकिन यह विचार एकदम से मेरे भीतर घूमने लगा कि मैंने पहली बात जो गलती कर दी है यह कहकर कि कपड़े मेरे हैं, तो भूल सुधारकर कह दूं कि ये कपड़े इन्हीं के हैं। जमाल ने कहा कि देखो, अब अगले घर में इसकी कोई चर्चा उठाने की जरूरत है नहीं। बिलकुल भी कोई बात उठाना उचित नहीं है। न तुम्हारे, न मेरे। इनकी बात को ही मत उठाना।

वे तीसरे घर में गए। नसरुद्दीन ने कहा: 'ये हैं मेरे पुराने मित्र जमाल, रही कपड़ों की बात सो उसका उठाना बिलकुल ही उचित नहीं है कि किसके हैं?' बाहर निकलकर जमाल ने कहा, अब मुझे तुमसे कुछ भी नहीं कहना है, लेकिन तुम आदमी कैसे हो! कपड़ों की बात क्यों उठाई? उसने कहा: मैंने तो बहुत अपने आपको रोका, लेकिन कठिनाई यह हो गई कि यह रोकने की कोशिश से ही सारी मुसीबत हो गई। रोकते-रोकते यह बात मेरे मुंह से निकल गई कि कपड़ों की बात करना उचित नहीं है चाहे किसी के भी हों, और इसका एक ही कारण दिखाई पड़ता है और वह यह कि मैं इस बात को रोकने की कोशिश कर रहा था।

जिस विचार को आप रोकने की कोशिश करेंगे, आप पाएंगे कि वह बड़ी ताकत से उठना शुरू हो गया है। देखें और करें, और पता चल जाएगा। जिन विचारों को हम निषेध करते हैं, वे विचार बड़ा आकर्षण ले लेते हैं और उसमें बड़े प्राण आ जाते हैं और वे बड़े बलपूर्वक हमारे भीतर उठने शुरू हो जाते हैं। लेकिन एक बात इस घटना से हमें ख्याल में आनी चाहिए, वह यह है कि हम विचारों के मालिक नहीं हैं। लेकिन यही बात हमारे ख्याल में नहीं आती है। अगर हम उनके मालिक होते तो कहते रुक जाओ, तो विचार रुक जाते और हम कहते चलो, तो विचार चलने लगते। लेकिन हम सभी को यह ख्याल है कि मैं विचारक हूं। मैं सोचता हूं। हममें से कोई भी सोचता नहीं है। क्योंकि जो सोचेगा, उसके जीवन में एक क्रांति घटित हो जाती है। जो सोचेगा उसका जीवन बदल जाएगा। जो विचार करने में समर्थ होगा वह स्वतंत्र हो जाएगा क्योंकि स्वतंत्रता और विचार करने की सामर्थ्य एक ही चीज के दो नाम हैं। यह भ्रम छोड़ दें कि आप विचार करते हैं। क्योंकि विचार अगर आप करते हों तो आपके जीवन में दुख और चिंता और तनाव खोजने से भी नहीं मिल सकते थे।

कौन चाहता है कि वह दुखी हो, लेकिन वे विचार जो दुख देते हैं उन पर हमारी कोई मालकियत नहीं है। इसलिए हम उन्हें दूर करने में समर्थ नहीं हो पाते, कौन चाहता है कि व चिंतित हो, लेकिन चिंताएं हमें घेर लेती हैं और हम उन्हें दूर करने में असमर्थ हैं। कौन चाहता है कि वह तनाव से भरा रहे, अशांत रहे, पीड़ित रहे? कोई भी नहीं चाहता है। अगर हम मालिक होते इन विचारों के तो हम इन सारी बातों को कभी का विदा कर देते। परंतु हम मालिक नहीं हैं। और भ्रम हमें यह है कि हम मालिक हैं। यह भ्रांति ही हमारे जीवन को नीचे जमीन से बांध रखती हैं और ऊपर उठने नहीं देती। यह भ्रांति बिलकुल खोटी, बिलकुल झूठी है। इसमें रत्ती भर भी सत्य नहीं है।

विचारक आप नहीं हैं और न ही आप कर्ता हैं। लेकिन हमें यह ख्याल होता है कि मैं यह कर रहा हूं, वह कर रहा हूं। हमें न मालूम कितनी-कितनी बातों का भ्रम है। हमारी जिंदगी में जिन चीजों से हमारे करने का कोई भी संबंध नहीं है उनको भी हम करने का कहते हैं।

आप किसी को कहते हैं कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। क्या कभी कोई आदमी किसी को प्रेम कर सकता है? क्या यह आपके वश में है कि किसी को प्रेम करें? और आपको कह जाए कि फलां व्यक्ति को प्रेम करो तो आपको पता चलेगा कि आपके वश में नहीं है कि आप प्रेम कर सकें। आप मुश्किल में पड़ जाएंगे अगर आपको किसी के प्रेम करने का आदेश दे दिया जाए। आप अपनी सारी ताकत लगाकर हार जाएंगे। और अंत में आप पाएंगे कि जितनी आप कोशिश करते हैं प्रेम के करने की, उतना ही प्रेम दूर होता चला जाता है। आपको पता चलेगा, आपके हाथों में प्रेम बंध नहीं पाता है। आप प्रेम नहीं कर सकते हैं। वह आपका कर्म नहीं है। आप उसके कर्ता नहीं हैं। अगर आपसे कहा जाए किसी पर क्रोध करें, तो क्या आप कोशिश करके क्रोध कर सकते हैं? अगर आप कोशिश करके क्रोध नहीं कर सकते हैं तो फिर आपको यह भ्रम ही होगा कि मैं क्रोध करता हूं। अगर आपसे मैं कहूं कि यह व्यक्ति जो सामने खड़ा है उस पर क्रोध करिए तो आप सारी कोशिश करके, हाथ पैर पटक कर हार जाएंगे। आंखों को कितना ही बज़ इए, हाथ पैर कितने ही जोर से पटकिए, मुट्ठियां बांधिए, लेकिन आप भीतर पाएंगे क्रोध का कोई पता नहीं है। आप मालिक नहीं हैं—न क्रोध के, न प्रेम के, न घृणा के। सारी घटनाएं घटती हैं जैसे आकाश से पानी गिरता है और हवाएं बहती हैं उसी तरह। लेकिन हम इन सबके करने वाले बन जाते हैं। और कहने लगते हैं कि मैं कर्ता हूं। और जब हमें भ्रम हो जाता है कि हम इनके करने वाले हैं, तब एक मुसीबत खड़ी हो जाती है। क्योंकि झूठे भ्रम बंधन का कारण हो जाते हैं। और झूठे भ्रम बड़ी मुसीबत बन जाते हैं। क्योंकि उनके कारण जीवन का यथार्थ हमें दिखाई ही नहीं पड़ता है।

अगर आपको यह ख्याल पैदा हो जाए कि मैं क्रोध करता हूं तो थोड़े बहुत दिनों में आपको यह भी ख्याल पैदा होना शुरू हो जाएगा कि मैं चाहूं तो क्रोध पर विजय भी पा लूं। तो आप कोशिश में लग जाएंगे क्रोध को दबाने की, क्रोध को मिटाने की,

क्रोध को हटाने की। जब कि बुनियादी रूप से आपने कभी क्रोध किया ही नहीं था। आप कभी मालिक ही नहीं थे क्रोध को करने के तो आप क्रोध को हटाने के मालिक कैसे हो सकते हैं? अगर आप क्रोध करने वाले होते तो आप क्रोध को हटा भी सकते। अगर आप प्रेम करने वाले होते तो आप प्रेम को हटा भी देते। लेकिन न तो आप क्रोध करने वाले थे और न प्रेम करने वाले। यह भ्रम था, इसलिए इनको हटाने की बात भी व्यर्थ है। इनको आप हटा नहीं सकते। यह कहना साधारणतः अज्ञान है कि मैं कर रहा हूं। मनुष्य एक यंत्र है। उससे कुछ होता है, लेकिन वह करता नहीं है। अचेतन प्रकृति यांत्रिक रूप से कार्य करती है और हम व्यर्थ ही कर्त्ता बन जाते हैं। कर्ता बनना इतना आसान नहीं है।

एक लड़का जवान हो जाता है। और जवान होते ही उसके भीतर सेक्स का, काम का जन्म होता है। लेकिन सोचता तो वह यही है कि जिस लड़की को वह प्रेम कर रहा है, वह प्रेम कर रहा है। ख्याल उसको यही होता है कि यह मैं कर रहा हूं। लेकिन बड़ी अचेतन शक्तियां हमारे भीतर काम करती हैं। वे हमें धकेलती हैं। जिस दिशा में धक्का देती हैं, उधर हम चले जाते हैं। और हम सोचते हैं कि हम कर रहे हैं।

श्वास आती है और जाती है। लेकिन हम सोचते हैं कि मैं श्वास ले रहा हूं। अगर मैं श्वास ले रहा हूं तो मौत असंभव हो जाएगी। क्योंकि मैं श्वास लेता ही चला जाऊंगा और मौत सामने आकर खड़ी रहे लेकिन मैं श्वास लेना बंद नहीं करूंगा। उससे क्या होगा? मौत को लौटना ही पड़ेगा। लेकिन मौत आज तक नहीं लौटी। क्योंकि मौत जब आती है, तब हमें पता चलता है कि श्वास हम ले नहीं रहे थे, श्वास आ रही थी, जा रही थी और यह हमारा भ्रम था कि हम ले रहे हैं। लेकिन यह भ्रम तभी टूटता है जब श्वास का आना बंद हो जाता है। श्वास टूटने के साथ ही यह भ्रम टूटता है। जीवन भर हमें यही ख्याल रहता है कि मैं श्वास ले रहा हूं। यह खून जो आपकी नसों में बह रहा है, वह आप बहा रहे हैं? यह हृदय जो धड़क रहा है, आप धड़का रहे हैं? यह नाड़ी में जो गति है, आप कर रहे हैं? नहीं यह सब यंत्र की भांति हो रहा है जिस पर हमारी कोई मालकियत नहीं है। यह हमारी स्थिति है।

न तो विचार हमारे हैं, न जीवन, न श्वास, न कर्म। लेकिन हम सभी को यह भ्रम है कि ये हमारे हैं। और इस ख्याल से बंधकर बड़ी कठिनाई हो जाती है, क्योंकि यह ख्याल एकदम झूठा और मिथ्या है। लेकिन क्या मैं यह कहना चाहता हूं कि इसमें आपका कोई भी वश नहीं है? क्या मैं यह कहना चाहता हूं तब आप हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाएं और कुछ न करें? क्या मैं यह कहना चाहता हूं कि आप निराश हो जाएं। नहीं, बल्कि मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि आपको सारी बातें दिखायी पड़नी शुरू हो जाए, अगर सारी स्थिति की समझ, अंडरस्टेंडिग पैदा हो जाए...इस बात का होश आप में पैदा हो जाए कि मनुष्य कैसा यांत्रिक है तो आपके भीतर उस किरण का जन्म हो जाएगा, जो विचार भी कर सकती है और कर्म भी कर सकती

है। लेकिन इस बोध के द्वारा ही उस किरण का जन्म हो सकता है,जो आपको सचेत न जीवन दे सकती है।यांत्रिक जीवन से ऊपर उठा सकती है।
सबसे पहले इस यांत्रिक स्थिति के प्रति जागरूक होना होगा। इस यांत्रिक स्थिति को पूरी तरह समझ लेना होगा, पहचान लेना होगा। इसका पूरा निरीक्षण, ऑबसरवेशन जरूरी है। इसका पूरा परीक्षण आवश्यक है। हमारे जीवन में निरीक्षण बिलकुल भी नहीं है। हम शायद कभी आंख खोलकर देखते ही नहीं हैं कि जीवन में क्या हो रह ा है और यह जीवन क्या है? शायद हम पुरानी कथाओं को, पुरानी धारणाओं को और पुराने चलते हुए अंधविश्वासों को पकड़ लेते हैं और खुद के जीवन का कोई नि रीक्षण नहीं करते हैं।
बचपन से हमें कह दिया जाता है कि देखो क्रोध मत करो। तो बच्चा शायद सोच ले ता है कि मैं क्रोध कर रहा हूं, इसलिए मां-बाप कहते हैं कि क्रोध मत करो। ऐसे उ से क्रोध करने का भ्रम पैदा हो जाता है। बचपन में हमें सिखाया जाता है, अच्छे वि चार करो, बुरे विचार मत करो। छोटे-छोटे बच्चों को यह ख्याल पैदा हो जाता है ि क वे इन विचारों के मालिक हैं। अच्छा विचार करना या बुरा विचार करना मेरी ताकत, मेरे वश में है। और फिर इन्हीं बचपन में पाली हुई अंध धारणाओं को हम जीवन भर ढोते हैं। लेकिन मैं आपसे यह निवेदन करूं कि साधारणतः जब तक मनुष् य की आत्मा सचेतन न हो, जब तक मनुष्य का बोध जागरुक न हो तब तक न तो कर्म उसके होते हैं और न विचार उसके होते हैं। जो आदमी सोया है, उस आदमी की कोई ताकत नहीं, सोए हुए आदमी का कोई वश नहीं है। उसकी कोई शक्ति नहीं है। बिलकुल अशक्त, बिलकुल नपुंसक। उसके भीतर कोई सत्व नहीं है। सोय हु आ आदमी जैसे अपने मनके सपने नहीं देख सकता है, जो भी सपने आते हैं वही उ से देखने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति साधारणतः हम सबकी है। जागे हुए भी स्थिति है। स ोते तो हम सोते ही हैं। जागे हुए भी सोते हैं। क्या कभी आपने सोचा है कि मैं आने मन के सपने देख सकता हूं। क्या कभी आपने यह कोशिश की कि अपने मन के स पने देखूं? क्या कभी आपने जो सपने देखने चाहे वही देखे? नहीं जो सपने आते हैं वही हमें देखने पड़ते हैं, क्योंकि सोया हुआ आदमी कुछ भी नहीं कर सकता है।
जैसे सोया हुआ आदमी सपने देखने में समर्थ नहीं है वैसे ही साधारणतः हम भी जी वन में सोए हुए लोग हैं, जिनका निरीक्षण जागा हुआ नहीं है, जिनका बोध जागा हु आ नहीं है। हम भी जीवन में कुछ भी करने में समर्थ नहीं हैं। और यह सबसे बड़ी भ्रांति है कि हम सोचते हैं कि हम करने में समर्थ हैं। और इस भ्रांति के कारण हम सारे जीवन भर एक ऐसी दीवाल से सिर टकराते रहते हैं कि जिसका परिणाम सि वाय आत्मघात के और कुछ भी नहीं हो सकता है। क्या हमारा जीवन आत्मघात क ी लंबी और धीमी प्रक्रिया नहीं है?
इसलिए सबसे पहली और बुनियादी बात जाननी जरूरी है कि मनुष्य एक यंत्र है। जै सा मनुष्य है वह एक यंत्र है। और उसकी कोई सामर्थ्य नहीं है कि विचार करे या न करे। लेकिन यदि बोध हमारे भीतर पैदा हो जाए तो यह बोध ही हमें यंत्र के ऊ

पर उठने के लिए मार्ग बन जाता है। मनुष्य यंत्र है, लेकिन वह यंत्र ही होने को बा
ध्य नहीं है। चाहे तो वह एक सचेतन आत्मा भी हो सकता है। लेकिन इस होने की
यात्रा में पहला कदम यह होगा कि वह अपनी यांत्रिकता को भलीभांति जान ले।
आत्मज्ञान की ओर यह पहली सीढ़ी है।

क्या आपको कभी यह ध्यान आया है कि नींद में जब रात का सपना चलता है, अ
गर आपको यह पता चल जाए कि यह सपना है तो इसका क्या मतलब होगा? इस
का मतलब होगा कि नींद टूट गई है। अगर आपको यह पता चल जाए कि मैं जो दे
ख रहा हूं वह सपना है, तो इसका मतलब यह होगा कि नींद टूट गई है। अगर आ
पको यह पता चल जाए कि जिस जिंदगी को मैं जी रहा हूं वह एक यांत्रिक जिंदगी
है, तो आप समझ लेना कि आपकी जिंदगी में इस यांत्रिकता की समाप्ति का क्षण
आ गया है। आपके भीतर एक नई किरण का जन्म हो गया है। नींद में पता नहीं च
लता कि मैं सपना देख रहा हूं। यही पता चलता है कि जो देख रहा हूं वह सत्य है।
यही नींद का सबूत है। और जिस क्षण यह पता चल जाए कि जो मैं देख रहा हूं
वह सपना है, झूठा है, तब आप जान लेना कि आपके भीतर जागरण शुरू हो गया,
आपने जागना शुरू कर दिया है।

देखें! अपने जीवन को ध्यान से देखें। क्या वहां सब यंत्रवत प्रतीत नहीं होता है? क्य
ा हमारा जीवन एक यांत्रिक गति नहीं है, जिसमें हम बाहर के धक्कों पर जीते हैं।
जिसमें हम बाहर के द्वारा संचालित होते हैं। जिसमें बाहर से कोई हमारे धागे खींच
ता है और हमारे प्राण उसी भांति गति करने लगते हैं। लेकिन ऐसी जिंदगी है। स्वतं
त्र जीवन तो वह है जो भीतर जीया जाता है, बाहर से नहीं।

एक फकीर था। वह एक गांव में ठहरा हुआ था। एक आदमी ने आकर उससे ऐसे
अपशब्द कहे कि जो प्राणों में कांटों की भांति चुभ जाएं। जितनी तीखी गालियां हो
सकती हैं उस भाषा में, उसने उसका उपयोग किया। उस फकीर ने बैठकर सारी बा
तें सुनीं। सुनने के बाद उसने कहा, मित्र, एक दफा सारी बातें फिर से दोहरा दो, ह
ो सकता है कोई बात, मैं ठीक से न सुन पाया होऊं। उस व्यक्ति ने साश्चर्य कहा :
'ये सारी बातें भी कोई फिर से दोहरा के सुने जाने की हैं? वह फकीर बोला : बहुमू
ल्य बातें तुम लाए हो और उनको कहने में बड़ी मेहनत कर रहे हो। तुम्हारी आंखों
में आग जल रही है, तुम्हारे हृदय में भी आग होगी और तुम बड़ा कष्ट उठा रहे
हो और मैं उनको शांति से भी न सुन सकूं, यह तो बड़ी अशिष्टता होगी। लेकिन ह
ो सकता है, तुम इतने क्रोध में हो और शायद इतनी जल्दी में कि मैं कुछ बातें न
सुन पाया होऊं तो फिर तुम उन्हें एक दफा दोहरा दो, ताकि मैं उन्हें ठीक से सुन
सकूं। रही उत्तर की बात, तो उत्तर मैं तुम्हें कल दूंगा। चौबीस घंटे सोचने का मुझे
मौका दो। और अगर मैं न आऊं तो तुम समझ लेना, तुमने जो बातें कहीं थीं वे स
ही थीं। अगर कोई बात गलत होगी तो मैं आकर तुम्हें निवेदन करूंगा। वैसे अभी त
ो मैं केवल धन्यवाद ही दे सकता हूं और अनुग्रह ही जता सकता हूं। मेरे लिए तुमने

इतना श्रम उठाया है, उसके लिए मैं जितना भी स्वयं को ऋणी मानूं, उतना ही क म है।

लेकिन क्रोध की बातें के लिए कोई कभी एक क्षण के लिए रुककर सोचता है? कोई गाली देता है और हमारे भीतर आग लग जाती है। क्या उसके गाली देने में और हमारे भीतर आग में एक क्षण का भी अंतराल, इंटरवल होता है? नहीं, उसने वहां गाली दी और इधर हमारे भीतर आग शुरू हो गई वैसे ही जैसे कि किसी ने आग लगा दी और लकड़ी जलना शुरू हो जाए। क्या क्षण भर का भी मौका होता है सो च विचार का? नहीं होता और इसीलिए तो हमारा सारा जीवन यांत्रिक है। उसमें ि वचार का, जागरण का, होश का एक क्षण भी नहीं है। चीजें बाहर घटती हैं और हमारे भीतर काम शुरू हो जाता है।

लेकिन उस फकीर ने कहा कि मैं कल आकर उत्तर दूंगा। वह कल गया, लेकिन इस बीच चौबीस घंटे में वह आदमी बदल गया था, जिसने गालियां दी थीं। क्योंकि जि सने हमें गालियां दी हैं अगर हम गालियों का उत्तर न दें तो उस आदमी के क्रोध के जीने में और आगे जीते रहने में कठिनाई हो जाती है। हम उसके सहारे नहीं रह जाते। उसकी आग और आगे जले इसकी गुंजाइश नहीं रह जाती है।

वह फकीर जब दूसरे दिन उसके पास गया तब वह आदमी रोने लगा और उसने क हा मैंने बहुत गलत बातें कहीं। फकीर हंसने लगा और बोला: तुम भूल में हो। मैंने खोजा तो पाया कि तुमने जो कहा, ठीक ही कहा। काश! मैं कल ही तुम्हें उत्तर दे ता तो भूल हो जाती। उस समय मैं चुप रह सका। और स्वयं को सोचने और देखने का समय दे सका तो सारी स्थिति ही बदल गई। आह! तुम जैसा मेरा मित्र और कौन है? अपनी कृपा आगे भी जारी रखना और जब भी मुझ में कोई भूल दिखाई पड़े तो चेता देना।

यह फकीर सोच रहा है। लेकिन हम? हम भी सोच रहे हैं क्या? हम जरा भी नहीं सोच रहे हैं और हमारा अंधापन ऐसा है कि हमें यह भी दिखाई नहीं पड़ता। इस अं धे क्रम में, इस अंधे रास्ते पर यह भी हो सकता है कि आपको गाली दूं, लेकिन आ प मुझे उत्तर न दे सकें तो आप किसी और को उत्तर दें और आपको यह ख्याल भी न आए कि आप क्या कर रहे हैं।

एक आदमी अगर दफ्तर में काम करता है और उसका मालिक उसको गाली दे दे, अपमान कर दे तो चूंकि मालिक के क्रोध का उत्तर नहीं दिया जा सकता है, वह क्र ोध को पी जाएगा। क्रोध तो उठ आएगा भीतर, क्योंकि क्रोध न मालिक को देखता है, न किसी को, क्रोध तो भीतर जलने लगेगा। लेकिन साहस, सुरक्षा और बहुत से ख्याल उसे भीतर दबा देंगे। वह क्रोध भीतर उबलता रहेगा। मालिक तो ताकतवर है और जैसे नदी ऊपर की तरफ नहीं चल सकती, नीचे की तरफ बहती है। वैसे ही क्रोध भी नीचे की तरफ बहेगा। वह घर जाएगा, कमजोर पत्नी मिल जाएगी घर पर, और कोई भी बहाना निकालेगा और कमजोर पत्नी पर टूट पड़ेगा। और उसे य ह ख्याल भी न आएगा कि यह क्रोध अंधा है और पत्नी से इसका कोई संबंध नहीं

है। वह पत्नी पर टूट पड़ेगा। वह पत्नी को मारे या गालियां दे या अपमान करे तो पत्नी पति से क्या कह सकती है? उसे तो हर तरह से सिखाया गया है कि पति है परमात्मा। इसलिए वह जो कहे सो सुन लेना और वह स्त्री उस क्रोध को पी लेगी। लेकिन क्रोध भीतर जग जाएगा, और जैसे नदी नीचे की तरफ बहती है, उसका ब च्चा जब स्कूल से लौट आएगा तब कोई भी बहाना मिल जाएगा और बच्चे को पीट ना शुरू कर देगी। कमजोर बच्चे पर पत्नी का क्रोध निकलना शुरू हो जाएगा। और बच्चा क्या कर सकता है? मां को तो कुछ कह नहीं सकता। हो सकता है वह अपन ी गुड़िया की टांग तोड़ डाले या बस्ते को पटक दे या स्लेट फोड़ दे। ऐसा क्रोध अंधे की तरह बहता रहेगा। ऐसे हमारे सारे जीवन के विचार और भावनाएं और कर्म ए क अंधे चक्कर में घूम रहे हैं। इसे सुनकर हमें हंसी आती है लेकिन आपने एक कहा नी जरूर सुनी होगी और आप उस पर हंसे होंगे और आपको कभी ख्याल भी न आ या होगा कि वह कहानी आपके बावत ही है।

एक सुबह एक राजा का दरबार भरा था। और एक आदमी आया। उसकी आंख से खून बह रहा था। उसकी एक आंख फूट गई थी। उस आदमी ने आकर राजा के दर बार में कहा कि 'महाराज! मुझे पर बड़ा अन्याय हो गया है। रात में मैं एक घर में चोरी करने घुसा। लेकिन अंधेरा होने की वजह से मैं भूल से दूसरे घर में चला गय ा। वह दूसरा घर जुलाहे का था। और जुलाहे ने अपने कपास साफ करने के यंत्र क ो खूंटी पर टांग रखा था। वह मेरी आंख में लग गया और मेरी आंख फूट गई। अब मैं मुश्किल में पड़ गया हूं। मैं चोरी कैसे करूंगा? जुलाहे ने मेरी आंख फोड़ दी है। आप जुलाहे को बुलाइए और उसे आंख फोड़ने के बदले में आंख फोड़े जाने की स जा दीजिए ताकि मुझ पर, गरीब पर अन्याय न हो। आपकी भी बदनामी न हो आप के राज्य में ऐसा अन्याय हो रहा है। राजा ने कहा कि फौरन जुलाहे को पकड़कर ल ाया जाए, यह तो बहुत बुरी बात है। यह बिचारा चोर क्या करेगा। उसकी एक आं ख फूट गई है। एक तो काम इसका रात का और अब एक आंख फूट जाने से क्या होगा।

फौरन उस जुलाहे को दो सिपाही पकड़कर ले आए। उस जुलाहे ने कहा मेरे मालिक ! कसूर तो मुझसे हो गया कि मैंने खिड़की पर अपना यंत्र टांग दिया, लेकिन आप देखिए कि मुझे दोनों आंखों की जरूरत पड़ती है। कपड़ा बुनते वक्त मुझे दोनों तरफ दाएं बाएं देखना पड़ता है। अगर मेरी एक आंख फोड़ दी गयी तो फिर कपड़ा बुन ना मुश्किल हो जाएगा। ज्यादा अच्छा हो कि मेरे पड़ोस में एक चमार रहता है और उसका काम ऐसा है जूता सीने का कि एक आंख से भी चल सकता है। दो आंख की उसे कोई खास जरूरत भी नहीं। उसको बुलवाकर उसकी एक आंख फोड़ दें तो न्याय भी पूरा हो जाएगा और मैं गरीब भी बच जाऊंगा। राजा ने कहा कि यह बात बिलकुल ठीक है। न्याय तो पूरा होना ही चाहिए और इस भांति भी कि किसी को असुविधा न हो। नीति का यही तो नियम है कि सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे

। चमार को बुलवा लो और उसकी आंख फोड़ दो। चमार को बुलवा लिया गया औ र उसकी आंख फोड़ दी गई और न्याय संतुष्ट हो गया।
यह कहानी आपने सुनी होगी। नहीं सुनी होगी तो मैं आपसे कहता हूं। यह कहानी आपको एकदम मूर्खता पूर्ण, बिलकुल अर्थहीन मालूम होगी। क्या वह राजा पागल था ? इस तरह कहीं न्याय होता है? लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि वह राजा हम सब के भीतर बैठा है। और हम सब यही कर रहे हैं। रोज रोज यही कर रहे हैं।
जो क्रोध किसी पर उठता है वह किसी और पर निकल रहा है और न्याय पूरा हो रहा है। जो घृणा किसी पर पैदा होती है वह कहीं और बही जा रही है। और हमा री जिंदगी इसी पागल बादशाह की तरह न्याय से भरी है। और यह न्याय इसीलिए हुआ जा रहा है कि हम सोये हुए हैं और इसके प्रति जागे हुए नहीं कि क्या हो रहा है। ये विचार क्या कर रहे हैं, ये कर्म क्या कर रहे हैं? यह हमसे क्या हुआ जा र हा है? इसका हमें कोई बोध नहीं है, कोई होश नहीं है, कोई जागरूकता नहीं है।
यह जीवन की स्थिति है। यांत्रिकता जीवन की स्थिति है। और इस यांत्रिकता में चा हे कोई मंदिर जाता हो और चाहे कोई मस्जिद जाता हो, चाहे कोई कुरान पढ़ता ह ो या चाहे कोई गीता पढ़ता हो, कुछ भी न होगा। क्योंकि जो आदमी अभी अपने ि वचार और कर्म के ऊपर सचेत नहीं है, उसका गीता या कुरान का पढ़ना खतरनाक ही सिद्ध होगा। आज नहीं कल, वह गीता और कुरान के नाम से भी लड़ेगा और हत्या करेगा। उसका हिंदू होना खतरनाक है, उसका मुसलमान होना खतरनाक है। क्योंकि जो आदमी अंधा है उसका कुछ भी होना खतरनाक है। और वह जो भी करे गा उससे जीवन को दुख पहुंचेगा, पीड़ा पहुंचेगी, अशांति बढ़ेगी, युद्ध होगा, हिंसा ह ोगी। यह जो सारी दुनिया में हो रहा है--यह हिंसा, युद्ध और परेशानी इसके लिए कोई राजनैतिक जिम्मेवार है ऐसा भी मत सोचना और ऐसा भी मत सोचना कि कम् युनिस्ट उसका जिम्मेवार है और ऐसा भी मत सोचना कि अमेरिका जिम्मेवार है। क्य ोंकि जब अमेरिका नहीं था, तब भी युद्ध था इस जमीन पर। और जब कम्युनिस्ट न हीं थे, तब भी युद्ध हो रहे थे।
पांच हजार साल में चौदह हजार छह सौ युद्ध हुए हैं। कौन यह युद्ध कर रहा है? यह सोया हुआ आदमी ही युद्ध की जड़ में है। यह जो भी करेगा उससे हिंसा पैदा ह ोगी। युद्ध पैदा होगा। और यह सोया हुआ आदमी जो भी बनाएगा उससे विनाश हो गा। इधर वर्षों की मेहनत के बाद हमने अणु-शक्ति की खोज की है। और इस खोज का परिणाम यह हुआ कि हम तैयारी कर रहे हैं कि किस भांति हम सारे मनुष्य को समाप्त कर दें। किस भांति हम सारी दुनिया को नष्ट कर दें। इसकी तैयारी कर रहे हैं। हमने तैयार पूरी कर ली है और किसी दिन आज या कल किसी भी दिन सुबह उठकर आप पा सकते हैं कि दुनिया अपनी मौत के द्वार पर आ खड़ी हो गई है। और हम अपनी हत्या करने को राजी हो गए हैं। सोया हुआ आदमी और उसके हाथ में इतनी बड़ी ताकत! बेहोश आदमी, यांत्रिक आदमी और उसके हाथ में इत नी बड़ी ताकत। बड़ी खतरनाक बात है। और ताकत कितनी है, शायद उसका आप

को अनुमान भी न हो। इतनी बड़ी ताकत आज तक आदमी के हाथों में इस जमीन पर नहीं थी। यह ताकत होती तो शायद हम बहुत पहले ही दुनिया को खतम कर चुके होते। लेकिन अब हमारे पास ताकत आ गई है। हजारों अण और उदजन बम हमने तैयार करके संग्रहीत कर रखे हैं। ये इतने ज्यादा हैं कि मारने को आदमी भी नहीं है। हमारे पास आदमी हैं कुल साढ़े तीन अरब। साढ़े तीन अरब बहुत थोड़े लोग हैं। पच्चीस अरब आदमी मारे जा सकें इतने उदजन बम हमने तैयार कर लिए हैं। कई कारणों से ऐसा किसा है । हो सकता है कि एक दफा मारने से आदमी न मरे तो दुबारा मारना पड़े, तीसरी बार मारना पड़े। हमने सात- सात बार एक आदमी को मारने का इंतजाम कर लिया है, ताकि कोई भूलचूक न हो। जमीन बहुत छोटी है, इस तरह की सात जमीनें नष्ट कर सकें, इतना हमने इंतजाम कर रखा है। शायद आपको ख्याल भी न हो कि मनुष्य ने यदि अपनी ही हत्या की योजना की होती तो भी ठीक था, उसका उसे हक था। आदमी अगर चाहे हम नहीं रहना चाहते तो उसे रोकने के लिए कोई भी क्या कर सकता है? उसकी अपनी मौज। लेकिन आदमी ने अपने साथ सारे कीड़े-मकौड़े पशु पक्षियों, पौधों सबके जीवन की समाप्ति का इंतजाम कर रखा है। आदमी के साथ सारा जीवन समाप्त होगा। वे छोटे कीटाणु भी समाप्त हो जाएंगे जिनकी उम्र लाखों वर्षों की हैं। जिनको मारना बहुत कठिन होता है, वे भी मर जाएंगे। क्योंकि आदमी ने जो ताकत इकट्ठी की है, उससे इतनी गरमी पैदा होगी कि किसी तरह का जीवन संभव नहीं रह जाएगा। एक उदजन बम के विस्फोट से कितनी गरमी पैदा होती है, आपको पता है? जमीन से सूरज कोई नौ करोड़ मील दूर है। लेकिन सूरज इतने दूर से हमको तपा देता है और परेशान करता है। और गरमी के दिनों में जरा-सा करीब सरक आता है और हमारी मुसीबत हो जाती है। उदजन बम से जितनी गरमी सूरज पर है उतनी ही हम जमीन पर पैदा करने में समर्थ हो गए हैं—उतनी ही गर्मी! नौ करोड़ मील दूर कसूर हमें परेशान करता है तो जब सूरज आपके पड़ोस में आ जाएगा तो क्या होगा? शायद फिर भी आपको ख्याल पैदा न हो कि गरमी कितनी है। एक सौ डिग्री हम गरम करते हैं तो पानी भाप बनकर उड़ने लगता सौ डिग्री कोई गरमी नहीं है। लेकिन उबलते हुए पानी में आपको डाल दिया जाए तो क्या होगा? अगर हम पंद्रह सौ डिग्री तक गरमी पैदा करें तो लोहा पिघलकर पानी हो जाएगा। लेकिन पंद्रह सौ डिग्री भी कोई गरमी नहीं है। अगर हम पच्चीस सौ डिग्री गर्मी पैदा करें तो लोहा तो भाप बनकर उड़ने लगता है। लेकिन पच्चीस सौ डिग्री भी कोई गर्मी नहीं है।

एक उदजन बम में विस्फोट से जो गर्मी पैदा होती है वह होती है दस करोड़ डिग्री। दस करोड़ डिग्री गर्मी कोई छोटी मोटी सीम में पैदा नहीं होती। चालीस हजार वर्ग मील में एक उदजन बम के विस्फोट से दस करोड़ गर्मी पैदा हो जाती है। उस गर्मी में किसी तरह के जीवन की कोई संभावना नहीं रहती किसने पैदा किया यह उदजन बम और किसलिए? यह पागल दौड़ किसलिए चल रही है? पिछले महायुद्ध में हमने पांच करोड़ लोगों की हत्या की है और अब इंतजाम किया है सबकी हत्या

करने का। यह कौन कर रहा है? और आदमी कहता है हम विचारवान है! आदमी पर शक होता है कि कैसा विचारवान है? यह आदमी कर रहा है, और आदमी क हता है कि हम करने में समर्थ हैं! तो फिर युद्ध रोकने में समर्थ क्यों नहीं हो पाते? लेकिन हम जानते हैं हमारे बावजूद युद्ध करीब आ रहा है।

पहला महायुद्ध खतम हुआ तब सारे विचारशील लोगों ने कहा था कि अब हम कभी युद्ध न करेंगे। लेकिन पंद्रह साल भी नहीं बीते थे कि दूसरे युद्ध की हवाएं उठनी शुरू हो गईं। दूसरा महायुद्ध हुआ। दोनों महायुद्धों में करोड़ों लोगों की हमने हत्या की दुनिया के सारे विचारशील लोगों ने कहा : अब हम कभी युद्ध न करेंगे। यह अ ब अंतिम युद्ध है। लेकिन दूसरा महायुद्ध खतम भी न हो पाया था कि तीसरे की तै यारियां शुरू कर दीं। यह आदमी विचारशील है? यह आदमी करने में समर्थ है? इ सके अपने कर्मों पर भी इसका कोई वश नहीं, बिलकुल नहीं, बिलकुल नहीं। आदमी बिलकुल यंत्र की भांति चला जा रहा है। और आगे भी यदि यांत्रिकता की दौड़ ऐ सी ही रही तो यह भी हो सकता , सारी दुनिया समाप्त हो जाए। हम मनुष्यों के स ाथ जीवन भी समाप्त हो सकता है।

लेकिन इसे रोका जा सकता है। इसे रोकने के लिए सिवाय इसके कोई उपाय नहीं है कि मनुष्य यांत्रिकता से मुक्त हो जाए। वह नींद से जागे। उपाय यह है कि मनुष्य अपनी यांत्रिक क्रियाओं से ज्यादा सचेत, ज्यादा बोधपूर्ण ज्यादा होश से भरा हो। व ह ज्यादा बोध पूर्व जिए। अगर मनुष्य के भीतर बोध पैदा हो जाए तो जीवन के जो रोग हैं उनके ठहरने की कोई जगह नहीं रह जाएगी। मनुष्य की बेहोशी में रोगों क ो ठहरने का स्थान है। अगर आप होश से भर जाएं तो आप हिंदु न रह जाएंगे, न मुसलमान रह जाएंगे। अगर आप होश से भर जाएं तो आप हिंदुस्तानी रह जाएंगे, न पाकिस्तानी रह जाएंगे। अगर आप होश से भर जाएं तो काले गोरे के भेद की प कड़ नहीं रह जाएगी। अगर आप होश से भर जाएं तो जीवन में घृणा और क्रोध की जगह नहीं रह जाएगी। अगर आप होश से भर जाएं तो आपके जीवन में एक प्रेम का जन्म होगा। एक परमात्मा का स्मरण होगा। एक प्रकाश पैदा होगा। वह न केव ल आपको बदलेगा वरन उसकी रोशनी आपके आसपास भी और घरों में अंधेरे को तोड़ने लगेगी। थोड़ से लोग भी अगर प्रकाश से भर जाएं और होश से भर जाएं तो जमीन के भाग्य में एक नया सूर्योदय हो सकता है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं, ज्यादा बातें नहीं कहीं। मूलतः एक ही बात कही कि मनुष्य यांत्रिक है और सोया हुआ है। और जो मनुष्य सोया हुआ है उसके जीव न में कोई आनंद नहीं हो सकता है। दुख ही होगा। दुख स्वाभाविक है। उसके जीवन में कोई शांति नहीं हो सकती। उसके जीवन में सत्य नहीं हो सकता है, स्वतंत्रता नहीं हो सकती है।

तो पहली खूंटी जो हम अपने बाबत बांधे हुए हैं वह यह है कि हम विचार करने में समर्थ हैं। जब कि झूठ है यह बात। और दूसरी खूंटी है कि हम कर्म करने में मा

लक हैं। यह बात झूठी है। ये तो झूठी खूंटियां और रस्सियां हमारे जीवन को घेरे हु
ए हैं। इनको तोड़ देना जरूरी है।
ये कैसे टूटेंगी? ये निरीक्षण से और चित्त के प्रति जागरूक होने से टूट जाती हैं।
मनुष्य यंत्र है। लेकिन मनुष्य यंत्र भी नहीं है, यंत्र के ऊपर भी उठ कर उनके भीत
र कोई शक्ति है। मनुष्य जड़ है अभी, लेकिन उसके भीतर आत्मा सोयी हुई है, वह
जाग सकती है। और मनुष्य में अभी कोई विचार नहीं है, लेकिन उसके भीतर वि
चार का जन्म हो सकता है। किस द्वार से और किस मार्ग से? वह हो सकता है स्व
यं की समस्त क्रियाओं और विचारों के प्रति जागरूकता से। जो मैंने कहा उसे देखने
की कोशिश करना। अपने कर्मों के बावत। अपने विचारों के बावत उसे सोचने की
कोशिश करना। और देखने से यह सत्य अगर दिखाई पड़ जाए तो समझना आपके
जीवन में क्रांति की शुरूआत हो गई है। आपका जीवन बदलने के किनारे आ गया है
। इस पर थोड़ा विचार होश से भरने की कोशिश करना कि आपके कर्म, आपके वि
चार कहीं यंत्र की भांति तो नहीं हो रहे हैं? अगर ये यंत्र की भांति हो रहे हैं तो स्
वयं को मनुष्य कहने का कोई अधिकार नहीं है। मनुष्य तो वही है जिसका मन जाग
ा हुआ है। मनुष्य तो वही है जो सत्य जानने में समर्थ है। मनुष्य तो वही है जो स्व
तंत्र है।

चतुर्थ प्रवचन

धर्म विचार नहीं उपचार

सत्य की खोज में जो सबसे बड़ी बाधा है, अक्सर उस बाधा की ओर हमारा ध्यान
भी नहीं जाता है और फिर जो भी हम करते हैं, वह सब मार्ग बनाने की बजाय मा
र्ग को अवरुद्ध करनेवाला हो जाता है। एक अंधे आदमी को यदि प्रकाश जानने की
कामना पैदा हो जाए, आकांक्षा पैदा हो जाए कि मैं भी प्रकाश को और सूर्य को ज
ानूं तो वह क्या करे? क्या वह प्रकाश के संबंध में शास्त्र पढ़े? क्या वह प्रकाश के
संबंध में सिद्धांतों को सीखे? क्या वह प्रकाश के संबंध में बहुत ऊहापोह और विचार
में पड़ जाए? क्या वह प्रकाश की कोई फिलासफी कोई तत्वदर्शन अपने सिर पर ब
ांध ले? और क्या इस भांति प्रकाश का दर्शन उसे हो सकेगा? नहीं जिस अंधे व्यकि
त को प्रकाश की खोज हो उसे प्रकाश के संबंध में नहीं, अपने अंधेपन के संबंध में,
अपने अंधे पन को बदलने के संबंध में निर्णय लेने होंगे। उसे अपनी आंखों के संबंध
में सोचना पड़ेगा।
प्रकाश को जानना हो तो आंखों के संबंध में कुछ करना पड़ेगा। प्रकाश के संबंध में
कुछ भी नहीं। लेकिन यदि वह प्रकाश के संबंध में कुछ करने में लग जाए तो वह
शक्ति और श्रम व्यर्थ जाएगा, क्योंकि उसी शक्ति और श्रम से आंखें भी खुल सकत
ी हैं। लेकिन समान्यतः यही होगा। चक्षुहीन को जब भी प्रकाश के संबंध में कोई ख्या
ल और कामना पैदा होगी तो वह प्रकाश के संबंध में श्रम करना शुरू कर देगा। ऐस
ा सभी श्रम व्यर्थ है ऐसी सभी श्रम निरर्थक है। सार्थक हो भी सकती है उसकी खो

ज, यदि वह आंख के संबंध में कुछ करे। इसलिए धर्म को मैं विचार नहीं कहता हूं। कहता हूं उपचार। धर्म कोई वैचारिक खोज नहीं है, बल्कि आत्मचिकित्सा है। वह स्वयं का उपचार है। धर्म कोई कोरे वैचारिक तत्वज्ञान की बात नहीं, बल्कि भीतर बंद आंखों को खोलने का मार्ग और पद्धति है। इस अर्थ में धर्म जीवन का परम विज्ञान है। इसलिए उपचार है।

एक गांव में एक अंधा आदमी था। उसके मित्रों ने एक दिन उसे भोजन पर आमंत्रित किया। उसे भोजन में कुछ चीजें पसंद आयीं। उसने पूछा कि ये कैसे बनी हैं? उसके मित्रों ने कहा : दूध से बनी हैं। वह अंध मित्र बोला : मैं जानना चाहूंगा कि दूध कैसा होता है। ठीक था उसका पूछना, उसके पूछने में तो कोई गलती नहीं थी, लेकिन मित्र पंडित रहे होंगे। उन्होंने समझाना भी शुरू कर दिया। उन मित्रों ने दूध के संबंध में भी समझाना शुरू कर दिया कि दूध कैसा होता है। एक मित्र ने कहा कि तुमने नदी पर उड़ता हुआ बगला देखा होगा। उसके जैसे सफेद शुभ्र पंख होते हैं वैसा ही दूध का रंग होता है, यह भी मुझे पता नहीं। तो मेरी पहली समस्या वहीं खड़ी है कि दूध कैसा होता है और तीसरी और खड़ी हो गई कि यह बगुला क्या होता है। आपके उत्तर ने मुझे और कठिनाई में डाल दिया। मित्र परेशान हुए। एक दूसरे मित्र ने समझाने की कोशिश की कि बगुला कैसा होता है। वह अपने हाथ को उस अंधे के करीब ले गया और कहा कि मेरे हाथ पर हाथ फेरो। जैसा, मेरा हाथ मुड़ा हुआ है वैसी ही बगुले की गर्दन होती है। उस अंधे ने उसके हाथ पर हाथ फेरा और खुशी से उसकी आंखों में आंसू आ गए और वह बोला कि मैं समझ गया कि दूध कैसा होता है--मुड़े हुए हाथ की तरह।'

ठीक ही उसने कहा। ठीक ही उसका निष्कर्ष है। उस अंधे आदमी की तो काई भी भूल नहीं। भूल है उन आंखवालों की जिन्होंने उसे आंख न रहते हुए प्रकाश और रंग और वस्तुओं के संबंध में कुछ समझाने की कोशिश की। मनुष्य का मन इधर हजारों वर्षों में सुलझा नहीं है, और उलझ गया है। और दया है उन पंडितों की, दार्शनिकों की, और विचारकों की, जिन्होंने आत्मा, परमात्मा और सत्य के संबंध में बहुत से विचार दे दिए हैं। और हमारे हाथों में उनका वही हाल हुआ है, जो उस अंध के हाथ में हुआ था। उसने समझा कि मुड़े हुए हाथ की तरह दूध होता है और हमारी भी परमात्मा और आत्मा और सत्य के संबंध में जो समझ है, वह इससे भिन्न नहीं। यही वजह है कि ये सत्य को समझाने वाले लोग आपस में लड़ते हैं। एक दूसरे की हत्या भी करते हैं। एक दूसरे के विरोध में ही जीवन लगाते हैं और यह सत्य के समझने वाले लोग भी संप्रदाय खड़ा करते हैं और मनुष्य जाति को आपस में खंडित करते हैं और धर्म के नाम पर जो हुआ है, वह सभी कुछ हमें ज्ञात है। निश्चित ही सत्य की यह समझ किसी अंधे आदमी की समझ होगी, अन्यथा सत्य तो सौंदर्य को लोने वाला है। वह जीवन को कुरूप तो नहीं करता। जीवन में संगीत को लाने वाला बनता वह सत्य। विसंगीत तो उससे पैदा हनीं होता। वह मनुष्य-जाति को परमात्मा के निकट ले जानेवाला बनता। लेकिन यह सत्य की तथाकथित बातें बौर इन

के केंद्र पर बने हुए संगठन और संप्रदाय, परमात्मा तो बहुत दूर, पड़ोसी से भी जो. डने में समर्थ नहीं हो सके। इन्होंने पड़ोसी से भी भी पड़ोसी को तोड़ दिया है और जो पड़ोसी से तोड़ देता हो, वह उसे परमात्मा से जोड़ सकेगा, यह तो नितांत असंभव है।

जो बात एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से भी नहीं जोड़ पाती, वह मनुष्य को परमात्मा से कैसे जोड़ सकेगी? मंदिरों में, मस्जिदों ने, संप्रदायों ने मनुष्य को ईश्वर से दूर रखने के सारे उपाय किए हैं, निकट पहुंचाने के नहीं। और यही तो वजह है कि तीन-चार हजार वर्षों के इतिहास के बाद हम मनुष्य को पाते हैं कि वह और अधार्मिक होता चला जा रहा है। तीन-चार हजार वर्षों की धार्मिक बनाने की चेष्टा और परिणाम यह! बड़ी आश्चर्यजनक मालूम होती है यह बात लेकिन मुझे आश्चर्य नहीं होता है। यह तथाकथित धार्मिकता का अत्यंत ही स्वाभाविक परिणाम है। और यदि मंदिर और मस्जिद, हिंदू और सत्य के नाम पर चलती हुई परंपरागत थोथी बातें इसी भांति चलती रहीं तो वह दिन भी दूर नहीं है जब कि धर्म तिरोहित हो सकता है। और स्मरण रहे कि धर्म की इस हत्या में धर्म को नष्ट करने में अधार्मिक लोगों का हाथ नहीं है। इन सबको नष्ट करने में उन्हीं लोगों का हाथ है, जिन्होंने धर्म को उपचार न बनाकर, एक विचार और उपदेश, एक सिद्धांत और एक तत्वज्ञान बनाया। एक चिकित्सा नहीं, एक विज्ञान नहीं, जो कि मनुष्य की आत्मा को परिवर्तित करे। बल्कि उन्होंने धर्म को बनाया, एक वादविवाद, सैद्धांतिक ऊहापोह और अनुमान। परिणामतः उनकी शास्त्रीयता ने जीवन को और उलझा दिया। बजाए इसके कि वे जीवन की कोई समस्या और प्रश्न को हल करते, उनका हर समाधान नए प्रश्नों को जन्म देने में सहयोगी होता चला गया। पांच हजार वर्षों में कौन-सा प्रश्न हल हुआ है। आत्मा का या परमात्मा का या मोक्ष, जन्म का या पुर्नजन्म का। मनुष्य के जीवन का कौन सा प्रश्न हल हुआ है? बल्कि यदि देखें थोड़ी भी आंखें खोलकर तो दिखाई पड़ेगा कि हर समाधान और नई समस्याएं खड़ा करता है। प्रश्न बढ़ते गए हैं और उत्तर कोई भी नहीं है। और फिर भी हमें यह दिखाई नहीं पड़ता है कि यह उत्तर की खोज की कहीं बुनियाद में गलत तो नहीं है। और यह सब समाधानों का सिला हमें एक दूसरे से अलग करता गया है और तोड़ता गया तो नहीं है।

शास्त्रों को, शब्दों को, सिद्धांतों को समाधान समझ लेने की भूल से ही यह सब भ्रांति पैदा हुई है। शब्दों में समाधान नहीं है। समाधान तो चित्त के परिवर्तन में है। व्यक्तित्व के परिवर्तन में समाधान है। असमाधान जहां है, वहीं समाधान भी खोजना है। आंखें नहीं हैं, तो समस्या आंखों के इलाज की है। प्रकाश के तत्वदर्शन से क्या होगा। लेकिन अंधे व्यक्ति शायद प्रकाश के संबंध की जानकारी से आंखों की कमी पूरी कर लेना चाहते हैं। लेकिन प्रकाश को जानना और प्रकाश के संबंध में जानना बिलकुल ही भिन्न बातें हैं। और जो प्रकाश के संबंध में सत्य है, वही परमात्मा के संबंध में भी सत्य है। उसे देखने के लिए भी शास्त्र नहीं, शब्द नहीं, सिद्धांत नहीं, बल्कि आंखें चाहिए। निश्चय ही वे आंखें चित्त के परिवर्तन से उपलब्ध होती हैं। धर्म अंत

स की आंखों की खोज है। लेकिन वह आंतरिक क्रांति न बनकर एक सांप्रदायिक मत ाग्रह बन गया है अंधों के हाथों में। अंधों ने आंखों की चिकित्सा की जगह प्रकाश के सिद्धांतों पर युद्ध खड़े कर रखे हैं। इसलिए तो धर्म के नाम पर जो उपद्रव दिखाई पड़ता है वह आकस्मिक नहीं है। वह धर्म को उपचार न मानकर विचार मानने की भूल का सहज परिणाम है। मेरे लिए धर्म चिकित्सा है आंखों की। उन आंखों की जो कि प्रत्येक को उपलब्ध है लेकिन बंद हैं।

सत्य का समझा नहीं जा सकता, सत्य को देखा जा सकता है। फिर से दोहराता हूं: सत्य को समझा नहीं जा सकता है, सत्य को देखा जा सकता है। सत्य को वैज्ञानि क रूप से नहीं जाना जा सकता, नहीं सत्य की कोई धारणा वैचारिक रूप से बनाई जा सकती; लेकिन सत्य को अनुभव किया जा सकता है। सत्य के संबंध में विचार की कोई गति नहीं, लेकिन आंख की गति है। इसलिए मैं कहता हूं कि धर्म एक चिि कत्सा है, एक उपचार है।

सत्य को जानने की जिज्ञासा किसके मन में नहीं है? ऐसा कौन मनुष्य है जिसमें जी वन हो, जिसके प्राणों में स्पंदन हो और जिसके हृदय में कभी न कभी जीवन के सत य को जानने की आकांक्षा पैदा न हो जाती हो? ऐसा कौन सा मनुष्य है, जो जीवन के अर्थ को और अभिप्राय को जानने से वंचित रह जाना चाहता हो? ऐसा कौन स ा मनुष्य है जो यह न जान लेना चाहता हो कि वह क्यों है और किसलिए है? और उसकी इस सारी जीवनयात्रा का कोई अर्थ भी है या कि सब अर्थहीनता है? निश्चि त ही हर एक के मन में यह प्यास किसी-न किसी दिन पैदा होते से ही भटक जाती है। भटक जाती है इसलिए कि वह सत्य के संबंध में विचार करने लगता है। सत्य के संबंध में सब विचार अंधे के प्रकाश को टटोलने से ज्यादा नहीं है। और इस अंध ी टटोल में यदि कुछ बातें बहुत सम्यक तर्कयुक्त, प्रामाणिक और संगत, कोहरेंट भ ी मालूम पड़ें तो भी वह संगति...विचार, कल्पना और अनुमान की ही है, उससे सत य का कोई वास्ता नहीं है।

एक इंस्पेक्टर किसी स्कूल में विद्यार्थियों की परीक्षा लेने आया था। उसके पहले ही खबर आ गई कि वह पागल है। उसके प्रश्न ही ऐसे होते थे कि बच्चे उत्तर नहीं दे पाते थे। बच्चे क्या शिक्षक भी उत्तर नहीं दे पाते थे और तब व स्कूल की रिपोर्ट ख राब कर जाता था। वह परीक्षा लेने एक स्कूल में आया तो शिक्षक घबराए हुए थे। प्रधान अध्यापक घबराया हुआ था। बच्चे घबराए हुए थे। उसके प्रश्नों में कोई अर्थ ह ी नहीं होता था। उत्तर देने का सवाल ही नहीं था। उसने आते ही बच्चों से पूछा ि क एक प्रश्न जो मैं सब जगह पूछता हूं उसका अभी तक किसी ने उत्तर नहीं दिया है वही तुमसे भी पूछता हूं। अगर तुमने उसका उत्तर दे दिया तो मुझे और कुछ भी नहीं पूछना है, क्योंकि उससे बात साफ हो जाएगी। कोई हंडी के एक ही चावल क ो देख लेता है और बात साफ हो जाती है। उसने प्रश्न पूछा कि दिल्ली से एक हवा ई जहाज प्रति घंटा दो सौ मील की रफ्तार से कलकत्ता की तरफ चला तो क्या तु म बता सकते हो कि मेरी उम्र कितनी है।

बच्चे बहुत हैरान हुए होंगे। कोई भी हैरान होता। न तो यह कोई प्रश्न था और न कोई इसमें संगति ही थी। शिक्षक घबराए। प्रधान अध्यापक खड़े थे। वह भी घबराए। जिंदगी के बड़े बेबूझ प्रश्न खड़े किए थे, लेकिन यह तो जिंदगी से भी ज्यादा बेबूझ प्रश्न था। इसका तो कोई अर्थ ही नहीं है, लेकिन इससे भी एक बड़ा आश्चर्य यह हुआ कि एक बच्चे ने उत्तर देने के लिए हाथ हिलाया। तब तो अध्यापक और प्रधान अध्यापक और भी घबराए कि बात यहीं तक रहती तो ठीक थी। प्रश्न तो व्यर्थ था ही उत्तर और भी पागलपन होगा। लेकिन वह इंस्पेक्टर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि खड़े हो जाओ। तुम पहले बच्चे हो जिसने कि हिम्मत की है उत्तर देने की। लोग तो चुप ही रह जाते हैं उत्तर देते वक्त। लड़का खड़ा हुआ और उसने कहा कि मेरे अलावा कोई उत्तर दे भी नहीं सकता था। आप पूरे मुल्क में घूम लेते तो भी उत्तर मैं भी दे सकता था क्योंकि मामला ही कुछ ऐसा है कि मुझे ही इसके उत्तर का पता हो सकता है। इंस्पेक्टर ने कहा : 'पहले उत्तर दो।' वह लड़का बोला : आपकी उम्र चवालीस वर्ष है। इंस्पेक्टर तो एकदम हैरानी हो गया। उसकी उम्र चवालीस वर्ष की थी। उसने कहा, 'मैं हैरान हूं लेकिन तुमने किस विधि से यह उत्तर निकाला?'

उस लड़के ने कहा, विधि बहुत सरल है। मेरा एक बड़ा भाई है वह आधा पागल है और उसकी उम्र बाइस वर्ष है, इसलिए आपकी उम्र चवालीस वर्ष होनी ही चाहिए। इस विधि से ही मैंने यह उत्तर निकाला है।

धर्म के नाम पर ऐसे ही विक्षिप्त प्रश्नों और उत्तरों का तांता लगा रहा है। प्रश्न पूछने वाले तो ठीक हैं, लेकिन उत्तर देने वाले भी आखिर मिल ही जाते हैं। शायद ऐसा सोचा जाता है कि जब प्रश्न पूछा जा सकता है तो उत्तर भी होगा ही। ऐसे एक शाब्दिक खिलवाड़ पैदा हो गया है, जिसकी पहुंच और गहराई शब्दों से ज्यादा गहरी नहीं है। शब्दों के शतरंज से शास्त्र भरे पड़े हैं। और शब्दों की भाषागत संगति ही सत्य की उपलब्धि समझ ली जाती है। भाषा मनुष्य निर्मित है, उसके नियम मनुष्य-निर्मित हैं, उनकी पहुंच मनुष्य की सीमित बुद्धि से ज्यादा ऊंची न है, न हो सकती है। तर्कयुक्तता भी मनुष्य की बुद्धि की सीमा के बाहर कोई अर्थ ही नहीं रखती है। वह सब भी खेलों में तय किए गए नियमों से ज्यादा नहीं है। उसमें न तो कोई अनिवार्यता है और न स्वयं के बाहर उसकी कोई प्रामाणिकता या सार्थकता ही है।

मनुष्य सत्य की खोज में जिस खेल में उलझ जाता है, वह खेल है अनुमान का। अनुमान पुराना प्रश्न तो हल नहीं करते, नए प्रश्न जरूर खड़े कर देते हैं। और नए प्रश्नों के उत्तर में नए अनुमान करते होते हैं, फिर ये अनुमान और नए प्रश्न खड़े कर देते हैं। ऐसे एक चक्र और जाल पैदा हो जाता है। इस चक्र और जाल से धर्म का कोई भी संबंध नहीं है।

परमात्म की कल्पना और अनुमान में उर्वर मस्तिष्कों ने क्या नहीं किया है। स्वर्ग और नरक की कल्पनाएं पैदा करने वाले लोग निश्चय ही क्षमताशाली कवि रहे होंगे। और मोक्ष के चित्र बनाने वाले चित्रकारों की प्रतिभा पर कौन संदेह कर सकता है?

और दार्शनिकों की बुद्धिमत्ता का तो कहना ही क्या है! उन्होंने तो अपने तर्कजाल से नई सृष्टियों को ही जन्म दे डाला है। लेकिन यह ध्यान रखना जरूरी है कि इन सब उर्वक और स्वप्नसर्जक दिशाओं से धर्म का कोई भी नाता नहीं है। धर्म की दिश ा और ही है। वह ज्ञात से अज्ञात का अनुमान नहीं है। वह ज्ञात के आधार पर अज्ञा त की मनोसृष्टि नहीं है। वह तो ज्ञात नोन से मुक्ति है ताकि चेतना अज्ञात अननोन में प्रवेश कर सके। क्योंकि ज्ञात से अज्ञात नहीं जाना जा सकता है। वह तो तभी प्रकट होता है जब कि ज्ञात विदा हो जाता है। ज्ञात का सेतु अज्ञात से जोड़ता नहीं, तोड़ता है।

अज्ञात का न विचार हो सकता है, न अज्ञात की कल्पना हो सकती है, न अज्ञात क ा अनुमान ही हो सकता है। क्योंकि वैसा सब विचार, सब कल्पना, सब अनुमान ज्ञा त का ही विस्तार होगा। वह ज्ञात का ही रूपांतर होगा। वह मूलतः नई वेषभूषा में ज्ञात ही होगा। ऐसे उससे अज्ञात को जानने का भ्रम पैदा होता है, लेकिन वह अज्ञा त नहीं है। और सत्य अज्ञात है, परमात्मा अज्ञात है, स्वयं की सत्ता अज्ञात है। जीव न अज्ञात है। इस अज्ञात को जानने की आंख ही तो धर्म है।

धर्म जब पतित होता है तो उसके पतन का मार्ग होता है—काल्पनिक ऊहापोह, काल्पनिक विचार। अंधे आदमी को निश्चित ही प्रकाश के संबंध में बड़ी सूझें आती होंगी । उसे बड़े-बड़े ख्याल सूझते होंगे। लेकिन क्या उसका कोई भी विचार प्रकाश के किञ्चत भी निकट पहुंच सकता है? अंधे व्यक्ति को तो अंधकार का भी पता नहीं होत ा है। अंधकार को जानने के लिए भी तो आंख जरूरी है! अंधकार का ज्ञान प्रकाश के अभाव का है तो ज्ञान है। आंखें न होने पर वह भी नहीं हो सकता है। अंधे व्यकि त को अंधकार का ही ज्ञान नहीं है, तो प्रकाश का अनुमान तो असंभव ही है। लेकि न धर्म बना हुआ है : प्रकाश की शिक्षा और उपदेश! ओह! क्या इससे बड़ी भी भूल हो सकती है?

विचार की दिशा में सत्य को जानने और पाने का कोई द्वार नहीं है। लेकिन द्वार ज रूर है। वह द्वार है आंख की दिशा में। अनुभव की दिशा में। साक्षात्कार की दिशा में ।

क्या इससे मेरा अर्थ है कि आप विचार न करें और विश्वास करें? विश्वास तो विच ार से भी नीचे गिर जाना है।

विचार से नीचे नहीं गिरना है। विचार से ऊपर उठना है। और विचार की सीमाओं तक पहुंचाने में विचार सहयोगी है। उसके आगे विश्वास नहीं करना है, वरन निर्विच ार हो जाना है।

विश्वास तो विचार ही नहीं पैदा होने देता है।

इसलिए विश्वास के विरोध में मैं कहता हूं विचार करो।

लेकिन विचार पर ही रुक मत जाओ। विचार की दिशा में ही भटक मत जाओ। वि चार की सीमाओं को देखो और पहचानो। अज्ञात को जानने की उसकी असमर्थता क ा दर्शन करो। ऐसे निर्विचार के लिए पथ प्रशस्त होता है।

विश्वास पर जो ठहर जाता है, वह तो चलता ही नहीं है।
विचार में जो चलता ही जाता है, वह अंतहीन श्रृंखला में पड़ जाता है।
निर्विचार को जो उपलब्ध होता है, वह सत्य को उपलब्ध हो जाता है।
विश्वास के कांटे को विचार के कांटे से निकालना है।
विचार के कांटे को निर्विचार के कांटे से निकालना है।
और निर्विचार के कांटे को फेंक देना है, क्योंकि फिर कोई कांटा निकालने को नहीं रह जाता है।
फिर जो चेतना शेष रह जाती है, वही आंख है जिससे सत्य का साक्षात्कार होता है।
ऐसी चेतना पाने के तीन सूत्र हैं।

आत्मचिकित्सा का पहला सूत्र है : सरलता। सरल चित्तता। या शांति। जानने से पूर्व...कुछ भी जानने से पहले, प्रेम या सत्य या सौंदर्य, एक असत्य शांत और सरल चित्त चाहिए।

चित्त हमारा बहुत अशांत है। और वही अशांति हमारा अज्ञान है। जैसे कोई झील लहरों से पीड़ित और कंपित हो और वह चांद के लिए दर्पण न बन पाती हो, ऐसा ही हमारा मन है। अशांत होने के कारण वह भी जीवन के लिए दर्पण नहीं बन पाता है। हमारी अशांति के कारण वह भी जीवन के लिए दर्पण नहीं बन पाता है। हमारी अशांति के कारण जीवन का प्रतिफलन हममें नहीं बन पाता है और हम उससे अपरिचित ही रह जाते हैं। उसके बीच...उसमें होकर भी उससे अपरिचित रह जाते हैं। सागर के बीच होकर भी जैसे कोई मछली सागर से परिचित न हो ऐसे ही हम हैं। परमात्मा में होकर भी परमात्मा को नहीं जान पाते हैं। वह तो सदा द्वार पर ही खड़ा है। क्या जीवन निरंतर सब ओर मौजूद नहीं है। क्या सब ओर केवल वही और वही नहीं है? वह तो जरूर है, लेकिन शायद अशांति के कारण हम ही मौजूद नहीं हैं। परमात्मा तो उपस्थित है, लेकिन हम अनुपस्थित हैं। अशांति स्वयं को इतने खंड खंड में तोड़ देती है कि स्वयं की कोई उपस्थिति ही नहीं रह जाती है। और स्वयं के चित्त के इस भांति खंड-खंड होने से उसमें जीवन के जो प्रतिबिम्ब बनते हैं वे भी खंड-खंड हो विकृत हो जाते हैं। चित्त के इन अशांत खंडों में इतना अंतर्द्वन्द होता है कि परमात्मा द्वार पर खड़ा चिल्ला भी रहा हो तो सुनाई नहीं पड़ सकता है। और वह वस्तुतः निरंतर सब ओर से पुकार रहा है, लेकिन हम अपने चित्त के शोरगुल में ही इतने डूबे हुए हैं कि करीब-करीब बहरे ही हो गए हैं। यह वधिरता आंतरिक व्यस्तता से पैदा होती है। स्वयं में अत्यधिक व्यस्त ऑक्यूपाइड होने से जीवन के प्रवेश के लिए रंध्र कहां,छिद्र कहां, द्वार कहां, अवकाश कहां? जीवन कहां से हम में प्रवेश करे? हम हैं भीतर भरे अशांति से...और इतने ठोस और आकंठ हम भरे हुए हैं कि वहां जीवन प्रवेश ही कैसे करेगा? सत्य के लिए स्वयं में शून्य नहीं है। वह तो द्वार पर खड़ा है, लेकिन हम उसके ग्राहक नहीं हैं। हमारे चित्त का पात्र भरा हु

आ है और यही हमारी अपात्रता है। उसे पाने की पात्रता चित्त खाली और रिक्त हो
ते ही उपलब्ध हो जाती है।
अशांत चित्त ने आंखों को बंद किया है। शांति चित्त होते ही आंखें अचानक खुल जा
ती हैं। उन्हें फिर खोलना नहीं पड़ता है। अशांत हम क्यों हैं? कौन-सी बात है जो
भीतर द्वंद्व से भरे हुए हैं। कौन सा कारण है जो हमारे भीतर सब कोलाहल हो गया
है? शांति तो हमें स्वप्न में भी अनुभव नहीं होती है। क्या हुआ है भीतर? शायद
पशु पक्षी भी हमसे ज्यादा शांत हैं, पौधे भी ज्यादा शांत हैं। चांद तारे भी ज्यादा शां
त हैं। मनुष्य को कौन सा रोग हो गया है। इस पूरे विश्व में मनुष्य के सिवाय और
अशांति कहां है? अगर जमीन से मनुष्य हट जाए —और मनुष्य पूरी कोशिश कर र
हा है कि हट जाए, हटने की पूरी चेष्टा कर रहा है—तो जमीन पर अशांति कहां?
मनुष्य की आंखों में अतिरिक्त और किसी पशु और पक्षी की आंखों में भी अशांति ि
दखाई पड़ती है? अशांति, बेचैनी तनाव क्या सभी मनुष्य की ईजादें नहीं हैं? पक्षी
भी हमसे ज्यादा गीत गाने में स्थिति में हैं और हम तो गीत भी गाते हैं तो झूठे हो
ते हैं।
नीत्से से किसी ने पूछा था कि तुम निरंतर हंसते रहते हो बात क्या है? नीत्से ने
कहा था कि इसलिए स्वयं को हंसने में उलझाए रहता हूं कि कहीं रोने न लगूं। आह
! कितनी सत्य बात है। मनुष्य के संबंध कितना कड़ुवा लेकिन सत्य तथ्य है। तो ह
म गीत भी इसलिए गाते हैं कि कहीं रोने न लगें और हम फूलों को अपने हृदय पर
चिपकाए रहते हैं कि भीतर के कांटे न दिखाई पड़ जाएं और हम ऊपर से सुंदर ि
दखते हैं भीतर जो है उसे छिपाने और ढांकने को। मनुष्य न मालूम किस दुविधा में
है? मनुष्य किस अन्तसंघर्ष, कानफ्लिक्ट में है, कैसे द्वंद्व में है? इस द्वंद्व ने सब अशां
त कर दिया है और इस अशांति से बचने के लिए वह पूछता है कि हम ईश्वर को
कैसे जानें, हम आत्मा को कैसे पाएं, हम मोक्ष में कैसे जाएं। नहीं, मोक्ष और आत्म
ा और ईश्वर के संबंध में सोचना व्यर्थ है। सार्थक होगी यह बात जान लेना कि मैं
अशांत क्यों हूं। और फिर जानकर उस अशांति के कारण से मुक्त हो जाना सार्थक
हो सकता है। और जो अशांति से मुक्त है, वह मोक्ष में है, जो अशांति से मुक्त है
वह आत्मा में है, जो अशांति से मुक्त है वह सदा परमात्मा में है।
अशांति का पहला कारण तो यह है कि हर मनुष्य जैसा है और जो है उससे तृप्त ह
ोने के लिए राजी नहीं है। वह कुछ और होना चाहता है। हर मनुष्य कुछ और होना
चाहता है। वह जो है और जैसा है उससे राजी नहीं है और जब कि जीवन के बुि
नयादी सत्य में से एक सत्य यह है कि जो मनुष्य जो है वही हो सकता है, कुछ औ
र नहीं। कुछ और होने की दौड़ मूढ़तापूर्ण है, कुछ और होने की दौड़ नासमझी है।
कुछ और होने की दौड़ में ही चित्त तनता है और खिंचता है और अशांत होता चल
ा जाता है और विफल होता चला जाता है। और अंततः एक पीड़ा के अतिरिक्त स्व
यं में कुछ भी नहीं छूट जाता है। जो मनुष्य जो है वह वही हो सकेगा। लेकिन किस
ी ने सिखा दिया है कि तुम कुछ और हो जाओगे। हजारों साल की शिक्षाएं काम क

र रही हैं...दूषित भ्रांत। निरंतर समझाया जा रहा है महावीर जैसे हो जाओ, राम जै
से हो जाओ, कृष्ण जैसे हो जाओ, क्राइस्ट जैसा हो जाओ। लेकिन कोई यह कहने व
ाला नहीं है कि तुम अपने जैसे हो जाना। यही सिखाया जा रहा है कि किसी और
जैसे हो जाओ, जैसे कि हमारे अपने होने का कोई प्रयोजन ही नहीं है। बस, तुम कि
सी और की अनुकृति किसी ओर की कार्बन कापी पैदा होने को पैदा हुए हो! जैसे ि
क तुम्हारे अपने होने की कोई अर्थवत्ता ही नहीं है। तुम किसी और के होने का अ
भिनय करने के लिए पैदा हुए हो—राम हो जाओ, कृष्ण हो जाओ, लेकिन क्यों क्या
प्रत्येक मनुष्य का स्वयं होने का अधिकार नहीं है? निश्चित ही प्रत्येक मनुष्य को पर
मात्मा जन्म देता है। उसे अधिकार है कि वह स्वयं वह जैसा हो। किसी और जैसे ह
ोने की दौड़ गलत है। यह जो किसी और जैसे आदर्श के अनुकूल होने की चेष्टा शुरू
 होती है, उसे मनुष्य विकृत द्वंद्वग्रस्त और पीड़ित होता चला जाता है। और फिर ि
वकृति के कारण और भी आदर्श निर्मित करने होते हैं, क्योंकि मनुष्य को बचाना अ
ावश्यक होता है। और ये आदर्श और विकृति लाते हैं। ऐसे एक दुष्टचक्र पैदा होता
है। इसी दुश्चक्र से पूरी मनुष्यता पिस रही है। असभ्य लोग भी सभ्य लोगों से ज्यादा
 शांत हैं और शांत थे, लेकिन सभ्य आदमी अशांत होता जाता है। जितनी सभ्यता
बढ़ती है, उतनी विक्षिप्तता बढ़ती है। अमरीका ने तो जैसे चरम अंक छू लिया है स
बसे ज्यादा पागल पैदा करने का। अमरीका सबसे बड़ा सभ्य मुल्क है—इससे यही सि
द्ध होता है, यह तो बिलकुल साफ ही है। जो मुल्क सबसे ज्यादा पागल पैदा करता
है, वह सबसे बड़ा सभ्य मुल्क है और जिस दिन कोई मुल्क पूरा पागल हो जाएगा,
वह उसकी संस्कृति की चरम अवस्था होगी। व्यक्ति व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व है।
इस व्यक्तित्व पर अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व को थोपने की चेष्टा विक्षिप्तता पैदा
न करेगी तो और क्या पैदा करेगी? व्यक्ति को वही होने दो जो कि वह हो सकता
है, तो ही वह स्वस्थ रह सकता है। उसे कुछ बनाने की चेष्टाएं उसे ज्वरग्रस्त कर स
कती हैं। सभ्यता का महारोग यही है। मनुष्य को भी आदर्श ढांचों में ढालने की कोि
शश ने मनुष्य का जीवन ही विषाक्त कर दिया है। मनुष्य की शांति और स्वास्थ्य के
 लिए उसे स्वयं होने की सुविधा और स्वतंत्रता चाहिए। यह सुविधा और स्वतंत्रता
आप स्वयं को दें। स्वयं स्वीकारें। किसी और से स्वयं की तुलना न करें। आप आप ह
ी हैं। आप कोई और नहीं हैं। और जैसे ही आप किसी ओर से स्वयं की तुलना कर
ते हैं, आप अशांत और विक्षिप्त होने की दिशा में गतिमय हो जाते हैं। बढ़ती हुई
अशांति और विक्षिप्तता तुलना करने वाली सभ्यता की छाया है। जब कि तुलना, क
म्पेरिशन मात्र असंगत और अर्थहीन है।

सभ्यता ने आदर्श और किसी और जैसा होने की दौड़ पैदा की है, जब कि प्रत्येक म
नुष्य अनूठा और अद्वितीय है, बेजोड़, यूनिक है। उस जैसा कोई दूसरा मनुष्य न हुआ
 है, न होगा। प्रकृति पुनरुक्ति नहीं करती है, प्रकृति की सृजनशीलता इतनी अदभुत
 है। परमात्मा दोहराता नहीं है। वह तो अनंत सर्जक है। उसकी सृजनशीलता सदा
मौलिक है। उसकी सृष्टि में प्रतिक्षण, प्रतिपल सब नया है। वहां कुछ भी पुराना नहीं

है। सभी कुछ नया है। सभी कुछ एक ही बार है। जो सूरज कल उगा था वह अब कभी न उगेगा और जिन बादलों की कल संध्या आपके घर पर छाया थी, वे अब क भी न करेंगे। जो फूल पिछले वर्ष आए थे वह अब आने को नहीं है। प्रतिक्षण सब न या होता चला जाता है। एक मनुष्य भी वापस नहीं लौटता है। मनुष्य तो दूर है, कि सी फूल की पंखुड़ियां भी दोबारा नहीं खिलती हैं। एक एक व्यक्ति अनूठी कृति है, अगर यह ख्याल में आ जाए तो चित्त की कुछ और होने की दौड़ विलीन हो जाएगी। तब आप इस कोशिश में नहीं रह जाएंगे कि मैं किस जैसा हो जाऊं और जैसे ही यह ख्याल चला जाएगा कि मैं किस जैसा हो जाऊं, वैसे ही एक अत्यंत शांत मन, साइलेंट मांइड की भूमिका खड़ी हो जाती है। इस दौड़ के फिर और रूप भी हैं, पर वे इसी दौड़ के रूप हैं। दूसरे जैसे मकान बनाने की कोशिश चल रही है, दूसरे जैसे कपड़े पहनने की कोशिश चल रही है, दूसरे जैसे पद पाने की कोशिश चल रही है, दूसरे जैसे कपड़े पहनने की कोशिश चल रही है, दूसरे जैसे पद पाने की कोशिश च ल रही है। उन सबकी बुनियाद में दौड़ वही है।बुनियादी दौड़ यही है कि मैं अपने ह ोने से सहमत नहीं हूं और मैं अपने होने को स्वीकार नहीं कर रहा हूं और बड़े मजे की बात तो यह है कि अगर मैं उस आदमी के पास जाकर थोड़ा-सा भी निरीक्षण करूं तो पाऊंगा कि वह भी इसी पागलपन से पीड़ित है। वह और के होने को स्वी कार कर रहा है, वह किसी और जैसे होने के लिए पीड़ित और परेशान है।

विक्षिप्त आदमी का पहला लक्षण है कि वह दूसरे जैसा होने की कोशिश में पड़ जात ा है। यह पागल आदमी की आधारभूत वृति है। एक बहुत पुरानी घटना है। एक युव क अपने गुरुकुल से वापस लौटता था। उसकी शिक्षा पूरी हो चुकी थी और दीक्षांत समारोह भी हो गया था। वह था बहुत दरिद्र और दीन-हीन। वह अपने गुरु को विद ा के क्षण मग कुछ भी भेंट नहीं कर सकता था। दूसरे राजपुत्र थे, धनिक पुत्र थे, उ न सबने बहुत भेंटें गुरु को भेंट दीं। किन्तु उस वक्त सिर्फ आंसू गिराने के उसके पा स और कुछ न था। उसने गुरु के पैर छुए और रोता रहा और कहा कि मुझे यह व चन दें कि जब कभी मेरे पास कुछ ओ और मैं भेंट करने आऊं तो आप इनकार न करेंगे। आज तो मेरे पास सिवाय आंसुओं के और कुछ नहीं है। उसके गुरु ने कहा ि क तुमने जो दिया हैव किसी ने नहीं दिया है। तुम कुछ और देने की चिंता मत कर ो। प्रेम से बड़ा दूसरा कुछ नहीं है। लेकिन फिर भी वह यह वचन लेकर ही गया कि कभी लाएगा तो गुरु अस्वीकार नहीं करेंगे। वह राजधानी पहुंचा अपने देश की और अपने एक मित्र के परिवार में मेहमान हुआ। रात उसने अपना दुख कहा कि मैं गुरु को बिना कुछ दिए आ गया हूं। मेरे मन में बड़ी पीड़ा है। बरसों उनके पास था, उ नका ही भोजन किया, उनके ही वस्त्र पहने, उनसे ही शिक्षा पाई और अंतिम क्षण भी मैं उनको कुछ देकर नहीं आया। उस परिवार के लोगों ने कहा, चिन्ता मत करो ,सुबह थोड़ा जल्दी उठ जाना और राजा के द्वार चले जाना। यहां के राजा ने घोषणा कर रखी है कि दिवस का पहला याचक राजद्वार से कभी खाली हाथ वापिस नहीं लौटेगा। और वह जो भी मांगेगा, राजा उसे देगा। तुम चाहते क्या हो? उसने कहा :

'बस पांच स्वर्ण मुद्राएं मिल जाएं तो पर्याप्त हैं, मैं उन्हें गुरु चरणों में चढ़ाकर अप रिसीम आनंद पा लूंगा। पांच स्वर्ण मुद्राएं भी उस दरिद्र बालक के लिए बहुत बड़ी संपदा थी। उसने कभी पांच स्वर्ण मुद्राएं भी इकट्ठी नहीं नहीं देखी थीं और देखी भी थीं तो दूसरे के हाथों में देखी थीं। उसने तो स्वर्ण का स्पर्श भी नहीं जाना था। इस लिए उसकी कल्पना ज्यादा से ज्यादा जितना दौड़ सकती थी वह पांच स्वर्ण मुद्राएं की ही सीमा थी। मित्र ने कहा घबराओ मत, सुबह जल्दी चले जाना और बहुत जल दी भी नहीं है, क्योंकि याचक मुश्किल से कभी कोई जाता है। देश इतना समृद्ध है लोग इतने खुश हैं और प्रसन्न हैं कि भीख कौन मांगता है? लोग देना पसंद करते हैं , मांगना कोई भी पसंद नहीं करता। फिर भी वह जल्दी उठा और राजदरबार पहुंच गया। राजा अपने बगीचे में घूमने निकला था। वह वहां पहुंच गया और कहा कि मैं पहला याचक हूं। राजा ने कहा कि आज आज के ही नहीं, तुम सदा के पहले या चक हो, क्योंकि अब तक कोई याचक मेरे पास आया ही नहीं और मैं निरंतर प्रती क्षा करता हूं कि कोई आए। और तुम आए हो तो मैं खुश हूं। बोलो क्या मांगते हो । तुम जो भी मांगोगे मैं दूंगा, वह पांच मुद्राएं सोचकर आया था, लेकिन अब उसने सोचा कि यदि मैं केवल पांच ही मांगूं तो नासमझी होगी। क्यों न पचास मांगूं, क्यों न पांच सौ मांगूं, जब राजा कहता है कि जो मांगोगे वही दे दूंगा, तो गलती क्यों करूं? जीवन में मांगने की समस्या को सदा के लिए हल ही क्यों न कर लूं? यह दौ. ड ही खत्म हो जाए तो अच्छा है—अच्छा हो पांच लाख मांग लूं? उसके मन में चिंत ा और गणित का विस्तार होने लगा। राजा ने कहा, तुम सोचो, जल्दी कुछ है नहीं, मैं तब तक बगिया का एक चक्कर लगा आऊं। युवक सोचता रहा, संख्या बढ़ती ग ई और आज उसे पहली बार पछतावा हुआ कि उसने और बड़ी संख्याएं क्यों न सी खीं। आखिर जाकर संख्याएं एक जगह ठहर गई। उसके आगे कुछ पता ही न था कि और संख्याएं होती हैं। राजा तब एक चक्कर लगाकर आ गया और वह भी अपनी संख्या की अंतिम सीमा पर पहुंच गया था। दुखी और पीड़ित खड़ा था क्योंकि संख्य ा अटक गई थी और उसे मालूम न था कि आगे और कोई संख्या हो सकती है। रा जा ने कहा, मालूम होता है तुम उलझ गए। फिर भी तुम सोच लो, मैं एक चक्क र लगा आऊं। तभी उस युवक को ख्याल आया कि मैं सभी क्यों न मांग लूं जो कि राजा के पास है। संख्या की बकवास ही छोड़ दूं। कहूं कि जो भी तुम्हारे पास है सब दे दो...अशेष पीछे कुछ बचा न रह जाए और जैसे दो कपड़े पहनकर मैं आया था वैसे दो कपड़े पहनकर तुम इस द्वार से बाहर निकल जाओ। उसने राजा से कहा, य ह सोचा था कि राजा घबड़ा जाएगा, लेकिन राजा हुआ प्रसन्न। उसने आकाश की त रफ हाथ जोड़ा और कहा कि हे परमात्मा! वह व्यक्ति आ गया है जिसकी मैं प्रतीक्ष ा कर रहा था। थक गया और ऊब गया था प्रतीक्षा करते-करते। आज वह व्यक्ति आ गया है जो मेरे भार को ले लेगा और मुझे मुक्त कर देगा। वह युवक घबड़ा गय ा परमात्मा को यह धन्यवाद सुनकर। उसने राजा से कहा, बड़ी कृपा होगी मैं अभी अनुभवी नहीं हूं। आप एक चक्कर और लगा आएं। राजा ने कहा, हाथ छोड़ो और

भीतर जाओ और मैं बाहर जाता हूं। मेरी शुभकामना तुम्हारे साथ है कि जिस तरह आज तुम मांगने आए हो किसी इतनी ही और इससे बड़ी खुशी से दे भी सको। लेकिन वह बोला कि मैं राजी नहीं हूं। आप चक्कर और लगा आएं। राजा चक्कर लगाने गया और जो होना था वही हुआ। लौटकर आया तो युवक को वहां पाया नहीं। वह भाग गया था।

एक बात उसे दिखाई दी कि जिसकी मैं आकांक्षा कर रहा हूं कोई उसे ही बोझ समझकर छोड़ने को तैयार है। इसको मैं दृष्टि कहता हूं, इसको मैं देखना कहता हूं। तो जीवन को देखें, जिसके जैसा आप होना चाहते हैं, क्या वह कुछ और होने की दौड़ में नहीं है? निश्चित ही आप पाएंगे कि सभी लोग कुछ और होने की दौड़ में हैं। तब एक सत्य स्पष्ट होना चाहिए कि कुछ और होने की दौड़ ही पीड़ा का मूल कारण है--दुख का, वैचेनी का, अशांति का। और इसके साथ एक दूसरी दुर्घटना घटती है, जब मैं दूसरे जैसा होने की दौड़ में पड़ जाता हूं जो जो कि मैं हो सकता था, वह भी नहीं हो पाता हूं। जो मेरे निसर्ग ने मुझे दिया था वह खिल नहीं पाता, जो मैं मेरे प्राणों में बीज की तरह लेकर आया था, वह अंकुरित नहीं हो पाता; क्योंकि मेरी सारी शक्ति कुछ और होने में लग जाती है जो मैं कभी नहीं हो सकता और मेरे प्राण अविकसित पड़े रह जाते हैं और मेरी आत्मा अंधेरे में पड़ी रह जाती है। यही है पीड़ा। यही है दुख। यही है अशांति।

इसलिए शांत होने के लिए पहला सूत्र है स्वयं जैसे हैं उसकी परिपूर्ण स्वीकृति, टोटल एक्सेपटेबिलिटी परिपूर्ण स्वीकृति उसकी जैसा कि मैं हूं। किसी दूसरे से तुलना का कोई कारण नहीं है, क्योंकि हर व्यक्ति अतुलनीय, इनकमपेरेबिल है। किसी दूसरे की तुलना करना एकदम मूर्खतापूर्ण है। अपने बच्चे को कहना कि देखो गांधी ऐसे हुए थे, तुम भी वैसा हो जाओ, इससे बड़ा विष इससे बड़ा जहर और कुछ नहीं हो सकता है। यह बच्चे के व्यक्तित्व का घोर अपमान है। उससे यह कहना कि तुम क्राइस्ट जैसा हो जाओ, उसका सम्मान नहीं है। किसी की किसी से तुलना करने को कोई कारण नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अनूठा और अलग है। प्रत्येक व्यक्ति व्यक्ति है, इनडीवीजुअल है। इसलिए किसी से कोई तुला की बात नहीं है। यह जो तुलना करने वाला दिमाग है, यह अशांत होता चला जाता है। तुलना न करें, किसी और से तुलना को कोई कारण नहीं। अपने होने को स्वीकृति दें। जैसे ही आप अपने को स्वीकार करेंगे, वैसे ही आप पाएंगे कि उसकी छाया में एक गहरी शांति व्यक्ति में आनी शुरू हो गई है। स्वयं की सहज स्वीकृति से शांति उत्पन्न होती है। शांति लाई नहीं जा सकती है खींचकर। वह तो स्वयं के परिपूर्ण स्वीकार की छाया है। इसलिए जो लोग शांत होना चाहते हैं, वे और अशांत होते जाते हैं। तथाकथित धार्मिक लोगों को देखिए, वे माला लिए बैठे हैं। शांत होने की कोशिश में और पाइएगा वे और अशांत हुए चले जा रहे हैं। तथाकथित साधु-संन्यासी को देखें, वह पागल की तरह शांत होने की कोशिश में लगा है बिना इस बात को जाने कि जहां भी कोशिश है, जहां भी

प्रयत्न, एफर्ट है वहां अशांति शुरू हो जाएगी, वहां चित्त अशांत हो जाएगा। क्योंकि सब कोशिश कुछ और होने की कोशिश है।

शांति आती है उस व्यक्तित्व के केंद्र पर जो अपने होने को पूर्णतया स्वीकार कर लेता है—स्वीकार कर लें अपने होने को। एक छोटे-से पौधे ही सही, बहुत बड़े चीड़ के दरख्त न सही। बलूत का आसमान को छूता हुआ दरख्त न सही, घास के पौधे ही सही। एक छोटा-सा घास का पौधा, लेकिन क्या मुकाबला है, क्या संबंध है, क्या तुलना है उसकी किसी से? किसने कहा घास का छोटा-सा पौधा छोटा है बलूत के दरख्त से...किस पागल ने कहा? बलूत का दरख्त बलूत का दरख्त है, घास का अंकुर घास का अंकुर है...दोनों का क्या मुकाबला, क्या संबंध, क्या तुलना? दोनों अपनी जगह बेजोड़ और अनूठे हैं।

लाओत्से एक पहाड़ पर गया था। उसके मित्र उससे पूछते थे हम कैसे शांत हो जाएं। उसने कहा कि किसी दिन कोई मौका मिलेगा तो मैं बताऊंगा। फिर एक दिन उसे मौका मिल गया। वे एक पेड़ के नीचे ठहरे थे। बहुत बड़ा दरख्त था। दूर-दूर तक उसकी शाखाएं फैली हुई थीं। उसके नीचे पांच सौ बैलगाड़ियां ठहर सकती थीं, इतनी बड़ी उसकी छाया थी। लेकिन चारों ओर दरख्त काटे जा रहे थे। एक अकेला वही वृक्ष था जिसे काटे जाने से छोड़ दिया गया था। लाओत्से ने अपने मित्रों से कहा कि तुम जाओ और उन लकड़हारों से पूछो कि इस दरख्त को तुमने क्यों छोड़ दिया, इसे क्यों नहीं काटा, और सब दरख्त तो काटे जा रहे हैं। लकड़हारों से उसके मित्र ने पूछने गए। उन लकड़हारों ने कहा कि वह दरख्त बिलकुल बेकार है। न तो जानवर उसके पत्ते खाते हैं, न उसकी लकड़ी जलती है, उसमें धुआं होता है, न उसकी लकड़ी सीधी है कि मकान के काम आ जाए, न उसकी मेज कुर्सी बन सकती है। वह दरख्त बिलकुल ही बेकार है। लाओत्से यह सुन कर हंसने लगा और बोला: धन्यवाद है इस वृक्ष को क्योंकि फिर भी इसने किसी और जैसा न होना चाहा। इसलिए यह इतने आनंद में है, इतना शांत है और इसीलिए इसके आनंद की छाया में इतने लोग विश्राम पाते हैं। मेरे मित्रो! क्या तुमने इससे कोई सीख न लोगे?

जो व्यक्ति किसी और जैसा होने की कोशिश में पड़ता है वह प्रतिस्पर्धा में पड़ जाता है। वह प्रतिस्पर्धा को आमंत्रित करने लगता है और जहां प्रतिस्पर्धा है वहां संघर्ष है, और जहां संघर्ष है वहां दुख है, और जहां दुख है वहां अशांति स्वाभाविक है। लेकिन जो व्यक्ति अपने जैसे होने से तृप्त हो जाता है, व्यक्तित्व के तल पर उसकी सारी स्पर्धावृति विलीन हो जाती है। वह किसी के पीछे नहीं लगना चाहता है और न किसी के आगे ही होना चाहता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसे उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। नहीं, वरन ऐसे ही वास्तविक विकास का जन्म होता है। वह जहां है और जैसा, अपने भीतर अपनी परिपूर्ण स्वीकृति, उसके भीतर छिपे हुए रहस्यों को अनायास ही अंकुरित करने लगती है। उसके भीतर कुछ होने लगता है जो बिलकुल अनायास, एफर्टलेस जो बिलकुल सहज स्फूर्त स्पोंटेनियस है। तब विकास घटित होता है, उसे खींचकर, खींचकर नहीं करना होता है, शांति, साइलेंस में उसका

जन्म होता है, शून्य में वह पैदा होता है। एक बार चित्त में जो जो अशांति की दौड़ है उसके प्रति जाग जाएं और दे,कि उसका अर्थ कितना है और सोचें कि जो लोग दौड़कर कहीं पहुंच गए हैं, वे कहां पहुंच गए, और उन्होंने क्या पा लिया है? दौड़ कर आज तक कोई भी अशांति के अतिरिक्त और कहीं नहीं पहुंच सका है। दौड़ ही तो अशांति है। अशांति, अशांति के अतिरिक्त और कहां पहुंचा सकती है? अशांति का हम उपक्रम करते हैं और शांति की आकांक्षा, अशांति के हम बीच बोते हैं औ र शांति के फूलों की प्रतीक्षा करते हैं! अशांति और सतत अशांति व्यक्तित्व को रा ख से भर देती है और फिर हम चाहते हैं कि सत्य, संगीत और सौंदर्य हमारे प्राणों में आवास करे। नहीं...यह कभी नहीं हो सकता है। राख हो गए व्यक्तित्व में...अप नी ही मूढ़ता में राख हो गए प्राणों में! यह कैसे हो सकता है? लेकिन स्मरण रहे ि क राख को झाड़ दें तो भीतर सदा ही आत्मा का अंगारा उपलब्ध हो सकता है।

आत्मोपचार का दूसरा सूत्र है : जागरूकता। अनिद्रा भाव। अमूर्च्छा। जीवन में सोए हु ए न रहना। हम सब सोए हुए लोग हैं। लगता है हम जागे हुए हैं। लेकिन वस्तुतः मुश्किल से ही कभी कोई आदमी जागता है। रात को हम सोते ही हैं। दिन में भी ह म सोते हैं। सोये होने का मतलब जहां हम होते हैं, वहां हमारा चित्त नहीं होता है। चित्त कहीं और होता है। सोए होने का और क्या अर्थ होता है? आज रात आप अपने घर में सोएंगे, सपना देखेंगे। आप लंदन में हो सकते हैं, न्यूयार्क में हो सकते हैं सपने में। आप सोए तो अपने कमरे में हैं, लेकिन हो सकते हैं, न्यूयार्क में हो सक ते हैं सपने में। आप सोए तो अपने कमरे में हैं, लेकिन हो सकते हैं, न्यूयार्क में। सुब ह जागकर आप कहते हैं कि सब सपना था। क्यों? क्योंकि सुबह आप अपने को वहीं पाते हैं जहां आप हैं और तब आप जानते हैं कि कहीं और होना झूठ था। जहां व्य क्ति है, अगर वहां से अन्यथा कहीं भी उसका चित्त है, तो वह सोया हुआ है। अभी आप यहां बैठकर मुझे सुन रहे हैं और अगर आपका मन कहीं और है तो आप सो ए हुए हैं। आप फिर यहां मौजूद नहीं हैं, आपके होने का कोई मतलब नहीं। लग र हा है आप यहां मौजूद हैं, लेकिन आप यहां मौजूद नहीं हैं आप सोए हुए हैं।

संत भीखण एक गांव में गए थे। रात्रि जब वे गांव के कुछ लोगों को समझा रहे थे, तभी उन्होंने देखा कि सामने ही बैठा हुआ गांव का सबसे बड़ा धनपति सो गया है। उस धनपति का नाम था ओसोजी। भीखण ने बीच में बोलना बंद करके कहा : 'ओसोजी, सोते हो?' उसने आंख खोली और घबराकर चारों ओर देखा। लेकिन कौन सोनेवाला कब मानता है अपने सोए होने को। उसने भी नहीं माना। वह बोला : 'कौन कहता है कि मैं सोया हुआ हूं? मैं तो जागा हुआ हूं।' आह! साए हुए होने को कोई स्वीकृति नहीं देता है। जब कि जो आदमी अपने सोए हुए होने को स्वीकार क र लेता है, केवल उसके ही जीवन में जागरण का प्रारंभ हो सकता है। लेकिन क्या कोई पागल कभी मानने को राजी होता है कि मैं पागल हूं? ऐसा ही सोने के संबंध में भी है...मैं तो जागा हुआ हूं।' भीखण ने फिर बोलना शुरू किया, लेकिन सोया हु आ आदमी कितना ही कहे कि मैं जागा हुआ हूं तो क्या इससे कोई फर्क पड़ सकता

है? क्या इससे नींद रुकेगी? वह थोड़ी देर में फिर सो गया। भीखण ने फिर कहा : 'ओसोजी, सोते हो?' अबकी बार तो ओसोजी को क्रोध ही आ गया। वह बोला : 'आप भी क्या बार-बार वही बात लगाए हुए हैं, मैं तो जागा हुआ हूं। मैं तो जरा आंख बंद करके सुनता हूं तो आप समझते हैं कि सोता हूं। मैं जरा ध्यान से सुनता हूं। इसलिए आपको सोए हुए होने का भ्रम पैदा होता है। लेकिन थोड़ी देर में वह ि फर सो गया। भीखण ने पुनः उसे टोका और कहा : 'ओसोजी, जीते हो? ओसोजी ने नींद में सुना कि शायद वही पुराना प्रश्न है। उसने कहा : नहीं, नहीं कौन कहता है?' भीखण ने पूछा था : 'ओसोजी, जीते हो?' उसने कहा कि 'नहीं...नहीं...कौन कहता है।' उसने सोचा, फिर वही प्रश्न है कि सोते हो। फिर तो भीखण ने भी कहा : 'नहीं...नहीं...कौन कहता है? कोई भी नहीं कहता है!'

और ठीक भी है। असल में जो सोता है, वह जीता भी नहीं है। सोने का अर्थ है चि त्त के तल पर बेहोशी, मूर्च्छा (अनकांश्यस) हम बिलकुल मूर्च्छित हैं, चित्त के तल पर । और मूर्च्छा का रहस्य एक ही है कि चित्त वहां है जहां हम नहीं हैं। जागरण चाहिए चित्त में, निद्रा नहीं। और उसका मार्ग है कि जो भी हम करते हैं उसे परिपू र्ण जागे हुए और सावधानी से करें। रास्ते में चलते हों तो जागे हुए चलें। क्या मत लब है जागे हुए चलने का? जागे हुए चलने का मतलब होता है कि 'वह जो चलने की जीवंत क्रिया हो रही है, मन पूरी तरह उस क्रिया को देखे, जाने और निरीक्षण करे।' और ऐसा ही सब क्रियाओं के लिए हो। सब कुछ ध्यानपूर्ण हो। स्मृतिपूर्वक, माइंडफुली हो।

शारीरिक क्रियाएं भी और मानसिक क्रियाएं भी। सभी पर चेतना जागृत हो, सोए-सो ए कोई क्रिया न हो। मन की धारा के प्रति भी हम जागे हुए हों तो जिसे फ्रायड ने अचेतन, अनअवेशरनेस कहा है, वह भी सचेतन हो जाता है। वही है हमारे भीतर ि नद्रा का केंद्र...वही है मूर्च्छा, बेहोशी। उससे ही मुक्त होना है। और निरंतर होशपूर्व क जीने से वह निश्चय ही समाप्त हो जाता है। वह है, क्योंकि हम स्वयं के प्रति सो ए हुए हैं। बुद्ध ने इस जागने की प्रक्रिया को सम्यक स्मृति, राइट माइंडफुलनेस कहा है। गुरजिएफ ने स्व-स्मरण, सेल्फ रिमेंबरिंग और कृष्णमूर्ति ने जागरुकता, अवेयरने स कहा है। लेकिन वह क्या है, इसे बिना किए नहीं जाना जा सकता है। करें और देखें। जागें और देखें। स्वयं पर थोड़े प्रयोग करें। प्रारंभ में तो स्मरण बार-बार खो ज ाएगा। लेकिन धीरे-धीरे उसकी गहराई बढ़ती जाती है और भीतर के अचेतन का अं धकार कम होता जाता है। चेतना तीव्र होने लगती है। उसका आलोक फिर और वि स्तीर्ण होने लगता है। और उसके साथ ही जीवन समग्ररूपेण नया हो जाता है। रात्रि की निद्रा से जागकर सुबह तो भेद मालूम पड़ता है, उससे भी बड़ा और मौलिक भे द उस जागरण से अनुभव में आता है जो कि हम तथाकथित जागरण से भी जागक र अनुभव करते हैं।

उस जागरण के समक्ष यह जागरण फिर निद्रा भी प्रतीत होता है।

आत्मस्वास्थ्य का तीसरा सूत्र है : शून्यता। अहंकार-शून्यता, 'मैं' से मुक्ति।

'मैं' से हम इतने भरे हैं कि 'वह' प्रकट नहीं हो पाता है।
अहंकार एक लौह-दीवार की भांति हमें घेरे हुए है। उसमें से प्रकाश के प्रवेश की कोई भी संभावना नहीं है। और आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि जो बिलकुल ही असत्य है, वही अहंकार का लौहावरण बना हुआ है।
लेकिन असत्य अहंकार से मुक्त हुए बिना सत्य स्वरूप की उपलब्धि कैसे हो सकती है? असत्य जिस पात्र में भरा है, उसमें सत्य नहीं भरा जा सकता है।
असत्य के विष से स्वयं के पात्र को खाली करके ही उसमें अमृत को आमंत्रित किया जा सकता है। ऐसे तो अमृत की वर्षा निरंतर ही हो रही है, लेकिन भरे हुए पात्र भरे होने के कारण ही उससे वंचित रह जाते हैं। परमात्मा तो हम पर प्रतिपल बर सता है, लेकिन हम स्वयं से भरे हुए होने के कारण ही उससे खाली रह जाते हैं। भ रे हुए होना ही हमारा दुर्भाग्य है। परमात्मा की वर्षा ऊपर से ही बहकर चली आती है। वर्षा तो पहाड़ों पर भी होती है और झीलों पर भी। लेकिन झीलें उससे भरकर धन्य हो उठती हैं और पहाड़ सूखे और सूखे रह जाते हैं, क्योंकि वे पहले से ही भ रे हुए हैं। गड्ढों पर भी पानी गिरता है और टीलों पर भी। पर गड्ढे अपनी रिक्तता में उसे अतिथि बना लेते हैं और टीले अपने अहंकार में उसकी ओर देखते भी नहीं हैं। इसलिए मैं कहता हूं : धन्य हैं वे लोग जो गड्ढे की भांति खाली होने में समर्थ हैं, क्योंकि उनकी रिक्तता और शून्यता के कारण ही वे परमात्मा की पूर्णता पाने के अधिकारी हो जाते हैं। और अभागे हैं वे लोग जो टीलों की भांति अपने दंभ से भरे हुए खड़े हैं, क्योंकि इस क्षुद्र अस्मिता में वे ब्रह्म के विराट को खो देते हैं।
और स्मरण रहे कि हम सब इस अहंकार से भरे हुए हैं।
हम सब अहंकार के पाषाण-बोझ के नीचे दबे हुए हैं।
एक महाकवि किसी झील पर था। पूरे चांद की रात थी। और वह अपने बजरे में बै ठा एक छोटी-सी मोमबत्ती जलाकर कोई शास्त्र पढ़ता था। आधी रात गए उसने मो मबत्ती बुझायी। मोमबत्ती बुझाते ही वह आनंद विभोर हो नाचने लगा था। एक अभू तपूर्व अनुभव ने उसके प्राणों को आंदोलित कर दिया था। मोमबत्ती के बुझते ही जै से एक सत्य उसकी आत्मा में चमक उठा हो। वह जैसे सोते से उठ बैठा हो...या जै से अंधे को आंखें मिल गई हों, ऐसा ही कुछ हो गया था। जब तक मोमबत्ती जलती थी तब तक उसका धीमा और पीला सा प्रकाश बजरे में था। लेकिन उसके बुझते ही चांद की चांदनी रंध्र-रंध्र से, छिद्र-छिद्र से, खिड़की से, द्वार से सब ओर से कक्ष से भर आई थी। चांदनी का जैसे पूर ही आ गया था...बाढ़ ही आ गई थी। आह! जै से एक परदा उठ गया था। क्या मोमबत्ती का मद्धिम प्रकाश चांद के लिए अवरोध बना हुआ था? क्या चांद उसके बुझने की प्रतीक्षा करता था? क्या उसके ही कारण. ..उस छोटी सी मोमबत्ती के कारण वह द्वार पर ही ठिठका रह गया था? और इस के साथ ही एक और बड़े सत्य का अनुभव भी उस कवि को हुआ था। मैं की...अहं कार की मोमबत्ती ही तो कहीं प्रभु के प्रकाश को बाहर नहीं रोके रखती है?
यह अहंकार , ईगो क्या है?

जो जीवन को इस भांति भरे हुए है, वह आखिर है क्या?
स्वयं में खोजने पर वह कहीं मिलता नहीं है।
लेकिन न खोजने पर वह जरूर है।
शायद आत्म-अज्ञान का ही वह दूसरा नाम है।
मैं स्वयं को नहीं जानता हूं, शायद इसीलिए मैं हूं।
मैं को जो जान लेता है, उसका 'मैं' शून्य हो जाता है।
तो चलो, इस मैं की हम खोज करें।
शांत और मौन और जागरुक होकर इसकी तलाश करें।
चित्त और परत-परत में इसे ढूंढें।
जैसे कोई प्याज को छीलता है, ऐसे ही हम चित्त की परत-परत को उठा कर उसे खोजें।
प्याज को छीलते-छीलते अन्ततः शून्य हाथ आता है। ऐसे ही चित्त की परतों को उठाते-उठाते भी अन्ततः शून्य ही हाथ आता है।
अहंकार शायद चित्त की परतों को दूर से देखने पर उनके बीच आभासित एकता का भ्रम है।
किसी वन को दूर से देखें तो वन दिखाई पड़ता है। और निकट से देखें तो वृक्ष और वृक्ष और वृक्ष...लेकिन वन कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता है।
ऐसे ही चित्त को दूर से देखें...या ध्यान से देखें तो अहंकार अनुभव में आता है। लगता है मैं हूं। लेकिन निकट से देखने पर मैं खो जाता है। रह जाता है केवल होना मात्र। यह होना मात्र ही शून्य का अनुभव है। इस शून्य में ही सत्ता अपनी परिपूर्णता में प्रकट होती है। इस शून्य में ही वह जाना जाता है जो ब्रह्म है। शून्य है स्वास्थ्य, शून्य है मोक्ष। अन्ततः मैं ज्ञानचक्षु उपलब्ध करने की कीमिया को सूत्ररूप में पुनः दोहराए देता हूं—शांति जागरुकता अहंशून्यता। इस चक्षु को उपलब्ध करके ही वह जाना जाता है जो कि वस्तुतः है। वही है सत्य। वही है अमृत। वही ब्रह्म है।

पंचम प्रवचन

एक अनूठी भेंट

अभी सुबह ही थी। और गांव के बच्चे स्कूल पहुंचे ही थे कि अनायास ही उस स्कूल के निरीक्षण के लिए एक इंस्पेक्टर का आगमन हो गया। वह स्कूल की सबसे बड़ी कक्षा में गया और बोलाः 'इस कक्षा में जो तीन विद्यार्थी सर्वाधिक उत्तम हों, बुद्धिमान हों, उनमें से एक-एक क्रमशः मेरे पास आए और जो मैं प्रश्न दूं, उसे बोर्ड पर हल करें।
उस कक्षा का प्रथम विद्यार्थी उठकर सामने आया और उसे जो प्रश्न दिया गया, उसने उसे हल किया और चुपचाप वापिस अपनी जगह जाकर बैठ गया। फिर दूसरा विद्यार्थी उठकर आया। उसे भी जो प्रश्न दिया गया उसने हल किया और चुपचाप अपनी जगह जाकर बैठ गया। लेकिन तीसरे विद्यार्थी के आने में थोड़ी देर लगी। और जब तीसरा विद्यार्थी आया भी तो वह बहुत झिझकते हुए आया। वह डरा हुआ सा

बोर्ड के पास आकर खड़ा हो गया। उसे सवाल दिया गया। लेकिन तभी इंस्पेक्टर को ख्याल आया कि यह तो पहला ही विद्यार्थी है जो फिर से आ गया है। तो उसने उस विद्यार्थी से कहा : 'जहां तक मैं समझता हूं तुम पहले ही विद्यार्थी हो जो फिर से आ गए हो?' उस विद्यार्थी ने कहा, माफ कीजिए हमारी कक्षा में जो तीसरे नंबर का विद्यार्थी है, वह आज क्रिकेट का मैच देखने चला गया है। मैं उसकी जगह आया हूं। वह मुझसे कह गया है कि मेरा कोई काम हो तो तुम कर देना।

इंस्पेक्टर तो यह सुनते ही आगबबूला हो गया। वह बहुत नाराज हो गया और जोर-जोर से चिल्लाने लगा। उसने कहा : क्या यह बात भी कभी देखी और सुनी गई है कि एक विद्यार्थी के प्रश्न दूसरा विद्यार्थी हल करे? या एक की परीक्षा दूसरा दे? इससे ज्यादा अनैतिक बात और क्या हो सकती है?'

और उसने विद्यार्थियों को काफी समझाया कि यह बहुत गलत बात है। फिर वह शिक्षक की तरफ मुड़ा और उसने कहा : महानुभाव आप खड़े खड़े देख रहे हैं और अपने इस विद्यार्थी को रोका नहीं? मुझे मूर्ख बनाया जा रहा है और आप चुपचाप खड़े देख रहे हैं। क्या उचित नहीं था कि आप इस विद्यार्थी को रोकते?' स्वयं को फंसते देखकर वह शिक्षक भी विद्यार्थियों पर खूब नाराज हुआ। लेकिन अंत में इंस्पेक्टर ने उससे पूछा : मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे आप इन विद्यार्थियों को पहचानते ही नहीं?'

उस शिक्षक ने कहा : 'माफ करिए, असल में मैं इस कक्षा का शिक्षक नहीं हूं। इस क्लास का शिक्षक क्रिकेट का मैच देखने चला गया है और वह मुझसे कह गया है कि जरूरत पड़े तो मैं उसकी कक्षा देख लूं। यह सुनकर तो इंस्पेक्टर जैसा पागल ही हो गया। वह बोला : 'यह क्या है? यह कैसी स्थिति है? आप भी धोखा दे रहे हैं मुझे? आप दूसरे क्लास के शिक्षक हैं और आप यहां खड़े हैं?' उसने शिक्षक को भी बहुत भला बुरा कहा और कहा कि क्या यह उचित न होगा कि आपको नौकरी से अलग कर दिया जाए। यह सुन शिक्षक रोने लगा और उसने इंस्पेक्टर के पैर पकड़ लिए और बार-बार क्षमा किए जाने की प्रार्थना करने लगा। उस गरीब शिक्षक को रोते देख इंस्पेक्टर को भी अंततः दया आ गई और वह बोला : वह तो अच्छा हुआ और आपका सौभाग्य ही है कि आज असली इंस्पेक्टर निरीक्षण करने नहीं आया। वह क्रिकेट का मैच देखने चला गया है। मैं तो उसका मित्र मात्र हूं। वह मुझसे उसकी जगह निरीक्षण करने के लिए कह गया है, इसलिए मैं आया हूं। यदि आज मेरी जगह असली इंस्पेक्टर होता तो आपकी खैरियत न थी लेकिन ध्यान रहे कि आगे ऐसी भूल नहीं करनी है।'

मैं इस घटना से आज की चर्चा क्यों शुरू करना चाहता हूं? इसलिए कि ज्ञात हो कि हम सारे लोग एक ही नाव पर सवार हैं। और वह नाव अधर्म की है। और वह नाव अंधकार की है। और उस नाव के अस्तित्व के लिए हम सब एक से ही दोषी और जिम्मेवार हैं। दूसरों की ओर अंगुलियां उठाना व्यर्थ है। एक अंगुली दूसरे की ओर उठती है तो शेष चार अपनी ही ओर उठ जाती हैं। इसलिए प्रत्येक के लिए यही

महत्वपूर्ण है कि वह अपनी तरफ ही देखे और खोजे कि वह किस स्थिति में है। ह
म सब एक ही नाव में हैं और एक-सी हमारी जिम्मेवारी है। इस गंदे समाज को औ
र इस कुरूप दुनिया को बनाने में, और जीवन पर घिरे अंधकार के निर्माण में हमार
ा ही योगदान है। इस सबमें हम सभी साझीदार हैं। बहुत आसान है कि हम दूसरों
की भूलें देखें। बहुत आसान है कि हम दूसरों की नग्नता देखें। वह बहुत कठिन बात
नहीं है। आसान है और सुखद और प्रीतिकर भी। क्योंकि हम जब भी दूसरों की भू
लें और दूसरों के अंधकार भरे पहलू को देखते हैं तो हमें एक कुत्सित खुशी मिलती
है। वह खुशी इसलिए मिलती है, क्योंकि दूसरों के अशुभ और अंधकार स्थल देखने
पर हमारे खुद के जीवन की कुरूपताएं अत्यंत सामान्य हो जाती हैं। ऐसा प्रतीत हो
ने लगता है कि सभी लोग ऐसे ही हैं। तो मुझमें कोई विशेष खराबी नहीं है। और ि
फर दूसरों के अंधकार को देखने से हमारे खुद के भीतर, हमारे खुद के जीवन में ज
ो अंधकार तथ्य हैं, उनको देखकर जो पीड़ा होनी चाहिए, जो आत्मदंश होना चाहिए
, जो चिंतन होना चाहिए, उससे भी हम बच जाते हैं। ऐसे स्वयं कुरूपता को भी स्व
ीकार करने में सुविधा मिल जाती है।

और, सत्य के मार्ग पर, सौंदर्य के मार्ग पर, शुभ के मार्ग पर, धर्म के मार्ग पर, प्रत
येक व्यक्ति को अपने जीवन के नग्न तथ्यों को देख लेना अत्यंत जरूरी है। दूसरों के
जीवन को तो हम सभी देखते हैं। लेकिन अपने जीवन को नहीं। दूसरों के जीवन में
तो हम झांकते हैं, लेकिन अपने जीवन में नहीं। और तब...तब हमारे जीवन में ध
र्म को तो अवतरण नहीं होता, उल्टे अधर्म का ही आवरण बढ़ता है।

धर्म आत्म-आलोचना है—धर्म है स्वयं के संबंध में अत्यंत तीखी और पैनी आंखों से
दर्शन। स्वयं का स्पष्ट विश्लेषण। स्वयं के प्रति अत्यंत सजग और जागरूकता। और
जब तक स्वयं को उसकी पूरी सच्चाई में न जान लें, तब तक स्वयं के परिवर्तन का
कोई मार्ग नहीं है। जो व्यक्ति अपने को बदलने चला है, किसी क्रांति से गुजरने च
ला है, अपने जीवन को आलोकित करने की जिसकी प्यास पैदा हुई है, उसे स्वयं क
ो बहुत बारीक आंखों से देख लेना आवश्यक है। और हमारी स्थिति तो ठीक इसके ि
वपरीत है। हम तो स्वयं से ही स्वयं के तथ्यों को छिपाते हैं। हम तो उन्हें ढांकते हैं
और किसी अन्य से ढांकते होते तो भी एक बात थी, हम तो अपने से ही उन तथ्यों
को ढांक लेते हैं। हम खुद को भी धोखा देते हैं।

अधर्म की परिभाषा मेरी दृष्टि में यही है। स्वयं को धोखा देना ही अधर्म है। स्वयं से
आंखें चुराना ही अधर्म है। स्वयं से पलायन ही अधर्म है। क्योंकि जो स्वयं को ही ध
ोखा देता है...वह स्वयं को कैसे जान सकता है और स्वयं कैसे हो सकता है? और स
वयं हुए बिना धर्म कहां? धर्म तो स्वरूप है। धर्म तो स्वभाव है। इसलिए मैं कहता
हूं कि जो स्वयं को धोखा देने में असमर्थ हो जाता है, उसके जीवन में धर्म की यात्र
ा शुरू हो जाती है।

लंदन में शेक्सपियर का एक नाटक चलता था। बहुत उसकी प्रशंसा थी। सारे नगर
में बस उसकी ही बात थी। उस महानगरी का जो सबसे बड़ा धर्म पुरोहित था, उस

के भी मन में हुआ कि मैं भी जाऊं और उस नाटक को देखूं। लेकिन पुरोहित का न ाटक देखने जान शोभन न था। आखिर उन्होंने ही तो जीवन का गाली दे-देकर निंदि त किया है तो वे स्वयं जीवन को सहजता और स्वतंत्रता से जीने को मुक्त कैसे हो सकते हैं? धर्मगुरु नाटक देखने जाए यह ठीक न था, लेकिन मन उसका बहुत बहु त उत्सुकता और आतुरता और आकांक्षा से भरा हुआ था कि देखूं। उसने उस थिये टर के मैनेजर को एक पत्र लिखा। और उस पत्र में लिखा कि मेरे मित्र मेरे मन में बड़ी तीव्र आकांक्षा है कि मैं भी नाटक देखने आऊं। क्या तुम्हारे थियेटर में पीछे का कोई दरवाजा नहीं है जिससे मैं तो और नाटक देख सकूं, लेकिन देखने वाले दूस रे लोग मुझे न देख सकें? उस थियेटर के मैनेजर ने जो उत्तर दिया वह बड़ा अदभु त था। उसने लिखा कि आप जरूर आएं। आपका स्वागत है। पीछे चोर-दरवाजा है। उसे अक्सर ही धर्म-पुरोहित, साधु-संन्यासी और सज्जन पुरुष आते हैं। उनके लिए ह ी विशेष रूप से उसे बनाना पड़त है। लेकिन एक बात मैं निवेदन कर दूं कि ऐसा द रवाजा तो है हमारे थियेटर में कि आप आएं तो और दूसरे दर्शक आपको न देख प ाएं, लेकिन कोई ऐसा कोई द्वार थियेटर में नहीं है जिससे आप आएं और परमात्मा भी आपको न देख सके। मुझे पता नहीं, वह पादरी गया या नहीं। वैसे वह जरूर ग या होगा। क्योंकि कोई पादरी परमात्मा से जरा भी नहीं डरता है। जीवन में हम दू सरों को धोखा देना चाहते हैं वह तो ठीक ही है, लेकिन अपने को भी देना चाहते हैं। लेकिन क्या कोई दरवाजा भी हो सकता है कि जिससे हम जाएं और हम ही अ पने को जाते हुए न देख सकें। हो सकता है परमात्मा भी चूक जाए, हो सकता है परमात्मा भी न देख पाए। आखिर)परमात्मा किस-किस दरवाजे पर कितनी-कितनी नजरें रखता होगा। और क्या इस भांति चोर-दरवाजों को ताकते-ताकते वह अब त क ऊब भी न गया होगा, थक भी न गया होगा। लेकिन ऐसा दरवाजा तो हो ही न हीं सकता कि जिससे मैं ही निकलूं और मैं स्वयं को न देख पाऊं। नहीं ऐसा दरवाज ा कैसे हो सकता है? लेकिन हम बहुत होशियार हैं। हम अपनी आंखें बंद कर लेने को तैयार हैं। हम खुद को भी पता नहीं चलने देते हैं। और यह धोखा गहरा होता चला जाता है। यह आत्म-प्रवंचना, सेल्फ डिसेप्सन भारी होती चली जाती है। इसका भार और बोझ रोज ही बढ़ता जाता है। मानवात्मा उसके बोझ से दबी ही चली ज ाती है। क्योंकि आत्मा डुबाने और दबाने के लिए आत्म वंचना से सार्थक और सफ ल कोई दूसरी विधि ही नहीं है। और फिर हम आत्म को पाना चाहते हैं, और फिर हम स्वयं को जानना और जीतना चाहते हैं। लेकिन यह कैसे हो? पूर्व और पश्चिम एक साथ ही तो नहीं चला जा सकता है। अंधकार और प्रकाश को एक साथ ही तो नहीं पाया जा सकता है। जीवन और मृत्यु को एक साथ ही तो नहीं साधा जा सकता है। लेकिन जो आत्मवंचना में जीता है और आत्मज्ञान को भी उपलब्ध होना चाहता है, वह ऐसी ही स्वविरोधी कामना कर रहा है। जिसने निरंतर अपने आपको ही धोखा दिया है, वह स्वयं को कैसे जान सकता है? हो सकता है वह अंतिम धो खा और दे ले और बिना स्वयं को जाने और समझे, माने ले कि मैंने स्वयं के जान

लिया है। और यह धोखा भी हम देते हैं। शास्त्र से पढ़ लेते हैं आत्मा की बातें और सुन लेते हैं परम्पराओं से परमात्मा के विचार। और उन्हें सीख लेते हैं और इस भांति उन बातों को करने लगते हैं कि जैसे हम उन्हें जानते हों। जैसे हमने उन्हें जिया हो। ऐसे उधार ज्ञान को हम अपना ही ज्ञानमान लेते हैं। यह अंतिम धोखा है जो कि कोई भी आदमी अपने आपको दे सकता है। पंडित इसी भांति अपने को धोखा दे लेता है। जो उसने नहीं जाना है, जो उसने मात्र सुना है और सीखा है, जो उसने मात्र पढ़ा है और स्मरण कर लिया है, उसे भी वह ज्ञान मान लेता है।

हम जो यहां एकत्रित हैं, हम सभी ऐसी मनोदशा में हैं। हममें से कोई ईश्वर को मानता होगा, कोई आत्मा को मानता होगा और कोई मोक्ष को मानता होगा। और हममें से काई भी नहीं जानता है इन बातों की सचाई। लेकिन निरंतर इन बातों को दोहराते रहने से ऐसा भ्रम पैदा हो जाता है जैसे हम उन्हें जानते ही हैं। और जब हम दूसरों को भी ये बातें समझाने लगते हैं तब तो पागलपन की हद ही हो जाती है। क्योंकि जब हमें समझने वाले लोगों की आंखों में ऐसी झलक दिखाई पड़ती है कि हमारी बातें उनकी समझ में आ रहीं हैं, तो उनकी आंखों में यह झलक देखकर हमको खुद यह विश्वास आ जाता है कि हम जा बातें कह रहे हैं वे जरूर सत्य हैं और हम सत्य के ज्ञाता हैं।

अमरीका में एक आदमी ने सबसे पहला बैंक डाला था। बाद में जब वह बूढ़ा हो गया था तो उसके एक मित्र ने उससे पूछा था कि उसने सबसे पहले बैंक किस तरह शुरू किया था? वह बूढ़ा बोला : मैंने एक तख्ती बनवायी। जिस पर मैंने लिख दिया 'बैंक'। और उसे घर के सामने टांग दिया। और मैं एक पेटी और किताबें लेकर बैठ गया। पीछे कोई घंटे भर बाद एक आदमी आया और उसने पचास रुपए जमा करवाए। फिर कोई घंटे भर बाद एक आदमी आया और उसने भी डेढ़ सौ रुपए जमा करवाए। उन दोनों आदमियों को रुपए जमा करवाते देखकर मेरा स्वयं आत्म-विश्वास इतना बढ़ गया कि मैंने भी पचास रुपए बैंक में जमा करवा दिए। तब तक मैंने अपने ही रुपए अपने ही बैंक में जमा नहीं किए थे, लेकिन दूसरों को वैसा करते देखकर मेरा भी साहस बढ़ गया था और मैंने भी रुपए जमा कर दिए थे। और फिर ऐसे ही धीरे-धीरे बैंक चल पड़ा था।

शास्त्रों से हम शब्द सीख लेते हैं। उन शब्दों को हम दूसरों को बताने लगते हैं। और उनकी आंखों में अगर हमें ऐसी झलक दिखाई पड़ती है कि हां, उन्हें बात ठीक लगती है तो हमारा खुद विश्वास बढ़ जाता है, और हमें लगता है कि जो हम कह रहे हैं, वह बिलकुल सही है। और इस भांति शब्द ज्ञान बन जाते हैं। शब्द, जो बिलकुल उधार और बासी हैं। और जिनका सत्य से दूर का भी वास्ता नहीं है। किन ऐसे वे ही मृत शब्द सत्य की जीवंत संपदा प्रतीत होने लगते हैं। ऐसी कोरी स्मरण-शक्ति ज्ञान बनकर हमारे मस्तिष्कों में बैठ जाती है। शास्त्रों को, सिद्धांतों को हम स्मरण कर लेते हैं और भूल जाते हैं कि हम कुछ भी नहीं जानते हैं। यह अंतिम धोखा है जो आदमी अपने को दे सकता है।

यदि मैं आपसे पूछूं, ईश्वर है? और आप चुप रह जाएं, और कहें मुझे कुछ भी पता नहीं, मैं निपट अज्ञानी हूं। तो मैं कहूंगा कि आप एक धार्मिक आदमी हैं। आप अपने को धोखा नहीं दे रहे हैं। लेकिन आप कहें कि हां ईश्वर है, और इस रंग का है और इस शक्ल का है और इस मंदिर वाला सच्चा है और इस मंदिर वाला झूठा है, तो मैं आपसे कहूंगा कि आपने अपने आपको धोखा देना शुरू कर दिया है।

ईश्वर जैसा सत्य हमें कहां ज्ञात है। वह अज्ञात अननॉन है और शायद अज्ञेय अननॉएबिल भी है। लेकिन हम चार शब्दों को सीख लेते हैं और कहने लगते हैं: हमें ज्ञात है। आह! झूठे आदमी। आह! आत्मवंचक मनुष्य! या, कोई कहे कि ईश्वर...ईश्वर तो है ही नहीं। तो यह भी पहले ही जैसी मूढ़ता है। तथाकथित आस्तिकों और नास्तिकों की मूढ़ताएं एक ही भांति की हैं। दोनों की वंचनासमान है। वह वंचना ज्ञान की वंचना है। वह धोखा जानने का धोखा है। इसलिए धार्मिक व्यक्ति न तो आस्तिक होता है न ही नास्तिक होता है, क्योंकि आत्मवंचक होने की सुविधा ही उसे नहीं है। वह तो स्पष्ट जानता है कि मैं नहीं जानता हूं। वह ज्ञान को नहीं जानता है। वह तो अपने अज्ञान को ही जानता है। और जो यह जानता है—जो अपने अज्ञान के प्रति सजग और सचेत है, वह न तो तथाकथित सिद्धांतों और शास्त्रों और शब्दों को कोई स्वीकृति ही देता है और न अस्वीकृति ही। उस संबंध में वह अनाग्रही और तटस्थ और मौन होता है। वह तो बस इतना ही कह सकता है कि मैं नहीं जानता हूं। और इस सरलतासे, इससचाई से, उसके भीतर एक अन्वेषण की शुरूआत होती है—एक खोज की शुरूआत होती है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन की सारी वास्तविकता, सारे तथ्य अत्यंत निर्ममता से और सचाईसे देख लेना जरूरी है। इस निर्मम और कठोर तथ्य दर्शन के तीन सूत्रों पर में आज आपसे बात करना चाहता हूं। और स्मरण रहे कि तथ्य दर्शन, सत्य-दर्शन की अनिवार्य सीढ़ी है।

पहला सूत्र है: विचार

लेकिन हमने तो जीवन में विचार के लिए कोई स्थान ही नहीं बनाया है। हम तो विश्वास से ही जिए चले जाते हैं। और जो आदमी विश्वास से जीता है, वह अंधा हो जाता है। विश्वास का अर्थ है जो हम नहीं जानते उसे भी मान लेते हैं। और जब हमारी यह आदत हो जाती है कि जो हम नहीं जानते उसे मान लेते हैं तो धीरे-धीरे जीवन भी अंधा हो जाता है। और आत्मा आंखें खो देती है। विश्वास नहीं, आत्म-निरीक्षण के लिए चाहिए विचार, तीव्र विचार। उत्कट और सतेज विचार। सत्य की खोज में अत्यंत पैनी विचारशीलता की अपेक्षा है, जो कि हमारे सारे अंधकार और अंधेपन को काट सके। लेकिन शायद हमने विचार करने की आदत ही खोदी है। वैसे हम बहुत विचारों से भरे मालूम पड़ते हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं विचार आपने कभी शायद ही किया हो। विचारों की असंगत और असंबद्ध भीड़ का नाम विचार नहीं है। विचार तो आत्म शक्ति है। वह तो किसी प्रश्न पर स्वयं सचेत होना है। विचार किसी समस्या के साक्षात्कार की प्रक्रिया है। वह समस्या के आमने-सामने खड़ा

होना है। वह समस्या से चेतना का सीधा संस्पर्श है। वह देखना है—खोजना है—तौलन
ा है। विचार न तो अंधी स्वीकृति है, न अस्वीकृति। वह एक ठिठकाव हेसीटेशन है—
संदेह है—तर्कानुसंधान है।

एक अदभुत व्यक्ति था, मुल्ला नसरुद्दीन। एक संध्या किसी ने उसे थोड़ा सा मांस भें
ट में दे दिया था। कोई तीन पौंड के करीब वह मांस रहा होगा। वह घर आया। उ
सने अपनी पत्नी को वह मांस दिया और कहा, आज बड़े सुख का दिन है। रोटियों
की जगह मांस मिल गया है। मैं जाऊं अपने एक-दो मित्रों को भी बुला लाऊं, तू
तब तक मांस तैयार कर। वह जब मित्रों को लेकर घर आया, तब तक उसकी पत्न
ी ने मांस कहीं छिपा दिया था। वह मुल्ला के तर्क और विचार की परीक्षा लेना चा
हती थी। मुल्ला के आते ही उसने कहा : माफ करें, बड़ी मुश्किल हो गयी है, आप
यहां से गए और घर की जो बिल्ली है वह मांस खा गई। अब क्या होगा? और आ
प कि मित्रों को भी बुला लाए हैं।

आप मुल्ला की जगह होते तो क्या करते? वह बेचारा दो मित्रों को साथ ले आया
था। वे द्वार पर खड़े थे, और उसकी पत्नी की बात मान लेता और चुप रह जाता।
अविश्वासी होता तो मन में संदेह करता या झगड़ा खड़ा करता। लेकिन न तो वह ि
वश्वासी था और न अविश्वासी। उसने क्या किया? वह भाग कर पड़ोसी की दुकान
पर गया और तराजू ले आया और तराजू पर बिल्ली को रखकर तौल लिया। बिल्ल
ी तीन पौंड निकली। उसने अपनी पत्नी से कहा कि यदि यह मांस है तो फिर बिल्ल
ी कहां है? और यदि यह बिल्ली है तो मांस कहां है?—इफ दिस इस द मीट, वेयर
इस द केट एंड इफ दिस इस द केट, देन वेयर इस द मीट?

यह है विचार। यह आदमी विचार का उपयोग कर रहा है। यह चीजों को तौल रहा
 है, परख रहा है, माप रहा है, कसौटी पर कस रहा है। उसने कहा : अगर यह बि
ल्ली है तो फिर मांस कहां है?

यह है विचार। यह आदमी विचार का उपयोग कर रहा है। यह चीजों को तौल रहा
 है, परख रहा है, माप रहा है, कसौटी पर कस रहा है। उसने कहा : अगर यह बि
ल्ली है तो फिर मांस कहां है? तीन पौंड तो मांस ही था। और यदि तू कहती है ि
क यह मांस ही है तो मैं पूछता हूं कि बिल्ली कहां है?'

उसकी पत्नी ने कभी सोचा भी न होगा कि बिल्ली तराजू पर तौली जाएगी। हमने िं
जदगी में तथ्यों को तराजू पर तौलना बहुत दिनों से बंद कर दिया है। हम आंख बं
द करके या तो स्वीकार किये चले जाते हैं या अस्वीकार किए चले जाते हैं। लेकिन
 सदा आंख बंद करके। आंख खोलकर जीवन के तथ्यों को और सचाइयों को हम तौ
लते नहीं हैं। और तब यदि धीरे-धीरे हमारा रास्ता भटक जाता है और अंधकारपूर्ण
 हो जाता है तो आश्चर्य क्या है? बंद आंखों के लिए प्रकाश हो भी कैसे सकता है?
 नहीं, बंद आंखें नहीं, खुली आंखें चाहिए। विश्वास नहीं, विचार चाहिए। हर चीज
की कसौटी चाहिए। जिंदगी खिलवाड़ नहीं है। जिंदगी एक परीक्षा है। जिंदगी एक क
सौटी है। जिंदगी तो प्रतिपल एक चुनौती है। वह तो इस बात की चुनौती है कि हम

अपने भीतर सोई हुई शक्तियों को जगाते हैं या कि सोने देते हैं। और जो इस चुन ौती को स्वीकार कर जाग जाते हैं, वे अमृत जीवन को उपलब्ध हो जाते हैं, और जो सोए ही रहते हैं, वे सब कुछ खो देते हैं।जो आदमी अंधविश्वास कर लेता है, उ सके भीतर विचार की, तर्क की प्रतिभा जन्मती ही नहीं है। यदि कोई आदमी अपनी आंखों का उपयोग ही न करे और कुछ वर्षों तक आंखें बंद रखे, तो फिर उसकी आंखें काम करना बंद कर देंगी।

यदि कोई अपने पैरों को बांधकर बैठ जाए और कुछ वर्षों तक न उठे, न चले तो उसके पैर चलना बंद कर देंगे। जिस शक्ति का उपयोग करना हम बंद कर देते हैं वह शक्ति क्षीण हो जाती है। जिस शक्ति का हम जितना अधिक उपयोग करते हैं वह उतनी ही अधिक विकसित होती है। लेकिन हजारों साल से मनुष्य जाति का जि न लोगों ने शोषण किया है, उन्होंने चाहा ही नहीं कि मनुष्य जाति का जिन लोगों ने शोषण किया है, उन्होंने चाहा ही नहीं कि मनुष्य सोचे या विचार करे। क्योंकि ि वचार बड़ी खतरनाक बात है। विचार बहुत विद्रोही है। जा आदमी विचार करेगा उ सका शोषण नहीं किया जा सकता। उसे धोखा नहीं दिया जा सकता। उसे गलत रास् तों पर नहीं ले जाया जा सकता। और आज तक मनुष्य जाति को कुछ थोड़े से लो ग अपने हित और स्वार्थ में गलत रास्तों पर ले जाते रहे हैं। इसके लिए जरूरी था कि वे मनुष्यों के भीतर विचार को पैदा ही न होने दें। इसलिए उन्होंने सिखाया, वि श्वास करो; धर्म-पुरोहितों ने, धनपतियों ने भी सिखाया। विश्वास करो, उन्होंने कहा : विश्वास फलदायी है विश्वास धर्म का आधार है। जो विश्वास करता है वह परमा त्मा को पा लेता है। ऐसे एक षड़यंत्र मनुष्य के विरुद्ध चलता रहा है और उसे ऐसी बातें सिखायी जाती रही हैं जो कि निहायत झूठी और भ्रामक हैं। विश्वास से कभी कोई सत्य तक, ईश्वर तक न पहुंचा है, न पहुंचेगा। क्योंकि जो खुली आंख चाहिए थी सत्य के निरीक्षण के लिए देखने को, दर्शन को, उसे विश्वास बंद ही कर देता है।

जो व्यक्ति भी अपने जीवन को उघाड़ने में उत्सुक हुआ है, और अपने भीतर प्रवेश कर जीवन की शक्ति को जानने की आकांक्षा से भर गया है, उसे जानना चाहिए ि क उसे विचार करना ही होगा—उसे विचार की अग्नि से गुजरना ही होगा, क्योंकि उस अग्नि से गुजरे बिना वह तपा हुआ सोना नहीं बन सकता है। विश्वास तो निद्रा है। विश्वास तो आलस्य है। विश्वास तो प्रमाद है। विश्वास तो मूर्च्छा है। और विच ार है तपश्चर्या। विचार कठिन तपश्चर्या है, क्योंकि विचार चित्त के सारे भ्रम छीन लेता है। और भ्रम बहुत सुखदायी है। उनका छिन जाना दिल को चोट पहुंचाता है। उनके छिन जाने से बहुत घबराहट होती है। भ्रम छिनते हैं तो आदमी बहुत बैचेनी अनुभव करता है। लेकिन सत्य तक पहुंचने के पहले भ्रमों का छिन जाना अत्यंत ज रूरी है। विचार की तेज तलवार, भ्रमों के जाल को तोड़ देती है। इसलिए सोचना जरूरी है। दूसरों को स्वीकार या अस्वीकार करना नहीं, बल्कि स्वयं की समग्र चेतना से सोचना, विचार ना जरूरी है। हर तथ्य को उलटना-पलटना जरूरी है। उसे तरा

जू पर—तर्क के तराजू पर कसना जरूरी है। आह! यह पूछना जरूरी है कि यदि यह मांस है तो फिर बिल्ली कहां है?

इसलिए मैं कहता हूं कि सत्यानुसंधान का पहला सूत्र है: विचार।

और जिस व्यक्ति के भीतर विचार सजग हो उठता है उसके जीवन में एक अलग ह ी तेजस्विता पैदा हो जाती है। और जिसके भीतर विचार फीका है, उसके जीवन में भी एक शिथिलता, एक उदासी, एक सुस्ती छायी रहती है। विचार महान शक्ति है। मनुष्य के भीतर जो सबसे जीवंत शक्ति है—जो सबसे प्राणवान ऊर्जा है—जो सबसे म हान तेजस्विता है—जो सबसे ज्वलंत अग्नि है वह विचार की है। इसलिए स्वभावतः ि जसके प्राण जितने विचारपूर्ण होते हैं, उसके जीवन में उतनी ही ताजगी और तेज आ जाता है। वह उतना ही जागरुक और प्रबुद्ध हो उठता है और उतना ही प्रकाश से भर जाता है। विचार-ऊर्जा का ही प्रज्जवलित हो उठना तो प्रकाश है।

लेकिन इस ऊर्जा को प्रज्जवलित होने से सदा रोका गया है। विचार के अंगारे को स दैव से ही विश्वास की राख से ढांके रखा गया है। इसलिए ही तो मनुष्यता इतनी द ीन-हीन इतनी वीर्यहीन और इतनी लघुता से भर गई है। मनुष्य के नाम पर यह जो पृथ्वी पर रेंगता प्राणी दिखाई पड़ता है, यही उस ऊर्जा के जागने से आकाश में उ. डनेवाला एक सबल, सतेज पक्षी भी हो सकता है।

एक बहुत बड़ा विचारक था। वह एक दिन सुबह ही सुबह अपने गांव के तेली के घ र तेल खरीदने गया था। तेली ने जब तक तेल तौला, तब तक वह देखता रहा कि उसके पीछे ही तेली का कोल्हू चल रहा था। लेकिन वह बैल अपने आप ही कोल्हू को चला रहा था। उसे कोई चलानेवाला नहीं था। उसने तेली से पूछा: 'यह बैल ब. डा धार्मिक मालूम होता है! इसे कोई चला नहीं रहा है फिर भी यह चल रहा है। इ सका राज क्या है?' यह सुन उस तेली ने बड़े मतलब की बात कही थी। उसने कह ा था, 'देखते नहीं हैं आप कि बैल की आंखें हमने बंद कर रखी हैं? जब आंख बंद होती हैं तो बैल को पता ही नहीं होता है कि उसे कोई चला रहा है या नहीं चला रहा है। आंख खुली होती तो बैल को ऐसा चलाना कठिन था। बैल कोई आदमी तो है नहीं कि आंखें होते हुए भी विश्वास कर ले और अंधा बन जाए। बैल धार्मिक न हीं है, लेकिन उसकी आंखें बंद हैं, इसलिए धोखा खा रहा है।

उस विचारक ने फिर भी पूछा: 'लेकिन वह कभी-कभी खड़ा होकर जांच भी तो क र सकता है? तुम्हें तो कैसे पता चलेगा? तुम तो उसकी ओर पीठ किए बैठे हो? व ह तेली बोला: 'उसके गले में हमनें घंटी बांध रखी है। चलता है तो घंटी बजती है ।...और जैसे ही घंटी रुकती है, हम फिर उसे चला देते हैं...उसे कभी यह ख्याल ही नहीं आ पाता कि बीच में चलाने वाला गैर मौजूद था।' उस विचारक ने कहा: ' लेकिन यह भी तो हो सकता है कि बैल खड़ा हो जाए और सिर हिलाता रहे और घंटी बजती रहे?' फिर तो वह तेली बहुत घबड़ाकर बोला: महाराज हम आपके हा थ जोड़ते हैं...कृपा करके ऐसी बातें इतने जोर से मत कहिए...कहीं बैल आपकी बा तें सुन ले तो हमारा तो सारा धंधा ही चौपट हो सकता है।'

वह तेली बड़ा ईमानदार था। कम-से-कम उसने सच्ची बात तो कही। आदमी के मालिक तो इतने भी ईमानदार नहीं हैं। वे भी नहीं चाहते कि आदमी विचार की बातें सुने...विचार करे...विचारपूर्ण हो जाए, क्योंकि वे भी अपना धंधा चौपट नहीं करना चाहते हैं। विचार आमूल क्रांति है। और इसलिए बैल का मालिक नहीं चाहता है कि विचार बैल तक पहुंच जाए। दुनिया में कोई मालिक नहीं चाहता है कि विचार गुलाम तक पहुंच जाए। और मनुष्य को जोता हुआ है, बहुत-बहुत कोल्हुओं में। उससे काम करवाया जा रहा है और उसके गले में घंटियां बांध दी गयी हैं जो कि सतत बज रही हैं, और आदमी है कि आंख बंद किए चला जा रहा है। आंख उसकी किस बात से बंद है? आंख विश्वास से बंद है। आदमी की आंख पर विश्वास की पट्टियां हैं। तभी तो एक रंग की पट्टी आदमी को मुसलमान बना देती है, दूसरे को हिंदू तीसरे को जैन, चौथे को खिस्ती। अन्यथा आदमी आदमी में कोई भेद है? कोई दीवार है? कोई खाई है उन दोनों के बीच? उनके प्रेम को रोकने वाली कोई दीवार है? नहीं! नहीं! नहीं! सिर्फ विश्वासों के सिवाय और कोई दीवार नहीं है।

मैं मुसलमान हो जाता हूं, आप हिंदू हो जाते हैं। क्योंकि मुझे बचपन से दूसरे विश्वास का जहर पिलाया गया है और आपको दूसरे विश्वास का। जहर के रंग अलग हैं, नाम अलग हैं, लेकिन जहर तो एक ही है। वह जहर है--अंध विश्वास का। आपकी आंखों पर दूसरे रंग की पट्टियां बांध गई हैं और मेरी आंखों पर दूसरे रंग की। झंडों के रंग अलग-अलग हैं, लेकिन गुलामी एक है। वह गुलामी है, अंधविश्वास की। और ऐसे प्रकाश के, दृष्टि के, विचार के सारे द्वार बंद कर दिए गए हैं। विचार नहीं है, और मनुष्य है यह वैसे ही है, जैसे श्वास न हो और शरीर हो। और फिर ये ही विचार छीन लेने वाले--ये ही विचार की भ्रूणहत्या करने वाले कहते हैं कि आदमी का बड़ा पतन हो गया!...

आदमी का पतन नहीं होगा तो और क्या होगा? विचार की हत्या मूलतः आदमियत की हत्या है। विचार के बिना आदमी के पास क्या बल है? विचार के बिना उसकी आत्मा बिना रीढ़ के हो जाती हो तो आश्चर्य ही क्या है? और हम सबका हमें ख्याल ही नहीं है।...और यदि कोई ख्याल दिखाने वाला आ जाता है तो आदमी के शोषक उससे कहते हैं: महाराज, आप यहां से जाइए, आपकी बातें आदमी के हित में नहीं हैं। आदमी का हित यानी उनका हित। कोल्हू के बैल का हित यानी तेली का हित! और यदि ऐसे व्यक्ति फिर भी चुप नहीं होते हैं तो उन्हें चुप करा दिया जाता है। और मजा तो यह है कि तेली तो तेली, बैल भी उन्हें चुप कराने में बड़ा श्रम उठाते हैं।

दुनिया में जब भी विचार को जन्म देने वाले लोग पैदा हुए तो हमने उनकी हत्या कर दी है। हमने उनको शूली पर लटका दिया या जहर पिला दिया। सुकरात को यूनान ने जहर पिलाया था। वह एक आदमी था, जिसने विचार के लिए कोशिश की थी। वह एथेन्स की सड़कों पर गया और लोगों को चिल्लाकर चिल्लाकर जगाने लगा कि तुम सोए हुए हो, तुम अंधे हो। आदमी के सोयेपन में, आदमी के अंधेपन में जिन

के निहित स्वार्थ थे, उन्होंने फिर सुकरात को बर्दाश्त नहीं किया। उन्होंने कहा, यह आदमी समाप्त कर दिया जाना जरूरी है। क्योंकि यह ऐसी बातें कर रहा है कि अगर लोगों ने सुन ली तो फिर उनका किसी तरह शोषण न किया जा सकेगा। तो सुकरात से उन्होंने कहा कि तुम लोगों को बिगाड़ रहे हो। जरूर यी
तो उस तेली ने उस विचारक से कहा था कि महाराज धीरे बोलें और बैल को न बिगाड़ें। सुकरात का विचार के अतिरिक्त और तो कोई अपराध न था। और इधर तीन हजार वर्षों में जब भी विचार की कोई किरण मनुष्य के भीतर पैदा होने को हुई, और ऐसा डर पैदा होने लगा कि हवाएं कहीं उसे दूर-दूर न ले जाएं और वह सब के हृदय में सोयी आत्मा की चिनगारी न जला दे, तभी जल्दी से जो स्वार्थांध थे उन्होंने उसकी हत्या कर दी। आह! विचार की आग को सदा ही बुझाया जाता रहा है। आज भी हम करीब-करीब वैसे ही अंधेरे में खड़े हैं, जैसे सुकरात के वक्त के लोग थे। कोई फर्क पैदा नहीं हुआ। शायद एक साजिश, कान्सपरेसी है, एक षड़यंत्र है, समस्त के अहित में और कुछ लोगों के हित में समस्त जाति अंधी बनी रहे। फिर इन अंधे लोगों से कुछ भी करवाया जा सकता है, इनसे कहा जा सकता है कि इस्लाम खतरे में है, आग लगाओ हिंदुओ के घर में तो ये अंधे आदमी आग लगाएंगे। ये न पूछेंगे कि लोगों के मकान में आग लगाने से धर्म को क्या संबंध हो सकता है। जब इनसे कहा जाएगा कि हिंदू धर्म खतरे में है, जलाओ मस्जिदों को। तो ये मस्जिदों को जलाएंगे। निहत्थे बच्चों की हत्या कर देंगे और ये यह न पूछेंगे कि हिंदू धर्म की रक्षा का किसी के बच्चे की हत्या करने से कौन सा संबंध है। ये पूछेंगे ही नहीं, क्योंकि पूछता वह है जो विचार करता है। जो विश्वास करता है वह पूछता ही नहीं है। वह तो प्रश्न खड़े ही नहीं करता है। उसको तो जो कहा जाता है वही परम सत्य है। आज्ञा-आज्ञा होती है। उसे, वह तो उसे बस स्वीकार ही कर सकता है। इसलिए तो दुनिया में आज तक न मालूम किस किस तरह की बेवकूफियां नानसेंस आदमी को समझायी जाती रही हैं और करवायी जाती रही हैं। और इन बेवकूफियों के लिए उसे लड़ाया जाता रहा है, उसकी हत्या करवायी जाती रही है और वह सब करता रहा है जो कि कोई केवल पागलपन में ही कर सकता है। विश्वास विक्षिप्तता लानेवाले तत्वों में अग्रणी रहा है, वह सब प्रकार के पागलपनों को जन्मने का राज, सीक्रेट है। विचार तो पूछेगा, विचार तो झिझकेगा, विचार तो संदेह करेगा। लेकिन विश्वास न पूछता है, न सोचता है, न संदेह करता है, न झिझकता है। वह तो बस करता है—जो कहा जाता है, वह वही करता है। यह मनुष्य को मशीन बना देने की कीमिया है।

इसलिए तो जो लोग उपद्रव जारी रखना चाहते हैं दुनिया में, शोषण जारी रखना चाहते हैं, युद्ध जारी रखना चाहते हैं, वे नहीं चाहते हैं कि विचार पैदा हो। चाहते हैं विश्वास रहे। हिटलर भी वही चाहता है, स्टालिन भी वही चाहते हैं। दुनिया के और नेता भी वही चाहते हैं, धर्म नेता भी वही चाहते हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि चाहे वे धार्मिक नेता हों, चाहे राजनीतिक, वे सब एक बात से सहमत हैं कि वृहत्तर

मनुष्यता की आंखें नहीं खुलनी चाहिए। शायद नेताओं का जीवन इसी में है कि जन
ता की अंधी है, क्योंकि आंखें वाले लोग न तो किसी को नेता बनाते हैं, न गुरु बना
ते हैं। यह काम तो वे अपनी आंखों से ही ले लेते हैं। नेताओं के लिए, गुरुओं के ि
लए अंधों का होना बिलकुल ही जरूरी है। इसीलिए तो वे जाने अनजाने किसी एक
ही षड़यंत्र के साझीदार हैं।

मैं आपसे आंख खोलने के लिए निवेदन करता हूं।

मनुष्य अंधा नहीं है। वह अंधा बना हुआ है। उसे अंधा बनाया गया है। यह अंधापन
मनुष्य निर्मित मेन मेनुफेक्चर्ड है।

जिंदगी अंधे की तरह स्वीकार करने की चीज नहीं, खुली आंखों से खोजने की बात
है। लेकिन हमने सब उत्तर बिना सोचे स्वीकार कर लिए हैं, इसीलिए तो हमारा सा
रा ज्ञान मुर्दा है। उसमें जीवन नहीं है, उसमें जीवंत गुण, लिविंग क्वालिटी नहीं है।
जो ज्ञान हम स्वयं खोज से उपलब्ध करते हैं, उसमें जीवंतता होती है, उसमें जीवन
होता है। जो ज्ञान हम चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं, वह मृत होता है।

एक गांव में दो मंदिर थे। उन दोनों मंदिरों में पुश्तैनी झगड़ा था, जैसा कि मंदिरों
में सदा ही होता है। वे दोनों मंदिर हमेशा से एक-दूसरे के दुश्मन थे। वह दुश्मनी ब.
डी पुरानी थी। अनेक पीढ़ियां मर चुकी थीं। लेकिन दुश्मनी कायम थी। क्योंकि मां-ब
ाप, अपने बच्चों को इतना प्रेम करते हैं कि वे अपनी दुश्मनी भी बपौती में दे जाते
हैं। उन मंदिरों के पुजारी बदलते गए थे। हजारों साल पुराने वे मंदिर थे, लेकिन हर
पुजारी को बपौती दे गया कि उनमें आपस में बोलचाल न थी। किन धर्मों में बोल
चाल है? मंदिर और मस्जिद में बोलचाल है? चर्च और मंदिर में बोलचाल है? कह
ीं कोई बोलचाल नहीं है। उनके बीच भी नहीं थी। उन दोनों मंदिरों में भी नहीं थी।
लेकिन उन दोनों मंदिरों के पुजारियों के पास छोटे-छोटे बच्चे थे। जो छोटी-मोटी सेव
ा-टहल के लिए, छोटे-मोटे काम कर देने के लिए थे। अब बच्चे बच्चे हैं। वे दोनों क
भी आपस में रास्ते में मिल जाते थे तो हंस बोल भी लेते थे। बच्चों को बूढ़े बिगड़ते
तो हैं लेकिन वक्त लगता है बिगड़ने में। बच्चे आखिर बच्चे हैं, एकदम से नहीं बि
गड़ जा सकते हैं। हालांकि पुजारी समझते थे कि देखो दूसरे मंदिर के बच्चे से बात
मत करना, लेकिन फिर भी बच्चे हैं, बिगाड़ने में वक्त लग जाता है। वे कभी बोल
लेते थे।

एक दिन उत्तर के मंदिर के पुजारी ने देखा, कि बच्चा दक्षिण के मंदिर के बच्चे से
बातें कर रहा है,त वह वापिस लौटा तो उसने उसे डांटा और पूछा कि तुम क्या बा
त कर रहे थे? क्या मैंने नहीं कहा है कि बात मत किया करो? उस लड़के ने कहा
: मैं खुद ही आपसे पूछने को था। आज कुछ ऐसी बात घट गयी है कि मैं निरुत्तर
हो गया हूं। मैंने उस लड़के से पूछा, उस मंदिर के लड़के से कि तू कहां जा रहा है
? वह लड़का बोला, जहां पैर ले जाएं। और तब मेरी समझ में कुछ भी न आया ि
क अब मैं उससे और आगे क्या कहूं?'

यह सुन कर पुजारी बहुत नाराज हुआ और उसने कहा कि यह तो बहुत बुरी बात है। उस मंदिर के बच्चे से हार जाना तो हमारे मंदिर की तौहीन है। और ऐसी ही कभी नहीं हुआ। हम तो सदा ही उस मंदिर में जीतते रहे हैं। तो तुम कल फिर वह ी बात पूछना : 'कहां जा रहे हो? और जब वह कहे जहां मेरे पैर ले जाएं, तो तुम उससे कहना कि और समझ लो कि यदि तुम्हारे पैर न होते तो तुम कहां जाते? कहीं जाते कि नहीं?तो फिर वह भी ठगा-सा रह जाएगा। उसको भी फिर सूझ नहीं पड़ेगा कि क्या कहे और उसे निरुतर करना अत्यंत आवश्यक है।

दूसरे दिन नियत जगह पर जाकर वह लड़का खड़ा हो गया। उसे मंदिर का लड़का ि नकला। उसने पूछा : 'कहां जा रहे हो, मित्र? लेकिन उस लड़के ने नहीं कहा कि ज हां पैर ले जाएं। उस लड़के ने कहा : जहां हवाएं ले जाएं।' अब तो बहुत मुश्किल हो गई। बंधा हुआ उत्तर तैयार था, लेकिन उसको देने का अब तो कोई मतलब नह ीं। तैयार कर वह आया था कि कहूंगा कि अगर तुम्हारे पैर न होते तो फिर कहीं जाते कि नहीं? लेकिन अब उसके कहने का कोई अर्थ न था। बड़ा क्रोध आया उसे उस लड़के पर कि यह लड़का तो बड़ा बेईमान है, कल कुछ कहा, आज कुछ कहने लगा।

दूसरे दिन वह लड़का फिर नियत जगह पर आकर खड़ा हो गया था। उसके पास अ पना कोई विचार तो था नहीं। अपनी कोई बुद्धि तो थी नहीं। अपना कोई चिंतन तो था नहीं। बंधे हुए उत्तर थे। वह उन्हें ही लेकर वहां जाकर खड़ा हो गया। जैसे कि हम सब बंधे हुए उत्तर लेकर खड़े हैं, वैसे वह भी खड़ा हो गया । फिर उसने लड़ के से पूछा : कहां जा रहे हो मित्र? वह लड़का सच में बेईमान था, जैसी कि जिंदग ी ही बेईमान है। क्योंकि जिंदगी भी यूं ही बदल जाती है। उस लड़के ने कहा :सब्जी खरीदने जा रहा हूं। और वह हवाओं का बंधा हुआ प्रश्न और उत्तर वहीं के वहीं रह गए। जिंदगी भी बंधे हुए उत्तर नहीं मानती। रोज जिंदगी प्रश्न बदलती है और हमारे उत्तर बंधे-बंधाए सीखे हुए तैयार रखे रह जाते हैं। जिंदगी बंधे हुए उत्तर नहीं चाहती। जिंदगी चाहती है विचारपूर्ण चेतना। जो भी प्रश्न खड़ा हो, वह उस चेतना में प्रतिफलित होगा। चेतना में वह गूंजेगा। उसकी चुनौती होगी और फिर उत्तर अ ाएगा। उत्तर तैयार नहीं होगा। केवल चेतना तैयार होगी। यह तैयारी विश्वास की न हीं विचार की तैयारी है। यह तैयारी जड़ शब्दों की स्मृति नहीं, जीवंत चैतन्य की तै यारी है।

विश्वास में उत्तर सीखा हुआ, बंधा हुआ होता है। वह हम गीता से सीखते हैं, बाइि बल से सीखते हैं, कुरान से सीखते हैं, कृष्ण से, महावीर से, क्राइस्ट से सीखते हैं। वह उत्तर हम किसी से सीखकर आते हैं और जिंदगी के चौराहे पर खड़े हो जाते हैं । और जिंदगी रोज बदलती है, हमारा उत्तर पीछे पड़ जाता है, और हम परेशान ह ो जाते हैं। जो आदमी सीखे हुए उत्तर बांध लेता है अपने मन में, उसका जिंदगी से कभी मेल नहीं हो पाता। जिंदगी रोज आगे बढ़ जाती है। जिंदगी की गंगा ठहरती नहीं। वह आपके बंधे हुए उत्तरों के लिए नहीं है।

यह रोज नयी हो जाती है और नए प्रश्न खड़ा कर देती है। आप अपनी किताब खोलकर जब तक उत्तर खोजते हैं, और आंख उठाकर देखते हैं कि जिंदगी और आगे बढ़ गयी है उसने और नए प्रश्न खड़े कर दिए हैं। आप हमेशा पीछे रह जाते हैं। विश्वास करने वाला हमेशा पीछे रह जाता है। जिंदगी से उसका संपर्क नहीं हो पाता है। क्योंकि विश्वास दूसरे से ग्रहण करने पड़ते हैं। और दूसरे से ग्रहण करने में बासी हो जाते हैं। बंधे बंधाए हो जाते हैं। मृत, डेड हो जाते हैं। मुद्रा हो जाते हैं। उनका बोझ तो जीवन पर हो जाता है। लेकिन जीवन को वे निर्भार नहीं कर पाते हैं। कैसे जगेगी यह शक्ति? विचार करेंगे तो जगेगी। सोचें। जीवन के हर पहलू को ऐसे ही स्वीकार न कर लें। सोचें। तराजू उठा चलें तर्क का, और तौलें और विचार की कसौटी पर जो खरा न उतर पाए, चाहे वह कितना ही प्रीतिकर लगे, चाहे वह कितना ही सुखद मालूम हो, चाहे वह कितनी ही सांत्वना देता हो। हिम्मत करें और उसे स्वीकार न करें और तब तक प्रतीक्षा करें जब तक वह विचार की कसौटी पर सही न उतर आए। बहुत तपश्चर्या के बात है, कठिन बात है। हमारा मन तो बस चुपचाप मानने को राजी हो जाता है। कौन मेहनत करे। विचार तो श्रम है। विश्वास में कोई श्रम नहीं। मैंने कह दिया और आपने मान लिया। आपको कुछ भी न करना पड़ा। आप खोज में सहयोगी ही न हुए। आप सक्रिय ही न हुए। आप दूर खड़े रहे। मैंने कहा और आपने मान लिया। यह तो बड़ी जड़ता है।यह तो बड़ी आत्मघाती वृति है। और जो इस तरह निष्क्रिय रूप से सब-कुछ स्वीकार कर लेता है उसकी आंखें सदा के लिए बंद ही रह जाती हैं।

जीवन तो एक सतत सक्रियता है।

जीवन तो एक सतत सृजन है।

और इसीलिए जो उसे सक्रिय और सृजनात्मक विचार बना लेता है, केवल वही उसे जान और जी पाता है।

यह पहला सूत्र है।

और दूसरा सूत्र क्या है?

दूसरा सूत्र है: निष्पक्षता। क्योंकि निष्पक्षता के बिना विचार संभव ही नहीं है। विचार का बीज निष्पक्षता की भूमि में ही अंकुरित होता है। पक्ष से बंधना विचार के पंख ही काट देने जैसा है।

जो व्यक्ति किसी पक्ष में बंध जाता है वह सोच-विचार नहीं कर सकता है। उसकी तो जाने-अनजाने यही इच्छा होती है कि मेरा पक्ष ही सही सिद्ध हो जाए।

वह फिर निष्पक्ष, अनप्रजुडिस्ड नहीं हो पाता है। उसके मन का तो लगाव होता है कि यही सही हो। अगर आप हिंदू हैं तो आप सत्य की खोज नहीं कर रहे हैं। आप फिर इस बात की खोज कर रहे हैं कि हिंदू होना कैसे सच्चा सिद्ध हो? कैसे यह मान लिया जाए कि हिंदू ही सही है? फिर आपकी यही खोज चल रही है। यह खोज फिर निष्पक्ष सत्य की खोज नहीं है। आपने अपना पक्ष तय कर लिया है। आप पहले से ही निर्णय कर चुके हैं। और तब फिर बात बहुत आसान है। जो आदमी पहले से

ही किसी पक्ष को तय कर लेता है वह फिर सरलता से उसके लिए तर्क भी जुटा लेता है और गवाहियां भी जुटा लेता है। जिंदगी तो बहुत विराट है। जिंदगी तो बहु त जटिल है। जिंदगी तो असीम और अनंत है। इसलिए उसे से कुछ भी खोजा जा सकता है। उसमें से अपने पक्ष में चुनाव किया जाता है। और ऐसे किसी भी भ्रांति को, किसी भी असत्य को, सत्य बना लिया जा सकता है। पक्षपात चित्त ऐसे ही अ सत्यों को सत्य बनाने में व्यर्थ श्रम में संलग्न रहता है। वह सत्य की खोज नहीं कर ता,वह तो सत्यों का निर्माण करता है। वह तो सत्यों को ढालता है। और इससे ज्या दा अज्ञानपूर्ण बात और कोई भी नहीं हो सकती है। सत्य भी क्या ढाले जा सकते हैं ? और जो ढाला जा सकता वह भी क्या सत्य हो सकता है।
समझ लें तेरह का अंक अशुभ समझा जाता है। एक आदमी इसे सत्य सिद्ध करना चाहता है। वह तेरह तारीख को संसार में जितनी हत्याएं होती हैं, उन सबके आंक. डे इकट्ठे कर लेता है, जितनी आत्महत्याएं होती हैं उनका हिसाब लगा लेता है, जि तने लोग बीमार पड़ते हैं या जितने लोग मरते हैं, उनकी गणना कर लेता है, जित नी दुर्घटनाएं होती , जितने डाके डाले जाते हैं, जितने मकान गिरते हैं, आगें लगती हैं, भूकंप होते हैं या और कुछ दुखद या अशुभ होता है, उस सबका जोड़ लगा ले ता है। ऐसे वह सिद्ध कर सकता है कि तेरह का अंक अशुभ है। और वह यह भी कह सकता है कि उसने वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया है। लेकिन यदि कोई चाहे तो ऐसे ही बारह के या ग्यारह के अंक को भी इतनी ही वैज्ञानिक विधि से अशुभ ि सद्ध कर सकता है। और कोई चाहे तो तेरह के ही अंक को इतनी ही वैज्ञानिक विि ध से शुभ अंक भी सिद्ध कर सकता है। इसमें से जो भी सिद्ध करना हो उस सिद्ध करने के लिए एक अपेक्षा जरूर प्रत्येक के लिए ही आवश्यक है और वह यह कि ज ो भी सिद्ध करना हो उसे पहले से ही सिद्ध मान लेना आवश्यक है और वह यह कि जो भी सिद्ध करना हो उसे पहले से ही सिद्ध मान लेना आवश्यक है। विश्वास मा त्र की यात्रा इसी रूप में होती है। जब कि विचार की यात्रा इससे पूर्णतया भिन्न औ र एकदम विरोधी है। विश्वास पूर्व से ही मानकर चलता है और जो मानकर चलता है वहीं पहुंच जाता है। विचार कुछ भी मानकर नहीं चलता है और जो वस्तुतः है, वहीं पहुंचता है। विश्वास स्वीकृत कल्पनाओं और अनुमानों का मानसिक प्रक्षेपण है। वह उसे ही खोज लेता है, जिस कि उसने अपने पूर्वाग्रह में पहले ही सत्य मान लिय ा है। विश्वास में कल्पना और श्रद्धा प्रथम है और पीछे जो सत्य उपलब्ध होता प्रती त होता है वह उनकी ही उत्पत्ति है। निश्चय ही ऐसा सत्य असत्य ही हो सकता है । विचार में खोज है प्रथम–सत्य है प्रथम और सत्य ही है अंतिम। विचार के लिए न कल्पना है न श्रद्धा है। विचार के लिए श्रद्धा नहीं बस ज्ञान है। और ज्ञान के लिए न श्रद्धा की अपेक्षा है, न अश्रद्धा की। ज्ञान तो स्वयंभू है। वह तो अपने ही आपमें ही पूर्ण है। उसके लिए स्वयं के अतिरिक्त और किसी की भी अपेक्षा नहीं है। लेकि न अज्ञान को अपनी आत्मरक्षा के लिए श्रद्धा चाहिए, विश्वास चाहिए, कल्पना चाहि ए। उनके बिना अज्ञान नहीं दी जा उसके लिए तो अंधापन अनिवार्य है। लेकिन अंधा

पन, ब्लांइडनेस बुद्धिमत्ता नहीं है। न ही वह वैज्ञानिकता है। वह तो अत्यंत अबुद्धिपूर्ण इररेशनल और अवैज्ञानिक दृष्टि है। जिंदगी के प्रति जो इस भांति का रुख लेता है, वह तो जो चाहे सिद्ध कर सकता है। लेकिन उसे सिद्ध करने से कोई सत्य की खोज नहीं हो सकती। निष्पक्ष होना चाहिए, कोरे कागज की भांति। शून्य और रिक्त और पूर्णतया खाली। और फिर जीवन की खोज में जाना चाहिए। पहले से कुछ निर्धारित न हो। पूर्व से कुछ भी स्वीकृत न हो। शुभ और अशुभ, सत्य और असत्य, सुंदर और असुंदर, मैं पहले से कुछ भी तय करके न आऊं। मेरा मन खुला ऑपन हो। मेरी बुद्धि मुक्त हो। मेरा चित्त निर्बन्ध हो। और जीवन जो भी कहे उसे मैं सुनने को राजी होऊं। और जीवन जो भी दिखाए मैं उसे देखने को तैयार होऊं। और जीवन जो भी हो, और जैसा भी हो वह मुझे अपने स्वागत को तत्पर पाए। और तब ही केवल उसे जाना जा सकता है जो कि है—जो कि जीवन है—जो कि सत्य है—जो कि परमात्मा है।

इसलिए मैं कहता हूं कि 'जो है' देट विच इस उसकी खोज में दूसरा हमारा सूत्र है : निष्पक्षता अनप्रजुडिस्डनेस क्या हमारा मन निष्पक्ष है? क्या चित्त तटस्थ है? क्या हम निर्बन्ध और मुक्त हैं?यदि नहीं तो जान लेना कि फिर आपने कभी न कुछ सोचा है, न विचारा है, न जाना है और न जिया है। क्योंकि, निष्पक्ष हुए बिना कोई सोच ही नहीं सकता है। क्योंकि तटस्थ हुए बिना कोई ज्ञात ही नहीं कर सकता है। कयोंकि निर्बन्ध अनटेथरड और मुक्त चितता के अतिरिक्त जीवन को सीधा और प्रत्यक्ष और ताजा और मौलिक जीने का कोई मार्ग ही नहीं है। बंधा हुआ मन और पक्षों में कैदी व्यक्तित्व सदा ही उधार और अमौलिक सेकंड हेंड जीवन ही जीता है। वह सदा बासी और जूठा जीवन ही जीता है। और वह भी कोई जीवन है—वह भी कोई जीवन का स्वाद है? और मनुष्यता का दुर्भाग्य कि हम सदा ऐसा ही जीवन जीते रहे हैं। हमारा चित्त अमुक्त है—बंद है—कारागृह में है। हमारा ज्ञान, हमारी अनुभूति—हमारा जीना सभी कुछ तो इसीलिए बेस्वाद, बासा और मुर्दा हो गया है। और इसका मूल कारण क्या है? यही कि हम सब पक्षधर हैं—यही कि हम सब सांप्रदायिक हैं—यही कि हम सब बंधे हैं—यही कि जीवन की ताजी हवाएं और किरणें और ध्वनियां हमारे बंद मनों क्लोस्ड मांइड के बंद द्वारों से टकराती हैं और वापस लौट जाती हैं और हम सब अपने सीलन भरे, सड़े और गंदे कक्षों में जिए चले जाते हैं। मित्रो, तोड़ दो पक्षों की दीवारों को—तोड़ दो उस सबको जो तुम्हें कैद किए हैं और तुम्हारी आत्मा का कारागृह बना हुआ है। आह! तभी तो तुम उसे पा सकते हो जो कि परमात्मा है। लेकिन नहीं, शायद यह हमारी चाह ही नहीं है।

हम तो शायद कुछ और ही चाहते हैं।

क्या आप चाहते हैं कि सत्य आपके पीछे चले—सत्य आपकी छाया हो। यदि हां! तो सत्य से आपका कभी कोई संस्पर्श नहीं हो सकता। फिर आप असत्य में ही जीएंगे और असत्य के लिए विश्वासियों और पक्षपातियों के कारागृह उचित ही स्थल हैं। असत्य का मंदिर पक्षपात की दीवारों से ही निर्मित होता है और असत्य का अंधकार,

असत्य का देवता चित्त के खुले झरोखों, खुली खिड़कियों और खुले द्वारों को बिलकु ल ही पसंद नहीं करता है। मित्रो, तब तो उचित है कि आप मेरी बातें भी न सुनें। कान बंद कर लें और यहां से भाग जावें। वैसे शास्त्र भी यही सलाह देते हैं और स दगुरु भी यही सलाह देते हैं!

लेकिन यदि सत्य के बीज ने आपके प्राणों में अंकुरित होने की अभीप्सा की है और यदि सत्य के अज्ञात तटों ने आपको पुकारा है तो फिर उन जंजीरों को तोड़ दें जिन में आपने स्वयं ही अपने आपको बांध रखा है। उनके टूटने से जंजीरों के अतिरिक्त और कुछ भी आपको बांध रखा है। उनके टूटने के लिए जंजीरों के अतिरिक्त और कुछ भी आपको खोने को नहीं है और मिलने को है : एक पूरा अज्ञात लोक—एक अ मृत जीवन—एक छायातरु जिसके लिए कि प्रत्येक जीवन-पथिक आतुर और प्यासा है । क्या आपने अशांत प्राणों ने शांति के शिखरों की ओर आंखें उठाई हैं? तो सत्य के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है, तो सत्य के अतिरिक्त और कोई द्वार नहीं है, तो सत्य के अतिरिक्त और कोई पड़ाव नहीं है। सत्य और सत्य और सत्य। लेकिन सत्य बंदीगृहों का आवासी नहीं बनता है—इसलिए कहता हूं कि मुक्त बनें, क्योंकि परम मुक्तिदायी सत्य केवल उन द्वारों पर ही आता है जो कि स्वयं भी अपने मुक्त होने की घोषणा कर देते हैं। सत्य एक ऐसा आभूषण नहीं है कि कारागृह की जंजीर ों के साथ उसे भी पहना जा सके। और वस्तुतः तो सभी आभूषण नहीं, सत्य तो स्व तंत्रता है। इसलिए ही तो जंजीरों के साथ उसके सह-अस्तित्व की कोई संभावना नह ीं है।

सत्य को अहंकार का आभूषण न बनाएं...वह तो आत्मा की स्वतंत्रता है। और अहं कार के सभी आभूषण आत्मा की परतंत्रता सिद्ध होते हैं। अहंकारी चाहता है सत्य मेरे पक्ष में हो—सत्य मेरा गवाह हो—मैं जैसा चाहता हूं सत्य वैसा हो। संप्रदायों की, पक्षों की यही तो मांग है। लेकिन निष्पक्ष चित्त स्वयं ही सत्य का गवाह बनना चा हता है, वह सत्य को स्वयं की गवाही में खड़े होने की मांग नहीं करता है। ऐसी मू. ढता और धृष्टता की कल्पना भी उसके लिए संभव नहीं है। अहंकारी, पक्षपाती, सत्त य को स्वयं के अनुकूल ढालता है और सत्य के प्रेमी सत्य के अनुकूल स्वयं को रूपां तरित करते हैं। ऐसे सत्य का प्रेमी एक क्रांति से गुजर जाता है और नया हो जाता है और अन्ततः स्वयं सत्य हो जाता है।

सत्य के प्रेम की भूमिका के इस दूसरे चरण को मैं निष्पक्षता कहता हूं। निष्पक्षता मू लतः स्वयं को सब भांति के शब्दों, सिद्धांतों, शास्त्रों और संप्रदायों से शून्य कर लेने से उपलब्ध होती है। शून्य चित्तता ही निष्पक्षता है। और शून्य से बड़ी कोई शक्ति न हीं है। शून्य से ज्यादा विधायक पोसिटिव, कोई ऊर्जा नहीं है। इसलिए तो सभी कुछ शून्य से जन्मता और शून्य में लीन हो जाता है। शून्य है आदि और शून्य है अंत। इसलिए जो शून्य हो जाता है वह प्रथम और अंतिम दर्शन पा लेता है। जीवन में जो असत्य है वह है अहंकार और जो सत्य है वह है शून्य। अहंकार है असत्य का प्रगा. ढतम रूप और शून्य है सत्य की सहजवस्था। निष्पक्षता क्रमशः इसी शून्य की ओर ले

जाती है। निष्पक्षता शून्य की ओर गति है। वह स्वयं को शून्य कर लेने की प्रक्रिया है। पक्ष भरते हैं पंथ भरते हैं,शास्त्र और सिद्धांत भरते हैं...निष्पक्षता खाली करती है, निष्पक्षता शून्य करती है। लेकिन मनुष्य किसी भी बात में निष्पक्ष नहीं है। और यही रोग उसे निरंतर विकृति में ले जा रहा है।पक्षपात से भरा चित्त ही है सारे यु द्धों, सारी कलहों का जनक। हिंसा मात्र उससे ही पैदा होती है। लेकिन पक्षपात से भरा चित्त अपनी हिंसा को आत्मरक्षा कहता है और दूसरे की हिंसा को आक्रमण क हता है। आश्चर्यजनक है कि विश्व के सारे युद्ध ही आत्मरक्षा के लिए लड़े गए हैं और कोई भी नहीं पूछता है कि जब सभी आत्मरक्षा करते हैं, तो आक्रमण कौन क रता है? प्रत्येक राष्ट्र ही अपने सैन्य विभाग को सुरक्षा-विभाग ही कहता है। शायद जो हम करते हैं वह सुरक्षा है और जो दूसरा करता है वह आक्रमण है।

एक ईसाई पिता अपने बच्चे से कह रहा था : 'दस हिंदू ईसाई हो गए हैं; परमात्मा को धन्यवाद। उन दस दिनों को सुबुद्धि आ गई है। उसके बच्चे ने कहा : 'लेकिन ि पताजी...एक बार एक ईसाई हिंदू हो गया था, तब तो आपने यह बात नहीं कही थ ी। तब तो आपने कुछ और ही कहा था। उसका पिता लाल आंखें करके बोला : 'चु प उस गद्दार का नाम भी मेरे सामने मत लेना।'

जो ईसाई से हिंदू हो गया,वह है गद्दार! और जो हिंदू से ईसाई हो गया उसका आ गई है सुबुद्धि और वह हो गया है परमात्मा का प्यारा! यही है हम सबके पक्षपाती चित्त का ढंग। पक्षपाती चित्त की गाड़ी ऐसी ही असत्य पटरियों पर दौड़ती है। ऐसा ही असत्य तर्क यदि हमारे जीवन-विधि है तो विक्षिप्तता में और सामान्य चित्त में मात्रा डिग्रीस का ही भेद है, गुण का नहीं। वे एक ही चित्त की थोड़ी कम या थोड़ी ज्यादा अभिव्यक्तियां हैं। यह विक्षिप्तता ही हमें सोचने नहीं देती है। इसके ही कार ण न हम सोच पाते हैं, न देख पाते हैं, न समझ पाते हैं। और तब हम अपने-अपने कुओं में ही बंद मर जाते हैं।

सुनी है न यह बात कि सागर का एक मेंढक एक छोटे-से कुएं में आ गया था। उस कुएं के मेंढक ने उससे पूछा : मित्र, तुम कहां से आते हो? उसने कहा मैं समुद्र से आता हूं। कुएं के मेंढक ने पूछा : कितना बड़ा है तुम्हारा समुद्र...इतना बड़ा? वह सागर का मेंढक फिर भी बोला : नहीं मित्र सागर बहुत बड़ा है। लेकिन कुएं का मेंढ क बड़ी से बड़ी छलांग लगाता गया। आखिर जितना बड़ा कुआं था उसने उतनी बड़ ी और अंतिम छलांग लगायी और कहा : अब तो ठीक है न?' लेकिन वह सागर से आने वाला मेंढक बोला : नहीं मित्र! तुम्हारे पास नापने का कोई उपाय नहीं। साग र तो अमाप है...सागर तो अनंत है...सागर तो असीम है। अब तो कुएं वाला मेंढक अविश्वास से हंसने लगा और बोला : निहायत पागलपन की बातें करते हो। इससे ब. डी कोई जगह भी है दुनिया में? इस कुएं से बड़ी कोई जगह भी है? जीवन भर जो एक कुएं में रहा है उसे यदि ऐसा ख्याल पैदा हो जाए कि इससे बड़ी कोई जगह न हीं तो हंसने की क्या बात है? जो कुएं में ही रहा है उसे पता भी कैसे चलेगा कि इससे बड़ी कोई जगह भी है।

हम सबने भी अपने-अपने कुएं बना लिए हैं और उनमें रह रहे हैं। और जब भी को ई सागर की खबर लाता है तो हम कहते हैं कि गीता में जो लिखा है वही आप क ह रहे हैं न? बाइबिल में जो लिखा है वही न? कुरान में जो लिखा है वही न? औ र यदि वह कहे कि मैं जो खबर लाया हूं वह कहीं भी लिखी हुई नहीं है, तो हम हंसेंगे और कहेंगे: महानुभाव! फिर रहने दीजिए। ऐसी कोई बात ही नहीं हो सकती है। हमारे कुएं से बड़ा भी कोई और स्थान हो सकता है? शब्दों में जो कहा गया है, उससे भी बड़ा कोई सत्य हो सकता है? परंपराओं से जो कहा है उससे भी बड़ी कोई बात हो सकती है?

हम अपने कुओं में बंद हैं। जो अपने कुएं में बंद है उसे मैं कह रहा हूं: पक्षपाती प क्षधर, पक्षांध। सोच-विचार के लिए कुएं के बाहर आ जाना आवश्यक है। उस मेंढक ने भूल की जो सागर से आया था। मैं उसकी बड़ी तलाश करता हूं कि वह कहीं ि मल जाए तो मैं उससे दो बातें कर लूं। उसने बड़ी भूल की। कुएं वाले मेंढक ने को ई भूल नहीं की। भूल की तो सागर से आने वाले मेंढक ने की।जब कुएं के मेंढक ने छलांग लगाई थी और कहा था इतना बड़ा। तभी सागर वाले मेंढक ने भूल कर दी । उसने यह कहा: नहीं, इतना बड़ा और बड़ा। इससे कुएं के मेंढक ने भ्रम पैदा हु आ कि और दूसरी छलांग लगाऊं जरा लंबी। और तीसरी छलांग लगाऊं। और चौथी लगाऊं। अगर मैं उसकी जगह होता तो उस कुएं के मेंढक से कहता: मित्र, छलांग मत लगाओ। और लगानी ही है तो कुएं के पानी मत लगाओ...कुएं के बाहर लगा ओ। कुएं के बाहर आ जाओ। सागर को अगर जानना ही हो तो कुएं में बैठकर जा नने का कोई उपाय नहीं। चलो। जिस रास्ते से मैं सागर से यहां तक आया हूं वह र ास्ता मुझे पता है। मैं तुम्हें सागर तक ले चलता हूं। अगर वह कुएं में बैठकर जानने का कोई उपाय नहीं। चलो। जिस रास्ते से मैं सागर से यहां तक आया हूं वह रास् ता मुझे पता है। मैं तुम्हें सागर तक ले चलता हूं। अगर वह कुएं के मेंढक को साग र तक ले गया होता तो जो बात समझानी कठिन थी...संभव नहीं हुई थी, वह उस कुएं के मेंढक को खुद ही दिखायी पड़ती। तो मैं आपसे कहूंगा: कुएं के भीतर नाप ना-जोखना बंद करें। थोड़ा बाहर आएं। परमात्मा का सागर बहुत बड़ा है। धर्म-पुरो हितों के कुएं बहुत छोटे हैं। किताबों के कुएं बहुत छोटे हैं। शब्दों के कुएं बहुत छोटे हैं। सत्य का सागर बहुत बड़ा है। और अगर हम शब्दों में उसे नापने की कोशिश क रेंगे, अपने-अपने कुएं की इकाई में तो चाहे हमारा कुआं कितना भी बड़ा हो वह स त्य को कभी भी न नाप पाएगा। निष्पक्ष मन...कुएं के बाहर आ गया मन है। इसलि ए, दूसरा सूत्र है: पक्ष को विसर्जित कर दें। पक्ष को जाने दें। पक्ष के कुएं को छोड़ दें ताकि वह आ सके जो कि केवल निष्पक्ष चित्त में ही आता है।

पहला सूत्र है: विचार।

दूसरा सूत्र है: निष्पक्षता।

तीसरा सूत्र है: जागरूकता।

और ये तीनों सूत्र भिन्न-भिन्न नहीं हैं, एक ही सूत्र के तीन रूप हैं। क्योंकि एक के ि
बना दूसरा भी नहीं हो सकता है। प्रत्येक में शेष दो भी अनिवार्यतः उपस्थित हैं। वि
चार में निष्पक्षता है और जागरूकता। निष्पक्षता में विचार और जागरूकता और जा
गरूकता में निष्पक्षता और विचार।

जीवन के प्रति हम सोए-सोए जीते हैं। आंख बंद किए-से, सोए-सोए से, नींद में ही
जीते हैं। जागकर नहीं। सैकड़ों सचाइयां हमारे पास से गुजर जाती हैं, उन्हें हैं, उन्
हें हम देख भी नहीं पाते हैं।

बुद्ध का जन्म हुआ। तो उनके पिता ने ज्योतिषियों को बुलाया। और उनसे पूछा : य
ह बच्चा क्या बनेगा? उन ज्योतिषियों ने कहा : या तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा या
पूर्ण संन्यासी। मां-बाप इससे बहुत भयभीत हुए...चक्रवर्ती होने की संभावना से नहीं,
संन्यासी होने की संभावना से। होना तो था भयभीत चक्रवर्ती होने की संभावना से,
क्योंकि वह एक बड़े से बड़े डाकू होने की संभावना है लेकिन नहीं; वे सब भयभीत
हो उठे कि कहीं उनका बेटा संन्यासी न हो जाए। यह बड़े मजे की बात है। मां-बा
प बच्चा चोर न हो जाए, हत्यारा न हो जाए या और कुछ भी हो जाए तो उससे
उतना नहीं डरते जितना कि उसके संन्यासी होने से डरते हैं। क्योंकि चोर, डाकू या
हत्यारा फिर भी संसार का ही एक हिस्सा होता है। लेकिन संन्यासी की राह संसार
की दूसरी ही राह है। चोर और बेईमान के रास्ते भी मां-बाप के परिचित रास्ते हो
ते हैं, लेकिन संन्यासी का रास्ता बड़ा अज्ञात अननॉन है, बड़ा अपरिचित है। वह बड़े
अनजान रास्ते पर जाना है। यह कोई बाप नहीं चाहता, कोई मां नहीं चाहती। यद्य
पि बुद्ध के मां-बाप गांव में आए संन्यासियों के जरूर ही पैर छूते होंगे। दूसरों के ल.
डके संन्यासी हो जाएं इससे किसी को क्या लेना-देना है। लेकिन खुद का ही लड़का
संन्यासी हो जाएगा इस विचार से ही वे इतने घबड़ा गए कि नगर के सब विद्धानों
को बुलाकर पूछा कि इसे संन्यासी होने से कैसे बचाया जा सकता है? उन सब ने क
हा :एक ही तरकीब है, इसे संन्यासी होने से बचाने की...जिंदगी इसे दिखायी न पड़े।
यह बेहोश रहे। इसे पता न चले जिंदगी का...तो यह संन्यासी नहीं होगा। क्योंकि ि
जस आदमी को जिंदगी दिखायी पड़ती है, उसकी जिंदगी में बदलाहट हो ही जाती
है, क्रांति हो ही जाती है।

बुद्ध को उन्होंने इस भांति पाला जिससे कि उसे कुछ भी दिखाई न पड़े। कहते हैं बु
द्ध की बगिया में फूल कुम्हलाने से पहले ही रातों रात अलग कर दिए जाते कि कह
ीं कुम्हलाया हुआ फूल देख कर बुद्ध को यह ख्याल न आए कि जिंदगी भी एक दिन
कुम्हला जाएगी। बूढ़े लोगों को बुद्ध के आसपास जाने की आज्ञा न थी। सुंदर युवा-
युवतियां ही उनके पास आते-जाते थे। ताकि बुद्ध को यह ख्याल न आ जाए कि जिं
दगी एक दिन बुढ़ापे में से भी गुजरती है। बुद्ध युवक हो गए तब तक उन्होंने मृत्यु
की खबर न सुनी थी। कहीं मृत्यु की खबर का आघात उनके जीवन में कोई क्रांति
न ला दे। लेकिन जिंदगी से कब तक किसी को छिपाया जा सकता है? जिंदगी चारों

तरफ से हमले किए जाती है रोज। और फिर अन्ततः छिपाने की तरकीब ही खतरा बन गई थी।

बुद्ध युवा हुए। युवक महोत्सव था। बुद्ध उसमें भाग लेने गए। वे अपने रथ पर थे और तभी उन्होंने पहली बार एक बूढ़े आदमी को देखा। यदि उन्होंने बचपन से ही बूढ़े आदमियों को देखा होता तो शायद यह चोट इतनी गहरी न होती। बूढ़े आदमी देखने की आदत हो गई होती। लेकिन बचपन से उन्होंने बूढ़ा आदमी ही नहीं देखा था। हम भी रोज बूढ़े आदमियों को देखते हैं, बुद्ध ने भी देखा, लेकिन बुद्ध को वह घटना बहुत-बहुत प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ी। अजनबी थे वे बिलकुल। उन्होंने बूढ़ा आदमी ही नहीं देखा था। उन्होंने सारथी को पूछा : इस आदमी को क्या हो गया है?ऐसा आदमी तो मैंने कभी देखा ही नहीं? सारथी ने कहा : यह वृद्ध हो गया है? अगर आप होते बुद्ध की जगह तो आप कहते : अरे बेचारा, कितनी बुरी बात हो गई...बूढ़ा हो गया। चलो किसी धर्मार्थ अस्पताल में भरती करवा दें। इसका इलाज करवा दें। या सरकार से कहें कि किसी को बूढ़ा न होने दे, ऐसी योजना करें। आपने कोई ऐसी बात सोची होती, लेकिन बुद्ध ने यह नहीं सोचा। बुद्ध ने यह भी नहीं पूछा कि यह बूढ़ा कहां रहता है, क्या क्या नहीं। सारथी ने जैसे ही कहा यह आदमी बू.ढा हो गया है तो बुद्ध ने दूसरी कौन सी बात पूछी? कोई भी विचारशील वही बात पूछेगा। बुद्ध ने पूछा : क्या सभी मनुष्य बूढ़े हो जाते हैं? सारथी ने कहा : निश्चित ही सभी मनुष्य बूढ़े हो जाते हैं। तो बुद्ध ने तीसरी बात कौन सी पूछी? बुद्ध ने पूछा : 'क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा?' यही वह प्रश्न है जो सोया हुआ व्यक्ति कभी भी नहीं पूछता है। सारथी ने कहा : प्रभु आप भी बुद्ध होंगे, होना ही पड़ेगा। वह जीवन की अपरिहार्यता है और कोई भी अपवाद नहीं है।

पता है बुद्ध ने क्या कहा? बुद्ध ने कहा, 'सारथी, रथ वापिस लौटा लो। मैं बूढ़ा हो गया। बुद्ध ने कहा : मैं बूढ़ा हो ही गया। अब युवक महोत्सव में जाने में क्या अर्थ? वहां तो सब युवा लोग इकट्ठे हुए होंगे और मैं तो बूढ़ा हो गया हूं। क्योंकि जो हो ही जाना है, वह हो ही रहा होगा। मैं बूढ़ा हो ही रहा हूंगा...तभी तो बूढ़ा हो जाऊंगा। कोई अचानक थोड़े ही बुढ़ापा आ जाएगा...रोज-रोज आ रहा होगा। तो मैं बू.ढा हो ही रहा हूं। थोड़े पल की बात है। थोड़ क्षण की, थोड़े दिन में दुनिया भी देख लेगी कि मैं बूढ़ा हो गया, लेकिन बूढ़े होने की प्रक्रिया तो मेरे भीतर चलती ही होगी। मैं बूढ़ा हो ही रहा हूं और हो ही गया हूं...मुझे वापिस लौटा लो। युवक-महोत्सव में जाना अब उचित नहीं है।

इस बूढ़े को बुद्ध ने जिस भांति देखा यह आंख खोलकर देखना है। जागरूक होकर देखना है। जिंदगी को जो भी जागकर देखेगा उसकी जिंदगी एक सतत क्रांति बन जाती है। उसे प्रतिपल नए-नए सत्यों का बोध होता है और वे सत्य उसे अपरिहार्य रूप से बदलते हैं। उस स्वयं को बदलना नहीं पड़ता है। बोध के साथ बदलाहट सहज ही आती है। वह तो जागृत बोध का सहज परिणाम ही है। लेकिन हम तो आंख बंद करके चले जाते हैं और देखते ही नहीं हैं कि बाहर क्या है भीतर क्या है? पत्ते वृ

क्षों से गिर रहे हैं, जवान आदमी बूढ़ा हो रहा है बूढ़ा आदमी मर रहा है। चारों तर
फ मौत सब तरफ मौत घेर चली जाती है और फिर भी हम जिए चले जाते हैं। ब
ल्कि अगर कोई आपको पकड़ कर दिखाए कि देखो यह मौत है तो आप कहेंगे ऐसी
अपशकुन की बातें न करें। रहने दें। होगी। मुझे क्या लेना देना? मैं तो जिंदा हूं। ऐ
से हम आंखें चुराते हैं। और स्मरण रहे कि जो आदमी मौत से आंखें चुराता है वह
आदमी जिंदगी को कभी न देख सकेगा। क्योंकि जिसमें मौत देखने का साहस नहीं
है, वह जिंदगी को भी नहीं देख सकेगा। जिंदगी और मौत एक ही सिक्के के दो पह
लू हैं। तो जिंदगी को जागकर देखना जरूरी है उसकी समग्रता में उसकी कुरूपता उ
सका सौंदर्य उसके गड्ढे, उसकी बुराइयां उसका अंधकार,उसका प्रकाश सब देखना ज
रूरी है। और इसलिए बहुत सतेज खुली हुई आंखें चाहिए। सोई हुई आंखें नहीं। अल
सायी हुई आंखें नहीं। सपने देखती आंखें नहीं। मूर्च्छित और बेहोश आखें नहीं। जागृ
त, अमूर्च्छित, स्वप्नशून्य आंखें ही केवल जीवन-सत्य का दर्शन कर पाती हैं। जीवन-
सत्य के दर्शन के लिए मूर्च्छा को मूल्य की भांति देना पड़ता है। निंद्रा का, तंद्रा का,
प्रमाद का त्याग करना पड़ता है।

मैंने सुना है एक फकीर के बावत। वह राजस्थान के गांव में गया था। जैसे मैं यहां
बोल रहा हूं, ऐसे ही उस रात वह वहां बोलता था। जैसे आप यहां इकट्ठे हो गए हैं,
उस गांव के लोग भी वहां इकट्ठे हो गए थे। सामने ही एक आदमी बैठा था और
सोया हुआ था। सामने जो लोग आकर बैठते हैं, अक्सर सो जाते हैं। कुछ कारण ह
ोता है। असल में सामने बैठने का जो मोह है वह सोए हुए आदमी का ही लक्षण है।
वह गांव का सबसे बड़ा धनपति था, जो सामने बैठा था। और भी संन्यासी गांव में
आए थे। लेकिन सब संन्यासियों ने देखा था कि वह आदमी सोता है लेकिन कौन सं
न्यासी धनपति को कहे कि तुम सोते हो। क्योंकि सारा संन्यास, सारा धर्म, सारे मंदि
र उसी धनपति से तो चलते हैं। उसे कौन नाराज करे। तो धनपति ने आंखें बंद कर
के बैठा रहता था। वह पूरे समय सोता ही रहता था, रात तो उसे नींद आती ही न
हीं थी। किस धनपति को आती है? और जिन्हें भी अनिद्रा की बीमारी है, वे इसीलि
ए धर्मस्थानों में धर्मसभाओं में जरूर ही आते हैं। धर्मकथाएं नींद की दवा का काम
करती हैं। ऐसे ही अबुद्धिपूर्ण बातें सुनते-सुनते बुद्धि सो जाती हो तो आश्चर्य नहीं है
। सो चाह धनपति भी सोता था। लेकिन वह फकीर यह बर्दाश्त न कर सका। फकी
र निद्रा बर्दाश्त करते ही नहीं। वे तो मूर्च्छा के शत्रु लेकिन दूसरे संन्यासी उससे यही
कहते थे कि आप उसका नाम था आसोजी...आसोजी आप बहुत ध्यानमग्न होकर
श्रवण करते हैं। ओसोजी आप ही सच्चे श्रावक हैं, सच्चे श्रोता हैं। आसोजी इससे ब.
डे प्रसन्न होते थे। हालांकि वे सोते थे लेकिन संन्यासी उन्हें यही कहते थे कि आप ब.
डे ध्यानमग्न होकर सुनते हैं, सो वे बड़े प्रसन्न होते थे। हालांकि वे सोते थे लेकिन सं
न्यासी उन्हें यही कहते थे कि आप बड़े ध्यानमग्न होकर सुनते हैं, सो वे बड़े प्रसन्न
होते थे। इस बात को सुनकर कोई भी प्रसन्न होता है कि आप बड़े ध्यानमग्न हैं औ
र यह सुनकर नाराज होता है कि आप सो रहे हैं। हालांकि जितने लोग आपको ध्या

नमग्न दिखाई पड़ते हैं उनमें सौ में से निन्यानबे सोए हुए रहते हैं। लेकिन यह फकी र बहुत गड़बड़ था। उसने बीच में ही भाषण बंद कर दिया और जोर से कहा : 'आ सोजी, सोते हैं।
आसोजी को तो गुस्सा आ गया था। सोए आदमी को गुस्सा आने में देर ही क्या लग ती है? उन्होंने कहा, कौन कहता है कि मैं सोता हूं? स्वामी जी, मैं तो आंख बंद करके, ध्यान मग्न होकर आपकी बातें सुन रहा हूं। अब जब कोई व्यक्ति खुद ही अपने को धोखा देना चाहे तो कोई क्या करे? फिर उस फकीर ने बोलना शुरू कर ि दया। थोड़ी देर बात चली होगी कि आसोजी को नींद लग गई। वह तो उनका बड़ा पुराना अभ्यास था। फिर उन्हें मंदिर के अतिरिक्त और कहीं नींद आती भी नहीं थ ी। लेकिन वह फकीर तो अजीब ही था...उसने उन्हें फिर टोक दिया। अबकी बार औ र जोर से कहा : आसोजी, सोते हो?'
आसोजी तो बहुत क्रोध से भर गए, क्योंकि वहां सारा गांव इकट्ठा था और सारा गां व सुन रहा था। और संन्यासी तो कहते थे आप बड़े ध्यान मग्न होकर सुन रहे हो तो सारा गांव सुनता था, प्रसन्न होता था कि आसोजी बड़े धार्मिक हैं। अब यह सारा गांव सुन रहा है और यह संन्यासी फिर दोबारा बोल रहा है। तो आसोजी ने कहा : सुनते नहीं हो तुम? तुम? मैंने कहा : मैं ध्यान मग्न हो के सुन रहा हूं...मैं सोया न हीं हूं। इस बार आसोजी ने उस फकीर को 'आप' और 'स्वामी जी' कहने की जरूर त नहीं समझी। हमारा सारा आदर और सम्मान ऐसा ही है। वह क्षण में विलीन हो जाता है, क्योंकि वस्तुतः वह होता ही नहीं है। वह सब ही हमारा स्वार्थ ही है।
फिर उस फकीर ने बोलना शुरू किया। थोड़ी देर बाद आसोजी फिर सो गए। सोए हु ए आदमी की बात का कोई भरोसा थोड़े ही है। लेकिन फिर उस संन्यासी ने उन्हें ट ोका। वह निहित लोगों का पीछा छोड़ने वाले व्यक्तियों में नहीं था। और न ही उसे आदर की चिंता थी, न सम्मान की। जिसे वैसी चिंता हो, वह संन्यासी ही नहीं है। लेकिन अबकी बार बड़ी अजीब बात कही। हर बार कहता था : आसोजी सोते हो? इस बार उसने कहा : आसोजी जीते हो? नींद में आसोजी ने समझा कि वही पुराना प्रश्न है। वह बोला : नहीं। नहीं! कौन कहता है? उस फकीर ने कहा। आसोजी अ ब तो आप फंस गए अब तो बचना बहुत मुश्किल है। अब तो आप पकड़ में आ ही गए हैं। वैसे आपने गलती से एक सच्ची बात ही कह दी है। जो सोता है वह जीता भी नहीं है। जीने के लिए तो जागना अत्यंत जरूरी है। जीवन जागने का ही तीव्रतम रूप है। मृत्यु निद्रा की ही प्रगाढ़ता है।
क्या अपने कभी भी ऐसा अनुभव होता है कि कभी हमारा जागरण थोड़ा तेज होता है और कभी कम? चेतना बहुत सी सीढ़ियों, ग्रेडस में, बहुत से क्रमों डिग्रीस में जा गती सोती रहती है। क्या कभी आपको ऐसा नहीं लगता है कि हम जागे हुए हैं? ि कसी खतरे डेंजर में? किसी निर्जन एकांत में? प्रेम के किसी क्षण में? शांति की कि सी दशा में? स्वास्थ्य की किसी तीव्र स्थिति में? और ऐसे ही निद्रा के, मूर्च्छा के भी अनुभव होते हैं। यह आध्यात्मिक निद्रा ही सत्य और स्वयं के बीच में दीवा बन जा

ती है। जागरण से...जागृति अवेयरनेस से मूर्च्छा के तिमिरावरण को छिन्न-भिन्न करन ा है। साधना का इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ नहीं है।

असुरक्षा इनसिक्योरिटी की तीव्र भावदशा में या खतरे की स्थिति में जो जागरण स्व यं में उपस्थित होता है...जो चेतना प्रतीत होती है वही जागरण और चेतना जब स हज और अज्ञात और अपरिचित लोक में प्रवेश का अधिकारी हो जाता है। वह लोक ही क्राइस्ट का, प्रभु का राज्य किंगडम ऑफ गॉड है।

एक वृद्ध गुरु था। वह जागरुकता की शिक्षा देता था। एक युवक को वह आंतरिक ि नद्रा स्लीपीनेस और जागरुकता अवेयरनेस को भेद समझा रहा था। उसने उस युवक को उस देश में होने वाले ऊंचे से ऊंचे वृक्ष पर चढ़ने की आज्ञा दी। वह युवक वृक्षों पर चढ़ना तो जानता नहीं था। वृद्ध वृक्ष के नीचे बैठ गया और वह युवक अत्यंत होश से वृक्ष के ऊपर चढ़ने लगा। अंततः वह आकाश छूते वृक्ष की अंतिम ऊंचाई प र भी पहुंच गया और फिर उसने नीचे उतरना शुरू किया। लेकिन वह वृक्ष के नीचे बैठा था सो चुप ही बैठा रहा। लेकिन जब वह युवक जमीन से कोई पंद्रह फीट की दूरी पर ही रह गया था तब वह बूढ़ा अचानक उठा और बोला : बेटे, संभल के उत रना, संभल के! वह युवक तो बहुत हैरान हुआ। जब वह दरख्त की ऊपर की चोटी पर था तब तो इस पागल नहीं कहा कि संभल के चढ़ना, संभल के। और अब जब वह वापिस ही लौट आया था और जमीन पास आ गयी और खतरा गुजर चुका था तब वह चिल्लाकर कह रहा है संभल के उतरना संभल के। वह नीचे उतर आया और उसने कहा : मैं हैरान हूं आप बड़े अजीब व्यक्ति मालूम पड़ते हैं। जब मैं खतरे में था, तब तो आपने जरा भी सावधान नहीं किया। तब तो आप चुपचाप आंखें बं द किए बैठे रहे। और जब मैं खतरे के बाहर हो गया तब आपको मुझे सावधान कर ने का ख्याल आया। यह क्या पहेली है? मैं तो कुछ समझ ही नहीं पा रहा हूं।

वह बूढ़ा यह सुन खूब हंसने लगा और बोला : बेटे, जब कोई खतरे में होता है, तब वह स्वयं ही सावधान और जागरुक होता है तब तो वह खुद ही जागा हुआ होता है। उस वक्त उसे चेताने की कोई जरूरत नहीं है। असली खतरा तो वहीं से शुरू हो ता है जहां आदमी खतरे से बाहर होता है। क्योंकि वही से उसके भीतर निद्रा का असावधानी प्रविष्ट हो जाती है। वहीं से वह होश माइंडफुलनेस खो देता है। इसलिए जैसे ही मुझे लगेगा कि तुम जमीन को करीब समझ रहे हो और तुम्हारा चित्त निद्र ा में प्रवेश कर रहा है, वैसे ही मैं तुम्हें जगाने को चिल्लाया था। मैं बूढ़ा हो गया हूं, लेकिन मैंने खतरे की चोटियों से कभी किसी को गिरते नहीं देखा है गिरते तो मैंने लोगों को वहीं देखा है जहां कि कोई खतरा ही नहीं था। और तुम इसे पहेली कह ते हो? नहीं बेटे, नहीं यही जिंदगी है।

जिंदगी के कुछ क्षणों में, बहुत खतरे के क्षणों में ही हम साधारणतः जागे हुए होते हैं। बाकी समय तो हम सोए ही रहते हैं और साधक वही है जो कि सदा जागकर जीता है। हम तो जागे हुए भी सोते हैं और साधक सोया हुआ भी जागता है। लेकि न यह जागकर जीना कैसे हो? कैसे हम जागकर जिएं? इस जागरण के बिना तो स

त्य नहीं मिल सकता है। सोयी हुई चेतना को अनुभव ही क्या हो सकता है? उसे द
र्शन ही क्या हो सकता है? जागे हुए व्यक्ति को ही मैं धार्मिक व्यक्ति कहता हूं औ
र धार्मिक व्यक्ति वही है जो खतरों में जीता है। जो असुरक्षा में जीता है, जो क्षण
क्षण जीता है, जो आज जीता है, जो अभी और यहां हियर एंड नाऊ जीता है, क्यों
कि ऐसा जीना अनिवार्यतः जागकर जीना बन जाता है।
एक संन्यासी मरण शैया पर था। किसी ने उससे पूछा : जीवन की खोज का मार्ग क
या है? वह बोला : खतरे में जिओ लिव इन डेंजर, असुरक्षा में जिओ लिव इन इनि
सक्योरिटी और वह मुस्कराता रहा और उसकी मृत्यु आ गई। उसने मृत्यु को भी ि
जया, क्योंकि वह तो असुरक्षा को ही जीवन जानता था और मृत्यु से बड़ी असुरक्षा
ही क्या है? ऐसे वह मृत्यु को भी जी सका और हम जीवन को भी नहीं जी पाते हैं
। उसने मृत्यु को भी जीवन बना लिया और हम जीवन को भी मृत्यु बना लेते हैं।
असुरक्षा में जो जीता है, उसके लिए वस्तुतः कोई मूल्य नहीं है और जो सुरक्षा में
जीना चाहता है, वह अपने ही हाथों अपनी ही मृत्यु बन जाता है। और ऐसा क्यों है
? ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि जो खतरे में ही जीवन देखता है उसके लिए कोई
खतरा,खतरा नहीं रह जाता है और जो असुरक्षा के मार्ग पर ही चलता है उसके ि
लए कोई असुरक्षा नहीं रह जाती है। खतरे में जीने वाले के लिए कोई भय फियर
नहीं है। वह तो अभय फियरलैस है। भय है खतरे से बचने वाले के लिए। और जहां
भय है वहां जीवन कहां। वहां है मृत्यु और मृत्यु की छाया। फिर असुरक्षा ही जिस
का पथ है, वह तो सदा सुरक्षित ही है, क्योंकि उसे सुरक्षा के खो जाने या टूट जाने
की कोई आशंका ही नहीं है। वह निशंक जी पाता है। वस्तुतः तो वही जीता है, क
योंकि आशंका में जीना तो सदा मृत्यु ही होना है। लेकिन हम सब तो खतरे से बच
कर जीते हैं। सब तरफ से सुरक्षा कर लेते हैं। सब तरफ से बैंक बेलेंस कर लेते हैं।
सब तरफ से व्यवस्था कर लेते हैं। सब तरफ से मजबूत दीवारें बना लेते हैं। सब इं
तजाम कर लेते हैं। कहीं से कोई खतरा नहीं रहने देते हैं। तो फिर हम सो जाते हैं।
फिर हम सोए जीने लगते हैं।
संन्यासी वह है, धार्मिक वह है, जो खतरे में जीता है।आह! इसीलिए तो उसे अगृही
कहा है अपरिग्रही कहा है
एक राजा ने एक महल बनवाया था। और उसमें एक ही दरवाजा रखा था, जिससे
कि कोई असुरक्षा न रहे, कोई खतरा न रहे, कोई भय न रहे। पूरे भवन में बस ए
क ही दरवाजा। विशाल भवन और एक ही दरवाजा ऐसे उसने अपनी सारी सुरक्षा
कर ली थी। उस भवन में न खिड़कियां थीं, न आकाश को झांकने के लिए झरोखे
थे। वहां न सूरज आ सकता था, न आकाश, न पवन। पड़ोस का दूसरा राजा उसके
इस अदभुत निवास की खबर सुनकर देखने आया। राजा ने अपना महल उसे दिख
लाया। पड़ोस का राजा भी बहुत प्रभावित हुआ। उसने भी सोचा कि उसे भी ऐसा ह
ी महल बनाना चाहिए। और उसने कहा : बड़ा सुरक्षित महल आपने बनवाया है, इ
समें खतरे की गुंजाइश नहीं। चोर नहीं आ सकता, शत्रु नहीं आ सकता। और दूसरे

लोग भी साथ में महल देखने इकट्ठे हो गए थे एक बूढ़ा आदमी भी सामने ही खड़ा था। जब पड़ोसी राजा प्रशंसा कर रहा था उस महल की तब वह बूढ़ा आदमी जो कि अत्यंत दीन और दरिद्र था, जो कि एक भिखारी मालूम होता था, वह हंसने ल गा। उस भवन के मालिक ने पूछा क्यों हंसते हो? कोई भूल रह गई है? वह बूढ़ा ब ोला : हां, सिर्फ एक भूल रह गई है। एक दरवाजा भी रखा यही बस एक गलती है। और सब तो ठीक है। इसे भी बंद कर दो। क्योंकि इस दरवाजे से आपकी मौत भी तर घुस सकती है। इसको भी बंद कर दो। और आप भीतर हो जाओ। फिर आप ि बलकुल सुरक्षित हो जावेंगे। फिर आप मर नहीं सकते हैं। क्योंकि मौत को जाने आ ने का फिर रास्ता नहीं रह जाता है।

राजा को उसकी बात जंची। आपको भी जंचेगी। बात ठीक भी थी। जीवन में एक द्व ार का होना भी तो असुरक्षा ही है। वह द्वार भी बंद हो तो सुरक्षा पूरी हो जाती है । लेकिन, तब जीवन भी नहीं रह जाएगा। क्योंकि जीवन के आने जाने का द्वार औ र मार्ग भी वही है जो कि मृत्यु के आने-जाने का द्वार और मार्ग है। जीवन और मृत यु दो नहीं हैं । वे तो रात्रि और दिवस की भांति संयुक्त हैं वे बाहर जाती और भी तर आती श्वासों की भांति एक हैं। और जो इस सत्य को जान लेता है, वह उसे उ पलब्ध हो जाता है जो कि अमृत है। जीवन और मृत्यु उस अमृत के दो पहलू हैं। वे उसकी दो अवस्थाएं हैं। वे उसकी ही दो अभिव्यक्तियां हैं। वह एक ही उन दो से प्रकट होता और अप्रकट होता है।

जीवन ही एक खतरा है। मृत्यु नहीं, जीवन ही खतरा है। मृत्यु तो विश्राम है लेकिन जीवन निरंतर अज्ञात से अज्ञात में गति है। जीवन तो बिलकुल वैसे ही है जैसे पत्ते पर ओस की एक बूंद हवा में कंपती है। किसी भी क्षण गिर सकती है। जीवन तो वैसे ही है जैसे कि ओस की एक बूंद घास के तिनके पर पड़ी हो और किसी भी क्ष ण सूरज निकलेगा और वह वाष्पीभूत हो अज्ञात में उड़ जाएगी। जिंदगी तो एक कं पन है। और उसे जो ठोस बना लेते हैं—अपने ही हाथों से और फिर उस कब्र में ही सो जाते हैं। और इसे ही जीवन समझते रहते हैं। जीवन ठहराव नहीं है...जीवन तो तरल प्रवाह है। और जो उसे ठोस बना लेते हैं, वे आत्महन्ता हैं। शरीर का अंत क र देने वाले लोग तो सिर्फ शरीर हन्ता हैं, लेकिन वास्तविक आत्महत्या स्वीसाइड क र लेने वाले लोग तो वे ही हैं जो कि जीवन को सुरक्षा के ठोस सांचों में ढालने में संलग्न होते हैं।

धार्मिक व्यक्ति, धार्मिक चित्त रिलीजियस माइंड तो वह है जो जीवन को उसकी अ सुरक्षा में, उसके पूरे खतरों में स्वीकारता और जीता है। जो भी जीवन के प्रति सज ग होगा, वह जानेगा ही कि जीवन तो एक खतरा ही है। जीवन खतरे में हैं, ऐसा नहीं, बल्कि जीवन ही खतरा है। जीना ही एक खतरा है। मरना एक सुरक्षा है। औ र शायद इसीलिए सुरक्षा के लोलुप मोक्ष की तलाश करते हैं, क्योंकि मोक्ष उन्हें पूर्ण सुरक्षित ज्ञात होता है, क्योंकि वह पूर्ण मृत्यु है। वे खतरों के कारण जीवन से ही छुटकारा पाने को आतुर हो जाते हैं। सुरक्षा के लिए वे जीवन से ही छूट जाना चाह

ते हैं। वे जीवन से ही पलायन कर जाना चाहते हैं। लेकिन बेचारे! शायद उन्हें ज्ञात नहीं है कि मुक्ति जीवन से पलायन में नहीं, जीवन को उसकी पूर्णता और समग्रता से जी लेने का ही नाम है। और मोक्ष मृत्यु नहीं, पूर्णतम जीवन है।

जिंदगी तो असुरक्षा बस रूपों में। जिसे मैंने आज प्रेम किया है, कोई भरोसा है कि कल वह मुझे प्रेम देगा? जिसे मैंने आज मित्र कहा है, कोई भरोसा है कि कल सुबह भी वह मेरा मित्र रहेगा? जिसे मैंने अपना जाना है, भरोसा है कि वह कल दुनिया से विदा नहीं लेगा? सब असुरक्षित है। जिंदगी में कुछ भी सुरक्षित नहीं है। जिंदगी जितनी तीव्र होगी उतना ही सब कुछ असुरक्षित मालूम होगा। इस असुरक्षा में ही जो जीता है और सुरक्षा के झूठे इंतजाम नहीं करता, वही धार्मिक व्यक्ति है और स्मरण रहे कि सुरक्षा के सब इंतजाम झूठे हैं। क्योंकि आज तक कोई कहीं सुरक्षित हो पाया है?

ईश्वर में, मोक्ष में, पुण्य में, संन्यास में कहीं भी सुरक्षा न खोजें ऐसी कोई सुरक्षा है ही नहीं। आत्यंतिक सुरक्षा नहीं है। असुरक्षा ही नियम है। और वही जीवन है। सुरक्षा के सांसारिक इंतजाम ही झूठे नहीं सिद्ध होते हैं, सांसारिक इंतजाम तो सुरक्षा का थोड़ा भ्रम दे भी सकते हैं, क्योंकि वे जीवन के शाश्वत नियम नहीं, केवल समाज निर्मित सुविधाएं हैं मनुष्य सृष्ट नियम हैं। लेकिन जीवन की आत्यंतिकता में सुरक्षा असंभव ही है। वह जो जड़ता का ही दूसरा नाम है। सुरक्षा के सब आयोजनों के झूठेपन को देखें उनकी असत्यता और भ्रामकता देखें और फिर जिएं सुरक्षा के भाव से मुक्त और असुरक्षा में जीएं। और ऐसे जीने के साथ ही जागरण जन्मता है। चेतना का वह आयाम, डाइमेंशन ही हमें अज्ञात है। वह बोध वह होश ही हमें अपरिचित है और फिर प्रकाश में जीना, वह आनंद ही हमें नहीं है। नहीं हमें वह कुछ भी ज्ञात नहीं है। और बिना स्वयं उस भांति जिए उसे जानने का और कोई भी मार्ग नहीं है।

निद्रा का जीवन सदा बाहर की उत्तेजनाओं पर पलता है। ऐसे जीवन में आंतरिक कुछ भी नहीं है। क्योंकि भीतर से कुछ आता ही नहीं है जो भी आता है वह बाहर से ही, बाहर के कारण और बाहर के दबाव से आता है। स्वयं और सहज तो निद्रा में कोई झरना फूटता ही नहीं कोई दीया जलता ही नहीं है कोई फूल खिलता ही नहीं है। यदि एक युवक किसी युवती को प्रेम करे तो जिसे वह प्रेम करता है, उसके प्रति जागा हुआ रहता है। लेकिन कल वह उससे शादी कर लेता है और वह उसकी पत्नी बन जाती है फिर वह उसे प्रति बिलकुल सो जाता है। फिर उसे देखता भी नहीं। याद करें? आपने अपनी पत्नी को कभी देखा है आंख भरके? नहीं। फिर तो नींद हो जाती है। फिर तो सब ठीक है, सब सुरक्षित हो गयी सब बात। जब तक वह प्रेयसी थी, तब तक असुरक्षा थी, इसलिए बाह्य प्रेरित थोड़ी सी जागरूकता थी। वह मिल भी सकती थी और खो सकती थी, इसलिए थोड़ा खतरा था। इसके कारण ही थोड़ा सा होश था। और जैसे ही वह मिल गई वैसे ही वह होश चला गया। प्रेयसी असुरक्षा थी पत्नी तो सुरक्षा है। उसके प्रति जागने की जरूरत ही क्या है और उस

होश के कारण ही थोड़ा सा आनंद भी था। इसलिए प्रेयसी तो आनंद थी, लेकिन प त्नी सिर्फ एक बोझ है।

कवि बायरन ने शादी की थी। और वह अपनी नवविवाहिता पत्नी का हाथ पकड़ के चर्च के बाहर निकल रहा था। अभी ही उनकी शादी हुई थी। विवाहोत्सव के लिए जलायी गई चर्च की मोमबत्तियां अभी जल रही थीं और घंटियां बज रही थीं। अभ ी मेहमान निकल ही रहे थे द्वार से। और वह अपनी पत्नी का हाथ पकड़कर द्वार से बाहर निकल रहा था। और फिर जैसे वह अपने पर ही हंसने लगा और अपनी पत नी से बोला कि एक बड़ी अनहोनी बात का मुझे अनुभव हुआ है। एक क्षण पहले त क, जब तू मेरी नहीं थी, मैं तेरे प्रति बहुत जागा हुआ था। और अभी जैसे ही मैं चर्च की सीढ़ियां उतर रहा था और तेरा हाथ मेरे हाथ में था, लेकिन एक क्षण को मुझे ख्याल ही नहीं रहा कि तू साथ में भी है। मुझे एक दूसरी स्त्री ही दिखाई पड़ गयी जो रास्ते पर जा रही थी। और मेरा मन उसके प्रति आकर्षण से भर गया था। मैं उसके प्रति जागा हुआ था, लेकिन तेरे प्रति सो गया था।

ऐसा ही होता है। हम सबके जीवन में भी ऐसा ही होता है। जो अनुपलब्ध है उसका बोध है, लेकिन उसके उपलब्ध होते ही वह भूल जाता है। अभाव का स्मरण होता है। प्राप्ति विस्मरण बन जाती है। अभाव असुरक्षा है, अभाव चुनौती चेलेंज है, फलत : उसका बोध है। अनुपलब्धि पीड़ा है अनुपलब्धि वेदना है, फलतः उसकी स्मृति है। शायद इसलिए वेदना के दोनों ही अर्थ हैं वेदना का अर्थ पीड़ा भी है, वेदना का अर्थ ज्ञान भी है। असुरक्षा जगाए रखती है। सुरक्षा सुला देती है। सुरक्षा अफीम है। धर्म भी सुरक्षा लाए तो अफीम है। क्योंकि जागरण है असुरक्षा में। और सुरक्षा के अति मोह में हमने जीवन को चहूं ओर से जड़ कर लिया है। और इस जड़ता के बीच ह म निश्चिन्तता से सो गए हैं। और करीब-करीब मर गए हैं। शायद, मृत्यु की कामन ा डेथ इन्सटिक्ट हमारे भीतर प्रबल है। वही हमारी सुरक्षा की दौड़ बन जाती है। अ सुरक्षा की कामना जीवन के आनंद और मोह से पैदा नहीं होती है। जीवन का आनं द और मोह जीवन की अभीप्सा तो व्यक्ति को निरंतर खतरों की खोज में ले जाती है। क्योंकि जीवन का फूल खतरों की घाटियों में ही पूर्णतया खिलता और सुवासित होता है। सुरक्षा के बंद घरों में केवल कागज के फूल मरे हुए फूल ही जी सकते हैं । जीवन के फूलों के लिए तो जलती धूप चाहिए, जड़ों को हिलाती अनंत और असी म वर्षा चाहिए। अनंत और असीम खुला आकाश चाहिए। प्राणों को झकझोरती हवा एं चाहिए। तभी और केवल तभी जो बीजों में छिपा है वह फूलों में प्रकट हो पाता है। इसलिए मैं सुरक्षा की खोज में जीवेषणा नहीं मरणाकांक्षा ही देखता हूं। जो देश जो जातियां सुरक्षा की मोही हो जाती हैं, वे बहुत शीघ्र ही शमशान पहुंच जाती हों तो इसमें आश्चर्य नहीं है। सुरक्षा के मोह का वही फल हो सकता है, क्योंकि सुरक्ष ा के मोह का आदिबीज भी वही है।

जीवन के लिए जीवंतता के लिए सुरक्षा नहीं चाहिए, असुरक्षा का आनंद चाहिए, ख तरे में जीने का संगीत चाहिए, अलंध्य सागरों का बुलावा चाहिए, अविजेय पर्वत-शि

खरों की पुकार चाहिए, और चाहिए अज्ञात और अज्ञेय का आमंत्रण। और असुरक्षा की कल्पना नहीं करनी है, क्योंकि जीवन असुरक्षा ही है। कल्पना तो सुरक्षा है असत य तो सुरक्षा है। असुरक्षा तो वास्तविकता है। असुरक्षा तो सत्य है। सुरक्षा के असत्य को देखें और असुरक्षा की पुलक जीवन को अपने आप ही संजीवन रसों से नहला जाती है। ऐसा मैंने जाना और जिया है, इसलिए कहता हूं। आप भी खोजें अपनी सु रक्षा के कागजी महलों में तलाशें क्या सुरक्षा कहीं भी है? या कि असुरक्षा से पलाय न के लिए हमने सुरक्षा के सपने ईजाद कर लिए हैं? खोजें और खोजें निर्ममता से खोजें। और फिर पाएंगे के खोजते ही सुरक्षा खो जाती है। शायद इसी डर से हम ख ोजते ही नहीं हैं। क्योंकि खोजते ही दिखाई पड़ता है कि कुछ भी सुरक्षित नहीं है अ ौर जीवन एक सतत खतरा है। किन्तु जो इस इस खतरे को अनुभव करता है, वह जागना शुरू हो जाता है। और आश्चर्यों का आश्चर्य यह है कि जो जागृत है, उसके लिए न कोई खतरा है, न कोई अमृत है, जो कि प्रभु है।

सत्य की खोज के लिए ये तीन सूत्र मैंने आपसे कहे :

कि विचार का जन्म होना चाहिए।

कि निष्पक्षता में प्रतिष्ठा होना चाहिए।

कि जागरूक चेतना होना चाहिए।

ये तीन सूत्र जिसके जीवन में फलित होते हैं, उसके जीवन में सत्य के आगमन का मार्ग बन जाता है। एक छोटी सी कहानी और फिर मैं आपकी विदा दूंगा। एक फ कीर अपने देश वापिस लौटा था। वह सारी पृथ्वी की परिक्रमा कर आया था। उस दे श के राजा का वह बचपन का मित्र था। राजा ने उसे आमंत्रित किया और उसका स्वागत किया। और स्वागत के बाद उसने कहा :मेरे मित्र तुम जमीन घूमकर आए ह ो, कुछ मेरे लिए भेंट भी लाए हो या नहीं? मैं बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहा हूं ि क तुम लौटोगे तो मेरे लिए जरूर ही कुछ अमूल्य लाओगे। उस फकीर ने कहा : मैं जमीन के कोने-कोने को छान आया हूं और मैंने अनूठी चीज देखीं और दिल हमेशा हुआ कि तुम्हारे लिए कुछ भेंट ले चलूं, क्योंकि लौटते ही तुम जरूर पूछोगे कि मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हूं? लेकिन जो चीजें भी लेनी चाहीं उसे लाने में यही ख्याल सदा बाधा बन गया कि तुम तो इतने बड़े सम्राट हो और कैसे हो सकता है कि य ह चीज अब तक तुम्हारे पास न पहुंच गयी हो? और मैं तो ऐसी ही भेंट लाना चा हता था, जो तुम्हारे पास न हो। अंततः वैसी चीज मुझे मिल गयी और मैं उसे ले आया हूं।

यह सुनते ही राजा को आतुर उत्सुकता से भर गया और पूछने लगा : वह कहां है? फकीर के पास तो एक फटी सी झोली के अतिरिक्त और कुछ भी दिखायी नहीं प. डता था। फकीर ने झोली राजा के हाथ में दे दी। राजा ने उसमें हाथ डाला और च कित हो गया। उसमें तो एक बहुत सस्ती सी चीज निकली। क्या यही अनूठी चीज उसका मित्र उसे भेंट करने लाया है। उस झोली में से जो निकला तीन पैसे का दर्प ण था। वह फकीर राजा को हैरान देख खूब हंसने लगा और बोला था मैंने सोचा तु

म्हारे पास और तो सब कुछ होगा लेकिन ऐसी चीज न होगी जिसमें तुम स्वयं को दे
ख सको। इसलिए मैं यह दर्पण ले आया हूं।
मैं नहीं जानता कि वह दर्पण कैसा था और राजा उसमें स्वयं को देख सका या नहीं।
लेकिन मैं भी तन पैसे का तो नहीं, तीन सूत्रों को यह दर्पण आपके लिए लाया हूं।
यह दर्पण ऐसा नहीं है कि मैं आपको दे दूं? हां आप उसे स्वयं ही लेना चाहें तो
जरूर ले सकते हैं। जिसको वह दर्पण उपलब्ध हो जाता है, वह निश्चय ही स्वयं को
और स्वयं के द्वार से सर्व को जानने में समर्थ हो जाता है।

सरलता है सत्य का द्वार

चित्त स्वतंत्र हो, कोई मानसिक दासता और गुलामी न हो, कोई बंधे हुए रास्ते, बंधे
हुए विचार और चित्त के ऊपर किसी भांति की जकड़न न हो। यह पहली शर्त मैंने
कही है, सत्य और जिसे खोजना हो उसके लिए।
निश्चित ही जो स्वतंत्र नहीं है, वह सत्य को नहीं पा सकेगा। और प्रथम परतंत्रता
हमारी बहुत गहरी है। मैं उस परतंत्रता की बातें नहीं कर रहा हूं जो राजनीति होत
ी है, सामाजिक होती है या आर्थिक होती है। मैं उस परतंत्रता की बात कर रहा हूं
, जो मानसिक होती है। और जो मानसिक रूप से परतंत्र है वह और चाहे कुछ भी
उपलब्ध कर ले जीवन में आनंद को, प्रकाश को, आलोक को अनुभव नहीं कर स
केगा। यह मैंने कल कहा। चित्त की स्वतंत्रता पहली भूमिका है। आज सुबह दूसरी भू
मिका पर आपसे कुछ विचार करूं। दूसरी भूमिका है चित्त की सरलता। पहली भूमि
का है चित्त की स्वतंत्रता, दूसरी भूमिका है चित्त की सरलता। जिनके चित्त जटिल
हैं, उलझे हुए हैं, बंधनग्रस्त हैं। बहुत विरोधाभासों से भरे हुए हैं, बहुत अराजक हैं।
चित्त की यह जटिलता ही बाधा है, क्योंकि जो भीतर उलझा है वह बाहर आंखें कै
से खोल सकेगा? जो अपने भीतर बहुत व्यस्त है और संघर्ष में है वह सत्य के प्रति
उन्मुख कैसे हो सकेगा। जो अपने से लड़ रहा है और अपने ही भीतर खंडित है वह
अखंड को कैसे जान सकेगा। हम सारे लोग खंडित हैं, अपने ही भीतर बहुत खंडों में
विभाजित हैं। और वे सब खंड भी एक दूसरे के विरोध में खड़े हैं।
वस्तुतः हर आदमी के भीतर बहुत से आदमी हैं। आप एक भीड़ हैं, आपे भीतर को
ई व्यक्ति नहीं है। आप कोई व्यक्ति नहीं हैं। आप कोई व्यक्ति इनडीवीडुअल नहीं हैं
, आपके भीतर तो एक भीड़ भरी हुई है। हम साधारणतः सोचते हैं कि एक ही चि
त्त हमारे पास है। लेकिन स्थिति उल्टी है। मनुष्य बहु-चित्तवान पोली फिसिक है। बहु
त से मन एक ही साथ हैं, आपके पास। जब आप क्रोध में होते हैं तब क्या आपके
पास वही चित्त है जब आप बाद में पश्चाताप करते हैं? पश्चाताप करने वाला चित्त
बिलकुल दूसरा है। क्रोध करने वाला चित्त बिलकुल दूसरा है। इसीलिए आप बार-ब
ार पश्चाताप करते हैं और फिर बार-बार क्रोध करते हैं। एक ही भूल आप हजार ब
ार करते हैं और भूल को करने के बाद पछताते हैं, दुखी होते हैं, निर्णय लेते हैं कि
अब यह भूल नहीं करूंगा। अगर आप एक ही आदमी होते, आपके भीतरी मन हो

ता तो निर्णय पूरा हो जाता, लेकिन आपके भीतर जो मन निर्णय करता है वह मन अलग है और मन क्रिया करता है, वह मन अलग है। इसलिए आपके निर्णय भिन्न रहते हैं। और जीवन जैसा था वैसा ही चलता रहता है। रात्रि आप तय करके सोते हैं कि सुबह चार बजे उठूंगा। सुबह चार बजे आपसे कहता है, पड़े रहो, क्या फायदा है? आप सो जाते हैं। सुबह उठकर पूछते हैं और कहते हैं कि यह कैसे हुआ। तय किया था कि उठूंगा फिर उठा नहीं। कल जरूर उठूंगा। कल आप फिर पाते हैं कि आपके भीतर कोई कह रहा है कि क्या फायदा उठने का। सर्दी बहुत है, सोए रहो। यह मन क्या वही है जिसने निर्णय किया था,या कि कोई दूसरा है। मन आपका बहुत खंडों में विभाजित है। उसमें बहुत टुकड़े-टुकड़े हैं। और इन टुकड़ों के कारण आपके भीतर जटिलता पैदा होती है। जिसका मन एक नहीं है वह जटिल होगा ही। और जटिलता अनंत गुना हो जाती है, क्योंकि एक मन दूसरे मन के विरोध में है। थोड़ा विचार करें, आपके अपने ही हाथ से विरोध खड़े कर लिए हैं। शिक्षा, संस्कार ने मन को खंड खंड कर दिया है, उसकी अखंडता इंटीग्रेशन नष्ट हो गई। आप कहते हैं कि आप एक आदमी हैं। क्योंकि आपका एक ही नाम है, एक ही लेबल है। सारे लोग जानते हैं कि आप एक ही आदमी हैं। अपने भीतर खोजें तो आपको बहुत आदमी वहां मिलेंगे। आपके विरोध में आपके भिन्न अनेक-अनेक आवाजें आपके भीतर सुनायी पड़ेंगी। क्या कभी आपने ख्याल किया है, कई बार आप कहते हैं कि मैंने अपने बावजूद ऐसा काम किया है इनस्पाइट आफ माइसेल्फ। एक आदमी किसी को क्रोध में मार देता है और बाद में कहता है कि मैंने अपने बावजूद मार दिया। यह कैसे पागलपन की बात है। अपने बावजूद कैसे मार सकते हैं, अगर आपके भीतर आपके विरोधी भी मौजूद न हों?आपने अनेक बार अनुभव किया होगा क्रोध जब मैंने किया तब मैं मौजूद ही नहीं था। आपने अनेक बार अनुभव किया होगा, जब मैं वासना से भर गया तो मैं नहीं था, न मालूम कौन हो गया। क्रोध में क्या आप वही होते हैं जो आप शांति में हैं। प्रेम में हैं? प्रेम में क्या आप वही होते हैं जो आप घृणा में हैं? नहीं, आप नहीं होते हैं। आपके चेहरे बदल जाते हैं। आपके भीतर बहुत सी भीड़ है मन की, बहुत से टुकड़े हैं। कोई एक टुकड़ा आपको पकड़ लेता है और आप एक काम कर जाते हैं। जैसे कि गाड़ी की धुरी पर गाड़ी का चाक घूमता है उसके आड़े स्पोक कभी कोई एक आड़ा ऊपर होता है, कभी कोई नीचे हो जाता है और आड़े बदलते रहते हैं। वैसे ही आपका चित्त है। उसमें बहुत चित्त हैं। कोई चित्त ऊपर होता है, कोई नीचे होता है और इससे जटिलता पैदा हो जाती है। सरल तो केवल वही हो सकता है जिसके पास एक मन हो। वह तो जटिल होगा ही जिसके पास अनेक मन हैं और यह अनेक मन भी ऐसे हैं जिनमें से एक दूसरे का किसी को पता ही नहीं। यह इसी बात से आपको पता चल जाएगा कि, आपके संकल्प सब अधूरे रह जाते हैं। क्योंकि जो मनसंकल्प करता है वह मन पूरा करते वक्त मौजूद ही नहीं होता। आपने कितनी बार तय नहीं किया है कि मैं सत्य बोलूं। समय आता है और आप पाते हैं कि आप असत्य बोल रहे हैं। कितनी बार तय किया है कि मैं सबको

प्रेम करूं और समय आता है तो आप पाते हैं कि आप घृणा कर रहे हैं। कितनी बार तय किया कि सब मेरे मित्र हों, लेकिन समय आता है और अनेक आपके शत्रु प्रतीत होते हैं। आप ही तय करते हैं आप ही निर्णय करते हैं फिर इसका विरोध कैसे उठ आता है? जो विरोध उठ आता है, वह आपके भीतर मौजूद है। जिनको आप श्रद्धा करते हैं, उनके ही प्रति आप मन में अपमान का भाव भी लिए होते हैं। जिनको आप सम्मान करते हैं उन्हीं को आप घृणा भी करते हैं। जिनका आप सम्मान करते हैं उन्हीं का अपमान करने की भी इच्छा मन में बनी रहती है। एक ही साथ आपके भीतर विरोध चलता रहता है । इसलिए आप प्रेमियों को निरंतर लड़ते देखेंगे। उन्हीं से प्रेम करते हैं, उन्हीं से लड़ते हैं, उन्हीं को घृणा भी करते हैं। मित्रों में भी आप देखेंगे, श्रद्धालुओं में भी आप देखेंगे। हमारे एक चित्त का हिस्सा जो करता है उसके ही विरोध में हमारे दूसरे हिस्से खड़े होते हैं, इसलिए प्रेम जरा सी, देर में घृणा में बदल जाता है।

मैं अभी वहां दिल्ली था। किसी ने मुझसे कहा कि जिसको हम प्रेम करते हैं उसको तो हम प्रेम ही करते हैं। यह आप कैसे कहते हैं कि विरोध भी उपस्थित रहता है? मैंने उनसे कहा कि समझ लें कि आप अपनी पत्नी को प्रेम करते हैं। अब केवल आपको पता चल जाए कि आपकी पत्नी किसी और को प्रेम करती है तो क्या होगा? उसी क्षण आपका प्रेम घृणा में बदल जाएगा, और प्रेम क्या कभी घृणा में बदल सकता है? यह तो असंभव है। असल में घृणा भीतर छिपी बैठी थी, ऊपर प्रेम था, पीछे घृणा थी। अगर प्रेम का अवसर निकल गया, प्रेम हट जाएगा, घृणा ऊपर आ जाएगी।

एक फकीर हुई राबिया नाम की स्त्री। वह एक अदभुत फकीर औरत हुई। उसने कुरान में पढ़ा, एक वचन आता है कि शैतान को घृणा करो। उसने उस वचन को काट दिया। फिर हसन नाम का एक दूसरा फकीर यात्रा पर निकला और उसी झोंपड़े में मेहमान हुआ। सुबह-सुबह उसने कहा कि मैं जरा कुरान पढ़ना चाहता हूं। कुरान पढने को दी गयी तो उसने देखा कि एक लकीर कटी हुई है।धर्मग्रंथ में संशोधन। पवित्र वचन में संशोधन। उसने कहा, किस पागल ने कुरान में संशोधन कर दिया। राबिया ने कहा, मुझे ही करना पड़ा।

तुमने यह कैसे किया? यह ग्रंथ तो अपवित्र हो गया।

राबिया ने कहा, मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ गयी हूं। इसमें लिखा है कि शैतान से घृणा करो। मैं अपने भीतर सब तरह से खोजती हूं, वहां कोई घृणा नहीं है। अगर शैतान मेरे सामने आएगा तो मैं घृणा कैसे करूंगी? आखिर घृणा करने के लिए घृणा मौजूद होनी चाहिए। नहीं तो घृणा आएगी कहां से। जिस कुएं में पानी नहीं है और उसमें बाल्टियां डालेंगे तो पानी पाएंगे कहां से? पानी होगा तो आएगा। उस राबिया ने कहा मेरे भीतर घृणा नहीं है, सिर्फ प्रेम है। परमात्मा हो या शैतान हो, दोनों मेरे सामने आकर खड़े हो जाएं तो मैं मजबूर हूं—मैं प्रेम ही करूंगी, दोनों को बराबर ही प्रेम कर सकूंगी। मेरे भीतर घृणा नहीं है मैंने बहुत खोता वहां कोई घृणा नहीं है

। लेकिन आप अपने मन के भीतर खोजें तो आपको घृणा मिल जाएगी वह प्रेम के पीछे ही खड़ी है,वह प्रेम की छाया की भांति ही खड़ी है। जिससे आपकी मित्रता है उसकी के प्रति आपके मन में शत्रुता का भाव भी खड़ा हुआ है। जिसको आप सम्मा न दे रहे हैं उसका ही अपमान करने का मन भी आपके पीछे खड़ा हुआ है। जिसकी आप प्रशंसा कर रहे हैं उसकी निंदा करने की वृति भी आपके पीछे खड़ी हुई है। ये दोनों विरोधी वृतियां साथ हों तो चित्त सरल कैसे हो सकता है? और जो चित्त स रल नहीं है वह कैसे सत्य जान सकेगा? सरलता तो अनिवार्य है। सरलता तो परमा त्मा को पाने की अनिवार्य शर्त है। यह जो हमारा चित्त जटिल है इसे समझ लेना ज रूरी है। चित्त की जटिलता को उसके खंड खंड होने, टुकड़े-टुकड़े में बंटे होने को औ र हमारे व्यक्तित्व के अनेक-अनेक विरोधी अंशों को समझ लेना जरूरी है। जो व्यकि त अपने भीतर अखंड नहीं हो सकता वह समझ ले उसकी कोई प्रार्थना, उसका कोई ध्यान, उसका कोई योग, उसकी कोई पूजा सार्थक हनीं है, सब व्यर्थ है। वह किसी मंदिर में जाए, किसी मस्जिद में जाए और किसी भगवान, को प्रणाम करे, उसका कोई अर्थ हनीं है। जब आप मंदिर की मूर्ति के सामने सिर झुका रहे हैं तब भी अप के भीतर अश्रद्धा मौजूद है श्रद्धा के साथ। आदर के साथ ही अनादर मौजूद है, विश वास के साथ ही संदेह मौजूद है।

मैं अपने गांव जाता हूं, तो वहां एक वृद्ध शिक्षक हैं, उनके यहां मैं हमेशा जाता था । एक बार मैं सात आठदिन गांव में रुका तो उनके घर गया। सुबह उठकर ही उन के घर गया। दूसरे दिन उन्होंने खबर भेजी कि में उनके घर न आऊं। मैंने उनके ल. डके से पूछा कि उन्होंने ऐसी खबर क्यों भेजी है। उसने कहा कि उन्होंने एक चिट्ठी दी है। उस चिट्ठी में लिखा था कि मेरे घर आते हो तो मुझे बहुत खुशी होती है, मे रे आनंद का ठिकाना नहीं रहता है, लेकिन मैं चाहता हूं कि मेरे घर मत आओ, मे रे आनंद का ठिकाना नहीं रहता है, लेकिन मैं चाहता हूं कि मेरे घर मत आओ क्य ोंकि कल मैं पूजा करने बैठा तो तुम्हारी बातों को यह परिणाम हुआ कि मुझे यह श क होने लगा कि पता नहीं यह सब मूर्खता तो नहीं है, यह जो मैं कह रहा हूं। यह सब आरती आदि बालपन तो नहीं है। और जो पत्थर की मूर्ति सामने रखी है, सच में वह पत्थर की तो नहीं है। और मैं तीस चालीस वर्षों से पूजा कर रहा हूं, वह मेरे मन में संदेह आ गया और मैं डर गया। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूं कि मेरे घ र दोबारा मत आना। मैंने उनको पत्र लिखा कि मैं अब आऊं या न आऊं जो होना था वह हो गया, और मैं आपसे यह भी प्रार्थना करता हूं कि संदेह करना मैंने पैदा नहीं किया है, वह निरंतर चालीस वर्ष आपके पूजा के पीछे खड़ा ही रहा है। श्रद्धा करने से कहीं संदेह नष्ट हुआ है? श्रद्धा ऊपर से थोप लेंगे, संदेह भीतर छाया रहेगा । प्रेम करने से कहीं घृणा नष्ट हुई है? प्रेम ऊपर से दिखायी पड़ेगा फिर घृणा मौजू द रहेगी आदर देने में कहीं अनादर का भाव नष्ट हुआ है। आदर ऊपर से थोप लेंगे , भीतर अनादर बना रहेगा और आप जटिल होते चले जाएंगे। इसलिए मैं उस श्रद्ध ा को कहता हूं कि छोड़ दें, जिसके पीछे एक संदेह मौजूद है। जिस दिन संदेह विली

न हो जाता है और जो शेष रह जाती है। उसका नाम श्रद्धा है इसलिए उस मित्रता का कोई अर्थ नहीं है जिसके भीतर शत्रु होने की संभावना है। जिस दिन शत्रुता का भाव गिर जाता है और जो शेष रह जाता है,वह मैत्री की भावना है। इसलिए उस सुख का कोई मूल्य नहीं है जिसके पीछे दुख बैठा हुआ है। जिस दिन दुख विलीन ह ो जाता है, तब यह जो शेष रह जाता है वह आनंद है। लेकिन हम निरंतर विरोध से भरे हैं। जो विरोध से भरा है, उसका चित्त जटिल कांपलेक्स होगा। जो विरोध से भरा है उसका चित्त निरंतर जटिलता और द्वंद्व में होगा। और थोड़ा समझ लेने की बात है कि जो चित्त निरंतर द्वंद्व करता है, उस चित्त की ज्ञान की क्षमता क्षीण हो ती जाती है। क्योंकि जो निरंतर द्वंद्व में लगा है उसकी संचेतना कान्स्यसनेस। उसका बोध निरंतर धीमा और फीका होता जाता है। जो निरंतर लड़ाई लड़ रहा है वह ि दन रात लड़ते लड़ते धीरे धीरे खोखला हो जाता है। उसकी संवेदनशीलता सेंसिटीवि टी कम हो जाती है। जो निरंतर द्वंद्व में है वह धीरे-धीरे मंद बुद्धि होता चला जाता है, उसका विवेक विकसित तो नहीं होता, क्षीण होता है, यही वजह है कि बच्चे से बढ़े का मस्तिष्क वस्तुतः ज्यादा तीव्र और विकसित होना चाहिए, लेकिन हम देख ते हैं कि वह क्रमशः क्षीण होता जाता है। शरीर वृद्ध होने का कोई कारण नहीं है। अगर मन द्वंद्व कानफिलिक्ट में न हो, मन अगर जटिल न हो, खंड खंड बंटा हुआ न हो, खुद के भीतर विरोध भरा हुआ न हो, तो मन के बूढ़े होने का कोई कारण न हीं है। मन बूढ़ा हो जाता है निरंतर लड़ते रहने के कारण, निरंतर विरोध में होने के कारण। अपने ही भीतर जो विरोध से भरा है, स्वाभाविक है धीरे-धीरे उसकी क्ष मता, उसकी संवेदनशीलता कम होती चली जाए। हम निरंतर मन में ही वृद्ध होते जाते हैं। यह जो मन का संघर्ष है, यह जो मन का खंड खंड होना है, हमारे ही का रण है। हम ही इसे खंड खंड में बांट देते हैं। अपने ही अज्ञान में हम अपने को तोड़ देते हैं उसको थोड़ा समझें तो यह भी समझ में आ जाएगा कि सरलता क्या है। म न की सरलता कैसे पैदा होती है, इसके पहले कि उसके विचार में जाऊं, मैं आपको यह कह दूं।

साधारणतया जो कहा जाता है कि फलां आदमी बहुत सरल है, या साधारणतया जो हमसे कहा जाता है कि सरल होना चाहिए, उस तरह की सरलता को नहीं कह र हा हूं। साधारणतया हमसे कहा जाता है कि हमें सरल होना चाहिए, लेकिन इस सर लता को नहीं कह रहा हूं, क्योंकि इस तरह की जो सरलता है उसके पीछे जटिलता मौजूद रहती है। एक आदमी सरल होने का ढोंग कर सकता है एक आदमी सरल होने का ढोंग अनेक रूपों से कर सकता है। वह बहुत अच्छे कपड़े न पहने, वह मोटी खादी के सामान्य सीधे सादे कपड़े पहन ले। हम कहेंगे बहुत ही सरल आदमी है औ र भी सरल, वह नंगा हो जाए तो हम कहेंगे कि कितना सरल आदमी है। यह सरल ता नहीं है। या एक आदमी दो बार खाना नहीं खाए, एक बार खाना खाने लग जा ए, हम कहेंगे कि कैसा सरल आदमी है।

एक ही बार खाना खाता है या एक आदमी मांस न खाए और शाकाहार करने लगे, हम कहेंगे, कि कैसा सरल आदमी है। एक आदमी धूम्र-पान न करे, शराब न पीए, जुआ न खेले तो हम कहेंगे कैसा सरल आदमी है। यह कोई सरलता के कारण नहीं हैं, बल्कि ऐसे आदमी बहुत जटिल होते हैं, क्योंकि ऐसे आदमी ऊपर से सरलता को ओढ़ लेते हैं, भीतर की जटिलता तो नष्ट होती है,वह तो वहां मौजूद रहती है।

यह जो ऊपर से सरलता का ढोंग है इसका कोई अर्थ नहीं है, यह कोई सरलता नह ीं है। सरलता बिलकुल दूसरी चीज है। यह वैसी ही है जैसे कोई कागज के फूल घर में लगा दे। कागज के फूलों और असली फूलों में बड़ा फर्क है। सरलता लायी नहीं जाती, ऊपर से थोपी नहीं जाती, भीतर चित्त अखंड हो जाए तो बाहर सरलता अप ने आप आनी शुरू हो जाती है और तब आदमी क्या पहनता है, इससे कोई फर्क न हीं पड़ता है और आदमी क्या खाता है इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कैसे उठता बैठ ता है इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता है और आदमी क्या खता है इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कैसे उठता बैठता है इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। यह सब अपने आप सर ल हो जाता है। भीतर से अखंड है तो बाहर जीवन में सरलता अपने आप प्रवेश पा ने लगती है। भीतर चित्त अखंड न हो तो बाहर जीवन में सरलता अपने आप प्रवेश पाने लगती है। भीतर चित्त अखंड न हो तो बाहर कोई कितनी ही सरलता को ला द ले, लादी हुई सरलता कोई सरलता नहीं है, उसका कोई मूल्य नहीं हो सकता, क योंकि ऐसी सरलता केवल अपने आप पैदा नहीं होती है, सहज उत्पन्न नहीं होती। ि कसी ने कहा है : साधो सहज समाधि भली, वह जो सहज उत्पन्न हो, सहज विकसि त हो वही भली है, जो असहज हो, थोपा जाए, अभ्यास किया जाए, वह व्यर्थ है। मैं एक गांव गया था। एक साधु मेरे मित्र थे। वे संन्यास की तैयारी में लगे थे। जब मैं उनके झोपड़े के पास गया, मैंने देखा वे अंदर नग्न टहल रहे हैं और खिड़की में से दिखायी पड़ रहे थे। मैं द्वार पर गया और द्वार पर दस्तक दी। जब उन्होंने द्वार खोला तो वे कपड़े लपेटे हुए थे। मैंने उनसे पूछा कि मैंने खिड़की से आपको देखा तो आप नग्न थे, अब आप कपड़े क्यों लपेटे हुए हैं। वे बोले, मैं नग्न रहने का अभ्यास कर रहा हूं। अकेले में अभ्यास करूंगा फिर कुछ मित्रों में भी, फिर थोड़ा बाहर नि कलूंगा घर से, फिर गांव में, फिर शहर में। इस भांति धीरे-धीरे अभ्यास हो जाएगा। मैंने उनसे कहा, आप किसी सरकस में भरती हो जाएं। यह इसलिए आपसे कहता हूं कि अभ्यास से आयी हुई नग्नता वह नग्नता नहीं है जो महावीर को आयी है। व ह नग्नता अभ्यास, प्रेक्टिस से नहीं, निर्दोषता इनोसेंस से आयी है। चित्त इतना सरल हो गया कि वस्त्र अनावश्यक हो गए। छूट गए। वे वस्त्र छोड़े नहीं गए,वे वस्त्र छूट गए। ऐसे जो नग्नता आ जाए वह तो अर्थपूर्ण है और वस्त्र छोड़कर अभ्यास करके जो नग्नता आ जाए तो वह तो कोई सरकस में भी कर सकता है। उसमें कोई कठि नाई नहीं है। एक आदमी इतना प्रभु के स्मरण से भर जाए कि उसे भोजन का ख्या ल न आए और दिन बीत जाए, उपवास हो जाए, यह तो समझ में आता है, और

एक आदमी चेष्टा करके दिन भर अभ्यास करके भूखा रह जाए यह मेरी समझ में न हीं आता है। उपवास का अर्थ ही है कि परमात्मा के निकट होना, उसके पास रहना। उसके पास जो उसका चित्त है उसके कारण अगर भोजन भूल जाए तो समझ में आता है अन्यथा फिर साधा हुआ उपवास बिलकुल व्यर्थ हो जाता है, उसका कोई मूल्य नहीं। साधा हुआ सभी व्यर्थ हो जात है। जो आ जाए उसकी सार्थकता है। साधे हुए की सार्थकता नहीं है। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह आता है, साधा नहीं ज ाता है। अगर मैं आपके प्रति प्रेम साध लूं तो वह प्रेम असत्य हो गया। साधा हुआ प्रेम कैसे सत्य होगा। साधा हुआ प्रेम तो अभिनय होगा, पाखंड होगा। आया हुआ प्रेम, मेरे भीतर से प्रेम फूटने लगे, उसके अवरुद्ध द्वार खुल जाएं। और मेरे भीतर से प्रेम की धारा बहने लगे तो वह तो समझ में आता है और मैं चेष्टा करूं प्रयास करूं और आपको प्रेम करूं तो उस प्रेम का क्या मूल्य होगा। वैसे ही सरलता का कोई मूल्य नहीं है। वह साध ली गयी है, लेकिन हम चारों तरफ सरलता को साधते हुए देखते हैं। जिसको हम साधु कहते हैं वह सरलता साधे हुए है। सारी चेष्टा है उसकी, एक-एक बात के लिए नियम और विधि और विधान है। कब उठना है, कब सोना है, क्या खाना है, क्या पहनना है, रत्ती-रत्ती उसका हिसाब है, उसकी बड़ी आयोजना है। बेहतर था कि वह कहीं किसी व्यवस्था में व्यवस्थापक होता, कहीं मैनेजर होता। बेहतर होता वह कहीं मशीनें चलाता, उसका मस्तिष्क मशीनों को चलाने में बड़ा योग्य सिद्ध होता। लेकिन वह साधु है। साधु का जीवन साधा हुआ नहीं, सहज होता है। उसके भीतर से जो फलित हो रहा है वह सहज फलित हो रहा है।

जापान में एक बादशाह हुआ। उसने लोगों से पूछा कि मैं किसी साधु के दर्शन करना चाहता हूं। उसके वजीरों ने कहा, साधु के दर्शन! गांव-गांव सड़क-सड़क साधु हैं, कहीं भी जाएं, दर्शन कर लें।

जापान में कहते हैं भिक्षुक बहुत हैं। बौद्ध मठों में भिक्षुकों की संख्या बहुत है। कम्बोडिया आदि में कोई दो तीन करोड़ की तो आबादी है, कोई बीस लाख भिक्षुक। वैसे ही जापान में हैं। वैसे ही लंका में हैं। बादशाह के वजीरों ने कहा कि भिक्षुक और साधु की क्या कमी है। अभी कहें जितना उतनी भीड़ लगा दें। उसने कहा, लेकिन न हीं मैं साधु के दर्शन करना चाहता हूं। उन्होंने पूछा लेकिन साधु से क्या अर्थ है आपका—सड़क पर जाएं, साधु ही साधु हैं। उसने कहा अगर ये ही साधु होते तो मैं तुमसे साधु के दर्शन के लिए नहीं कहता। ये सब मुझे अभिनय करते हुए लोग मालूम पड़ते हैं। एक खास ढंग का सिर घुटा देना और एक खास रंग का झोला लटका लेने से कोई कैसे साधु हो सकता है? यह सब मुझे अभिनय करते हुए लोग मालूम पड़ते हैं। एक खास ढंग के कपड़े पहन लेना एक खास ढंग का सिर घुटा देना और एक खास रंग का झोला लटका लेने से कोई कैसे साधु हो सकता है? यह सब मुझे अप्रौढ बड़े बचकाने लोग मालूम पड़ते हैं। उनके भीतर अभिनय की वृति है। ये सारे के सारे अभिनेता तो हो सकते हैं। लेकिन साधु कैसे हो सकते हैं। आप देखें जरा साधुअों को, कोई एक विशेष ढंग का टीका लगाए हुए है, कोई एक विशेष ढंग के कपड़े

पहने हुए हैं, कोई कुछ किए हुए है और कोई कुछ और फिर उनके पीछे चलने वाले भी ठीक वैसा ही किए हुए हैं। यह सब कितना बचकाना चाइलडिश, कितना अप्रौढ़ इममेच्योर मालूम देता है। कोई विचारशील, कोई विवेकशील ऐसा अभिनय कर सकता है?

गांधी के पास एक संन्यासी ने आकर कहा कि मैं कुछ सेवा करना चाहता हूं। गांधी ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और कहा कि इसके पहले कि तुम सेवा करो, यह गैरुए वस्त्र छोड़ दो। उसने कहा, क्यों, इसमें क्या बाधा है? उन्होंने कहा, कि यह वस्त्र तुम पहले हो यह इसी बात का सबूत हैं कि तुम लोगों से चाहते हो कि वे तुम्हें संन्यासी समझें, अन्यथा और कोई कारण नहीं वस्त्र का। तुम संन्यासी हो तो किसी भी वस्त्र में हो सकते हो, लेकिन लोग तुम्हें किसी भी वस्त्र में संन्यासी नहीं समझेंगे। तुम चाहते हो कि लोग समझें कि तुम संन्यासी हो। और जो चाहता है कि लोग समझें कि मैं संन्यासी हूं यह आदमी संन्यासी नहीं है। लोगों के चाहने से क्या संबंध है। उस राजा ने कहा कि मैं साधु से मिलना चाहता हूं। वजीरों ने बहुत खोज की कि कोई साधु हो। बड़ी मुश्किल से पता चला कि गांव के बाहर एक झोपड़ी में एक आदमी रहता है। कुछ लोग कहते हैं कि वह साधु है। राजा वहां गया। वह सुबह-सुबह वहां पहुंचा। उसने सोचा कि साधु ब्रह्ममहूर्त में उठा होगा तो वह गया। सुबह कोई सात साढ़े सात बज रहा था। सूरज भी ऊग आया था और साधु सोया हुआ था। भगवान बुद्ध की मूर्ति रखी हुई थी, उससे वह पैर टिकाए हुए था। उस राजा ने कहा कि यह कैसा साधु है? भगवान की मूर्ति से पैर टिकाए हुए है और इतनी देर तक सोया हुआ। लेकिन राजा को जो लोग ले गए थे उन्होंने कहा कि इतनी जल्दी में निर्णय न लें, क्योंकि साधु को पहचानना इतना आसान नहीं। इतनी जल्दी निर्णय लेने से ही तो असाधु साधु बने हुए दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि कोई भी चार बजे उठ सकता है कोई बड़ी कठिन बात है? और कोई भी भगवान को हाथ जोड़े मिल सकता है, कोई कठिन बात है? जरा थोड़ा निर्णय लेने में जल्दी न करें। यह आदमी थोडा कुछ है। भगवान पर पैर टिकाए हुए है, यह कोई सामान्य आदमी नहीं है। सिर्फ साधु ही टेक सकता है भगवान पर पैर और कोई नहीं टेक सकता है। थोड़ा रुकें। जल्दी निर्णय न लें। वह साधु कोई आठ बजे उठा होगा। राजा ने उससे उठते ही पूछा कि तुम इतनी देर तक सोए हुए थे? साधु को ब्रह्ममुहुर्त में उठ जाना चाहिए। उस साधु ने कहा कि मैं तो ब्रह्ममहूर्त में ही उठता हूं और जब उठता हूं तभी ब्रह्ममहूर्त मानता हूं। जब परमात्मा उठा देता है, उठ जाता हूं, जब परमात्मा सुला देता है, सो जाता हूं। न अपनी तरफ से सोता हूं न अपनी तरफ से उठता हूं। अपने को ही छोड़ दिया उसी दिन से जिस दिन साधु हुआ। अपने को छोड़ दिया उसी दिन। अब जो होता है—धूप में बैठता है, धूप तेज होने लगती है तो भीतर परमात्मा कहता है कि छाया में चलो तो छाया में आ जाता हूं और जब छाया मैं ठंड लगती है और परमात्मा कहता है कि धूप में चलो तो धूप में चला जाता हूं। अपने को मैंने छोड़ दिया है। अब मैं सिर्फ जी रहा हूं। और मैं नहीं हूं। जब नींद खुलती है तो उठ जाता

हूं, जब भूख लगती है तो खाना खाने चला जाता हूं।राजा ने कहा तुम्हारा कोई विधि विधान नहीं है। जिसने परमात्मा के हाथ में अपने को छोड़ा उनका कोई विधि विधान नहीं होता है। सब विधि विधान अहंकार से पैदा होते हैं। सारे विधि विधान की व्यवस्था अहंकार से पैदा होती है। हम कुछ थोपना चाहते हैं जीवन पर और जो मनुष्य जीवन पर कुछ थोपना चाहता है, जो मनुष्य जीवन से कोई विशेष अपेक्षा रखता है कि वह ऐसा हो, ऐसा न हो। जो कुछ निषेध करता है और कुछ स्वीकार करता है वह मनुष्य सरल नहीं हो सकता है। सरलता साधु की अनिवार्य शर्त है। उस साधु ने कहा कि हवा पानी की तरह जो हो जाता है, वह साधु है। हवा जहां गिरा दे गिर जाता है, हवा उठा दे तो उठ जाता है। सूखे पत्ते की तरह जो हो जाए वैसा व्यक्ति केवल सरल हो सकता है, बाकी तो सारे जटिल हैं। सागर पर तैरते हुए लकड़ी के टुकड़े की भांति हो जाएं कि लहरें जहां ले जाएं चला जाए और लहरें जहां छोड़ दे छूट जाए, जिसकी अपनी कोई विधि निषेध की कोई इच्छा नहीं है, जिसका अपना कोई आरोपण नहीं है वही केवल सरल हो सकता है। हम कैसे सरल होंगे। जिनके ऊपर कोई चौबीस घंटे विधि निषेध है वह चौबीस घंटे अपने को विशेष भांति से बनाने में लगे हुए हैं वह कैसे सरल होंगे। जो आदमी भी अपने को बनाने की चेष्टा में लगा है वह सरल नहीं हो सकता है। जो आदमी इस कोशिश में लगा है कि मैं परमात्मा को पाऊंगा, जो आदमी इस कोशिश में लगा हुआ है कि मैं साधु हो जाऊंगा अथवा जो आदमी इस कोशिश में लगा है कि मुझे तो हो जाना होना है, जो इस कोशिश में लगा है कि मुझे अहिंसक होना है, मुझे सत्यवादी होना है, मुझे अक्रोधी होना है। जो इस कोशिश में लगा है वह आदमी सरल कैसे होगा। वह आदमी सरल नहीं हो सकता है। जो आदमी जीवन में किसी आदर्श के प्रति अपने को समर्पित करता है वह कभी सरल नहीं हो सकता है और हम सारे लोग किसी न किसी आदर्श के प्रति समर्पित हैं।

महावीर को हुए ढाई हजार वर्ष हुए। क्राइस्ट को हुए दो हजार वर्ष हुए, बुद्ध को हुए ढाई हजार वर्ष हुए, राम को हुए और भी ज्यादा हो गए। उनके बाद हमने आदर्श पकड़ लिए हैं। बुद्ध के बाद ढाई हजार वर्ष से उनके पीछे चलने वाला बुद्ध होने की कोशिश में लगा है। कोई दूसरा आदमी।बुद्ध हुआ है, ढाई हजार वर्षों में? नहीं हुआ। कोई दूसरा आदमी महावीर हुआ ढाई हजार वर्षों में? नहीं हुआ।कोई दूसरा आदमी क्राइस्ट हुआ? दो हजार वर्षों का अनुभव इनकार करता है कि नहीं हुआ। फिर भी लाखों लोग क्राइस्ट होने की चेष्टा में लगे हैं, लाखों लोग बुद्ध होने की, लाखों लोग महावीर होने की। जरूर इसमें कोई बुनियादी गलती है। जो आदमी किसी दूसरे आदमी के जैसा होने की चेष्टा में लगता है वह जटिल हो जाएगा। स्वभावतः वह जटिल हो जाएगा वह अपने को इनकार करने लगेगा और दूसरों पर अपने को थोपने लगेगा। वह अपनी वास्तविकता से निषेध करने लगेगा और दूसरों के आदर्श को ओढ़ने लगेगा। वह आदमी कठिन हो जाएगा, जटिल हो जाएगा। उसका चित्त खंड-खंड हो जाएगा, वह टूट जाएगा अपने भीतर। उसके भीतर द्वंद्व उत्पन्न हो जाएगा

और बड़ी मुश्किल तो यह है कि महावीर होने के लिए सरल होना जरूरी है। बुद्ध होने के लिए सरल होना जरूरी है और क्राइस्ट होने के लिए सरल होना जरूरी है। जो उनका अनुगमन करते हैं वे अनुगमन करने के कारण ही जटिल हो जाते हैं। यह स्थिति आपको दिखनी चाहिए। कोई किसी का अनुगमन करके सरल नहीं हो सकत ा है। अनुगमन का अर्थ ही हुआ कि मैंने दूसरे मनुष्य जैसे होने की चेष्टा शुरू कर द ी। बिना उस मनुष्य को समझे हुए जो मैं था, जो मैं हूं, मैं जो हूं उसे समझे बिना मैंने दूसरा मनुष्य होने की चेष्टा शुरू कर दी। मैं जो हूं वह रहूंगा और दूसरे मनुष्य का आवरण बनावट पाखंड अपने ऊपर थोप लूंगा। इसलिए धार्मिक मुल्क अत्यंत पा खंडग्रस्त हो जाते हैं। हमारा मुल्क है। इससे ज्यादा पाखंडी मुल्क पृथ्वी पर खोजना कठिन है। इससे ज्यादा जटिल मुल्क, जटिल कौम, जटिल जाति खोजना बिलकुल मुि श्कल है। जितना पाखंड हममें जमा है और गहरा है उतना जमीन में किसी कौम में नहीं हो सकता है और कारण कुल यह है कि हम सब अनुकरण, आदर्श, हम कुछ होने के पागलपन में लगे हैं उस मनुष्य को समझे बिना जो हम हैं। जब कि जीवन की कोई भी वास्तविक क्रांति जो हम हैं उसे समझने से शुरू हो सकती है। जो मैं हूं उसे समझने से वस्तुतः शुरू होती है।

एक आदमी क्रोधी है, एक आदमी लोभी है, एक आदमी दंभी है। एक दंभी आदमी कोशिश में लगा जाता है मैं विनीत हो जाऊं, क्या होगा? एक अहंकार मनुष्य है। ि शक्षक-संस्कारी और समझाने वाले लोग उससे कहते हैं कि अहंकार छोड़ दो तो तुम्हें बहुत शांति मिलेगी। वह अहंकारी मनुष्य अहंकार छोड़ने में लगेगा। क्या करेगा? अ हंकार कहीं छोड़ा जाता है। अहंकार कहीं छोड़ा जा सकता है, कौन छोड़ेगा अहंकार ? जो छोड़ने में लगा है अहंकार ही तो है। इसलिए जब छूटने का उसे लगेगा तो व ह कहने लगेगा कि मैंने अहंकार छोड़ दिया मैं विनीत हो गया, मैं विनम्र हो गया हूं । यदि उसके पास कोई अहंता नहीं है तो वह सब क्या है? यह सब अहंता का हिस् सा है। कोई अहंकारी अहंकार को कैसे छोड़ सकेगा? छोड़ने से और परिपुष्ट हो जा एगा और सक्षम हो जाएगा, इसलिए संन्यासी के बराबर सक्षम अहंकार गृहस्थ का न हीं होता है, न हो सकता है। गृहस्थ तो एक दूसरे में मिल जाते हैं, संन्यासी एक दू सरे से मिलते नहीं हैं। संन्यासियों को कहिए, एक दूसरे से मिलें तो नहीं मिल सकते ।

एक बड़े साधु से मैंने कहा कि फलां साधु से आप मिले? वह बोले, जरा मुश्किल है। क्योंकि मुश्किल है, कौन पहले नमस्कार करेगा, यही मुश्किल है, अगर वे साधु मि लें। कौन कहां बैठेगा यही मुश्किल है, कौन नीचे बैठेगा, कौन ऊपर बैठेगा?

मैं एक जलसे में था। वहां तीस-चालीस साधु अलग-अलग तरह के आमंत्रित थे। उस समारोह के करने वालों की यही इच्छा थी कि सारे लोग एक ही मंच पर बैठें, लेि कन वे नहीं बैठ सके। क्योंकि कोई शंकराचार्य था, उनका सिंहासन चाहिए, उस पर ही बैठेंगे और जब शंकराचार्य सिंहासन पर बैठेंगे तो दूसरा साधु उनके नीचे बैठने का राजी होगा? वह कहेगा कि मैं भी सिंहासन पर बैठूंगा। फिर यह भी डर है कि

सिंहासन किसका ऊंचा नीचा होगा। क्या सोचते हैं आप, पागल हैं या साधु हैं? ये ि वनम्र हैं या अहंकार की अंतिम चरम सीमा पर हैं? यह अहंता का सूक्ष्मतम रूप है इसलिए दुनिया में साधु लड़ते हैं और लड़ाते हैं, क्योंकि अहंकारी जहां भी हो वहीं द्वंद्व ,संघर्ष और लड़ाई खड़ी कर देता है। यह अहंता है और अहंकार कभी अहंता क ो छोड़ ही नहीं सकता। जब वह छोड़ने लगता है तब भी वह अहंकारी है जो सोच रहा है कि विनम्र हो जाऊं। वह क्या करेगा? वह विनम्र होने का ढोंग करेगा। जब आप मिलेंगे तो वह सिर झुका कर कहेगा कि मैं कुछ नहीं और जब वह कह रहा है कि मैं कुछ भी नहीं तब वह कहेगा कि'मैं कुछ हूं।' यह केवल वही आदमी कहता है मैं कुछ भी नहीं हूं कि जो जानता है कि मैं कुछ हूं। अन्यथा नहीं कह सकेगा। लोभी कैसे छोड़ेगा लोभ को? वह लोभ को भी छोड़ेगा तो लोभ के कारण ही छोड़ग ा।

मैं एक जगह था और एक साधु समझा रहा था दूसरे लोगों को कि लोभ छोड़ दो तु म शांत हो जाओगे। लोभ छोड़ दो तो पुण्य मिलेगा, लोभ छोड़ दो तो मोक्ष मिलेगा । मैंने उस साधु से कहा कि अगर इनमें से कोई बहुत लोभी होगा तो आपकी बात को मान पाएगा क्योंकि जिसे मोक्ष पाने का लोभ होगा वह सोचेगा लोभ छोड़ दें। श ांत होने का जिसे लोभ होगा वह सोचेगा लोभ छोड़ दें।यह सब लोभ के ही हिस्से हैं, ये सब लोभ ग्रीड का ही विस्तार एक्सटेंशन है। लोभी कभी लोभ को कैसे छोड़ स कता है। असल में कोई बुराई कभी नहीं छोड़ी जाती वैसे ही जैसे अंधकार हो तो अं धकार को हटाया नहीं जा सकत। इस मन में अंधकार भरा हो, तो हम उसे झटके देकर नहीं हटा सकते। अगर कोई कोई अंधकार को हटाने में लगेगा तो हम क्या क हेंगे उसको? कहेंगे, विक्षिप्त हो गया है, इसका मस्तिष्क ठीक नहीं है।

अंधकार नहीं हटाया जाता है। प्रकाश जलाया जाता है। प्रकाश जल जाए तो अंधका र अपने आप विलीन हो जाता है और वह नहीं पाया जाता है। वैसे ही अहंकार नहीं छूटता। सरलता उत्पन्न होती है तो अहंकार नहीं पाया जाता है। लोभ नहीं छूटता। शांति उत्पन्न होती है तो लोभ नहीं पाया जाता है।

जीवन में बुराई नहीं छोड़ी जाती। जो सद है उसका जन्म उसे जगाया जाता है, जो आलोक है उसे जगाया जाता है अंधकार अपने से छूट जाता है, लेकिन हम अंधकार को छोड़ने लगेंगे तो जटिल हो जाएंगे। हम सारे लोग अंधकार को छोड़ने में लगे हैं । मुझे लोग मिलते हैं जो कहते हैं कि हमने अपनी हिंसा छोड़ दी है मैं उनको कहत ा हूं कि हिंसा कैसे छोड़ी जा सकती है? हां प्रेम जगाया जा सकता है, हिंसा नहीं छ ोड़ी जा सकती है। लोग कहते हैं, हमें असत्य छोड़ना है। सत्य जगाया जा सकता है, असत्य नहीं छोड़ा जा सकता है। और जब ये छोड़ने की भाषा में पड़ जाते हैं तभी जटिलता शुरू हो जाती है। कानफिल्क्ट द्वंद्व शुरू हो जाता है। और हमारे चित्त इसीि लए बहुत ज्यादा द्वंद्व से भरे हैं। हम कुछ छोड़ना चाहते हैं, जबकि छोड़ना जीवन क ा नियम नहीं है, पाना जीवन का नियम है, कुछ पा लिया जाए तो निम्न छूट जाता है। श्रेष्ठ पा लिया जाए, निम्न विलीन हो जाता है, श्रेष्ठ आ जाए तो निम्न जगह

खाली कर देता है। प्रकाश आ जाए तो अंधकार स्थान छोड़ देता है, लेकिन अंधकार अपने आप स्थान नहीं छोड़ सकता है। प्रकाश का आगमन प्राथमिक है, अंधकार का जाना द्वितीय है। सद का होना प्राथमिक है, असद का जाना द्वितीय है। श्रेष्ठ का आना प्राथमिक है, अश्रेष्ठ का जाना द्वितीय है। और वह जो आगमन है, वह जो वास्तविक सरलता का आगमन है, जिससे जटिलता जाएगी, वह आरोपित नहीं होता है, उसे भीतर से जगाना होता है। भीतर से जगाने का नियम क्या होगा? नियम यह होगा कि सबसे पहले हम सब भांति के आदर्शों से अपने को मुक्त कर लें, आदर्श जटिल कर रहे हैं।

आप सबसे पहले अपने को जानने में लग जाएं—बजाए इसके कि आप अपने बनाने में लग जाएं। हम पूछते हैं कि हमें कैसा होना चाहिए? मैं आपसे कहता हूं कि यह व्यर्थ है आप जानें कि आप कैसे हैं। वह वैज्ञानिक है कि आप जानें कि आप क्या हैं। अगर आप अपनी वास्तविकता को पूरी तरह जान लें तो उस ज्ञान से ही क्रांति शुरू हो जाती है। अगर कोई मनुष्य अपने क्रोध को पूरा जान ले तो क्रोध विलीन होना शुरू हो जात है। क्रोध को विलीन करने के लिए और कुछ करना जरूरी नहीं है, क्रोध को जान लेना जरूरी है। लेकिन आपने कभी क्रोध नहीं जाना। आप कहेंगे कि हमने बहुत बार क्रोध किया है, मैं आपको कहता हूं कि मैं मुल्क में घूमा हूं और मैं ऐसे आदमी की तलाश में हूं कि जिसने क्रोध जाना हो। आपने क्रोध कभी नहीं जाना। जब आप क्रोध करते हैं तब आप मौजूद नहीं होते। आप समझते हैं। असल में आप बेहोश होते हैं। कभी कोई आदमी मौजूद होकर क्रोध कर सकता है? मौजूद होकर क्रोध नहीं किया जा सकता। अगर आप मौजूद हों तो क्रोध असंभव हो जाएगा, अगर आपकी उपस्थिति प्रेसेंस पूरी हो, उस समय। चित्त की वृति के समय अगर आप सजग हों तो क्रोध असंभव हो जाएगा। क्रोध नहीं किया जा सकता है। जब भी हम सजग हों तभी जो बुरा है असंभव हो जाता है। बुरे के लिए असजग होना, मूर्च्छित होना जरूरी है। इसलिए जिसे बुरा काम करना है वह अगर नशा कर ले तो बुरा काम और भी आसान हो जाता है, क्योंकि नशे में सजगता और भी क्षीण हो जाती है। सारे धर्मों ने नशे का विरोध किया है केवल एक ही बात से, अन्यथा नशे में कोई खराबी नहीं है। एक आदमी शराब पी रहा है, इसमें क्या खराबी है? शराब में कोई खराबी नहीं है, खराबी यह है कि शराब की स्थिति में उसके होश की जो स्थिति है वह विलीन हो जाएगी। वह और भी मूर्च्छित होगा और मूर्च्छा में सब पाप होते हैं। आप जब क्रोध करते हैं, तब आप मूर्च्छित हैं, जब आप काम से पीड़ित हैं तब आप मूर्च्छित हैं, आप होश में नहीं हैं, आप अपने में नहीं हैं। आपको कोई चीज खींच रही है और आपको बिलकुल होश नहीं है कि आप कहां जा रहे हैं। क्रोध में आदमी को देखें, वासनाग्रस्त आदमी को देखें, उसकी आंखों को, उसके भाव को देखें, उसके शरीर को देखें, आप पाएंगे वह मूर्च्छित है, वह बेहोश है। इसलिए जब आप क्रोध में होते हैं तब न केवल मन के तल पर, बल्कि शरीर के तल पर भी आप मूर्च्छित होते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं शरीर की ग्रंथियां जहर छोड़ देती हैं और

जहर के प्रभाव से आप करीब-करीब शराब की हालत में आ जाते हैं। शरीर के अ ौर मन दोनों के तल पर आप बेहोश हो जाते हैं।

बुद्ध का एक शिष्य था। वह नया-नया दीक्षित हुआ था। उसने संन्यास ले लिया था। बुद्ध ने उससे पूछा : मैं आज कहां भिक्षा मांगने जाऊं। उन्होंने कहा : मेरी एक श्राविका है, वहां चले जाना। वह वहां गया। वह जब भोजन करने बैठा तो बहुत हैरान हुआ। रास्ते में इसी भोजन का उसे ख्याल आया था। यह भोजन उसे प्रिय था। उसने सोचा था कि कौन मुझे देगा। आज कौन मेरे प्रिय भोजन को देगा। वह कल तक र ाजकुमार था और वो उसे पसंद था वह खाता था। लेकिन उस श्राविका के घर वही भोजन देखकर वह बहुत हैरान हो गया। सोचा,संयोग की बात है, वही आज बना होगा। जब वह भोजन कर रहा था, उसे अचानक ख्याल आया भोजन के बाद तो मैं विश्राम करता था रोज, लेकिन आज तो भिखारी हूं। भोजन के बाद वापस जाना होगा, दो तीन मील का फासला फिर धूप में तय करना है। वह श्राविका उसका पंख ा झलती थी। उसने कहा, 'भंते, अगर भोजन के बाद दो क्षण विश्राम कर लेंगे तो मुझ पर बड़ा अनुग्रह होगा। भिक्षुक थोड़ा हैरान हुआ कि क्या मेरी बात किसी भांति पहचानी जाती है। फिर उसने कहा कि संयोग की ही बात होगी कि मैंने भी सोचा और उसने भी उसी वक्त पूछ लिया चटाई डाल दी गई वह विश्राम करने लेटा ही था कि उसे ख्याल आया कि आज न तो कोई शैया है, न अपना कोई साया है, अ पने पास कुछ नहीं। वह श्राविका जाती थी, वह लौटकर रुक गई। उसने कहा—भंते शैया किसी की भी नहीं है। साया किसी का भी नहीं है। चिंता न करें।

अब संयोग मान लेना कठिन था। वह उठ कर बैठ गया। उसने कहा, मैं बड़ा हैरान हूं। क्या मेरे भाव पढ़ लिए जाते हैं। वह श्राविका हंसने लगी। उसने कहा, बहुत दिन ध्यान का प्रयोग करने से चित्त शांत हो गया। दूसरों के भाव भी थोड़ा बहुत अनुभ व में आ जाते हैं। वह एकदम उठकर खड़ा हो गया वह एकदम थककर घबरा बया और कांपने लगा। श्राविका ने कहा, आप घबराते क्यों हैं, क्या हो गया? विश्राम कीजिए, अभी तो आप लेटे थे। उसने कहा, मुझे जाने दें। आज्ञा दें। उसने आंखें नीचे झुका लीं और वह चोरों की तरह वहां से भाग गया। श्राविका ने कहा कि क्या बा त है, क्यों परेशान हैं। फिर उसने लौटकर भी नहीं देखा। उसने बुद्ध से जाकर कहा, उस द्वार से जाकर कहा, उस द्वार पर अब कभी न जाऊंगा। उन्होंने पूछा, क्या हो गया, भोजन ठीक नहीं था? सम्मान नहीं मिला? कोई भूल चूक हुई? उसने कहा ि क भोजन भी मेरे लिए जो प्रीतिकर है वही था, सम्मन भी बहुत मिला, प्रेम और आदर भी था, लेकिन वहां नहीं जाऊंगा। कृपा कर वहां जाने की आज्ञा न दें।

बुद्ध ने कहा, इतने घबराए क्यों हो, इतने परेशान क्यों हो? उसने कहा, वह श्रावि का दूसरों के विचार पढ़ लेती है और जब मैं आ भोजन कर रहा था, उस सुंदर यु वती को देखकर मेरे मन में तो विकार भी उठे थे। वे भी पढ़ लिए गए होंगे। मैं कि स मुंह से जाऊं। मैं तो आंखें नीची करके वहां से भागा। वह मुझे भंते कह रही थी, मुझे आदर दे रही थी। मेरे प्राण कंप गए, मेरे मन में क्या-क्या उठा। और सने स

ब पढ़ लिया होगा। फिर भी मुझे भिक्षु और भंते कहकर आदर दे रही थी। कृपया मुझे क्षमा करें। वहां मैं नहीं जाऊंगा।
बुद्ध ने कहा, तुम्हें वहां जानकर भेजा था। यह तुम्हारी साधना का अंग है, तुम्हें वह ीं जाना पड़ेगा, रोज-रोज वहीं जाना पड़ेगा। जब मैं नहीं कहूं या जब तक तुम न अ ाकर मुझसे कहो कि अब मैं वहां जा सकता हूं, तब तक वहीं जाना पड़ेगा। वह तुम्हारी साधना का हिस्सा है उसने कहा, मैं कैसे जाऊंगा, किस मुंह से जाऊंगा और क ल अगर फिर वही विचार उठे तो मैं क्या करूंगा? बुद्ध ने कहा, तुम एक ही काम करना, एक छोटा-सा काम करना, और कुछ मत करना। जो भी विचार उठे उसे दे खते हुए जाना। विकार उठे उसे भी देखना। कोई भाव मन में आए, काम आए, क्रो ध आए, कुछ भी आए उसे देखना और कुछ मत करना। तुम सचेत रहना भीतर, जैसे कोई अंधकारपूर्ण घर में कोई एक दिए को जला दे और उस घर में सब चीजें दिखायी पड़ने लग जाएं, ऐसे तुम अपने भीतर जो भी चले वह दिखायी पड़े, वह स्प ष्ट दिखायी पड़े। बस तुम ऐसे जाना। वह भिक्षुक गया, उसे जाना पड़ा। भय था, प ता नहीं क्या होगा लेकिन वह अभय होकर लौटा। वह नाचता हुआ लौटा। कल डरा हुआ लौटा था, आज नाचते हुआ आया। कल आंखें नीचे झुकी थीं। आज आंखें आ काश को देखती थीं। आज उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते थे और जब वह लौटा त ो बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ा और उसने कहा, धन्य है क्या हुआ यह। जब मैं सज ग था तो मैंने पाया, वहां तो सन्नाटा था, जब मैं उसकी सीढ़ियां चढ़ा तो मुझे अपन ी श्वास भी मालूम पड़ रही थी कि भीतर जा रही है, बाहर आ रही है। मुझे हृदय की धड़कन भी सुनायी पड़ने । कितना सन्नाटा था मेरे भीतर। कोई विचार सरकता तो मुझे दीखता। लेकिन कोई विचार सरक नहीं रहा था। एकदम शांत उसकी सीि ढयां चढ़ा। मेरे पैर उठे तो मुझे मालूम था कि मैंने बायां पैर उठाया दायां रखा और मैं भीतर गया और भोजन करने बैठा। यह जीवन में पहली दफा हुआ कि मैं जो कर रहा था वह मुझे दिखायी भी पड़ता था। मेरे हाथ का कंपन भी मालूम होता था । श्वास का कंपन भी मुझे स्पर्श और अनुभव हो रहा था और तब मैं बड़ हैरान हो गया। वहां मेरे भीतर कुछ भी नहीं था, एकदम सन्नाटा था। वहां कोई विचार नहीं था, कोई विकार नहीं था। बुद्ध ने कहा, जो भीतर सचेत है, जो भीतर जागा हुआ है, जो भीतर होश में है, विकार उसके द्वार पर आने वैसे ही बंद हो जाते हैं जैसे किसी घर में प्रकाश हो तो उस घर में चोर नहीं आते। जिस घर में प्रकाश हो तो उससे चोर दूर ही निकल जाते हैं। वैसे ही जिसके मन में ही जागरण हो, अमूर्च्छा हो, बोध अवेयरनेस हो, उसके चित्त के द्वार पर विकार आने बंद हो जाते हैं, निश्शे ष हो जाते हैं, मैं कहता हूं आपके क्रोध कभी देखा नहीं, क्योंकि क्रोध देखते तो क्रो ध विलीन हो जाता। आपने कभी उसे देखा नहीं, अगर देखते तो विलीन हो जाता । जो भी देख लिया जाए मन के तल पर, वही विलीन हो जाता है। जो विलीन हो जाने पर शेष रह जाता है वह है प्रेम, वह है ब्रह्मचर्य, वह है अक्रोध, वह है शांति, वह है अहिंसा, वह है करुणा। जो शेष रह जाता है वह हमारा स्वभाव है, उसे कह

ीं से लाना नहीं है। जो विजातीय तत्व फोरिन एलीमेंट हमारे ऊपर है वही भर विल
ीन हो जाए तो जो हमारे भीतर है वह प्रकट हो जाएगा।
परमात्मा हमारा स्वभाव है। इस स्वभाव में करुणा सहज है, प्रेम सहज है, ब्रह्मचर्य सहज है, दया और अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह और सरलता वहां सहज है। अगर विजा
तीय विलीन हो जाए तो वह सहजता प्रकट हो जाएगी। इसलिए मैंन

कहा, साधुता सहज स्पोंटेनियस सरलता है, कबीर ने जो वचन कहा, साधो सहज समाधि भली उसका अर्थ है कि जो बिलकुल सहज होकर देखेगा उसे समाधि उत्पन्न हो जाएगी, विकार विलीन हो जाएंगे और भीतर उसका जन्म होगा जो सत्य है। लेकिन यह किसी के पीछे जाने से नहीं होगा, अपने ही भीतर जाने से होगा।यह कि
सी का अनुगमन करने से नहीं होगा, अपनी ही वृतियों का अनुगमन करने से होगा, महावीर और बुद्ध के पीछे नहीं जाना है। क्रोध और काम के पीछे जाना है। उनको पकड़ना और पहचानना है। कोई आदर्श आपको बनाने की जरूरत नहीं है। आदर्श तो आपके भीतर मौजूद है। आपको कुछ होना नहीं है। अगर जो आप हैं उसी को जान सकें तो सब हो जाएगा, लेकि हम कुछ होने लगते हैं। इससे जटिलताउलझाव और द्वंद्व पैदा हो जाता है। कुछ होने में हनीं लगें, जो है उसे जानने में लगें और घ
बराएं नहीं क्रोध से, घबराएं नहीं काम से, न घबराएं घृणास`, न घबराएं द्वेष से, न घबराएं मोहलोभ से, घबराने की कोई जरूरत नहीं है। इनमें प्रवेश करें, इनके प्रेति सजग हो जाएं, होश से इनको पहचानें। इनको विलीन करें, इनमें प्रवेश कर जाएं। जो व्यक्ति अपने क्रोध में प्रवेश कर जाता है वह अक्रोध को पहुंच जाता है। जो अ
पने काम सेक्स में प्रवेश कर जाता है वह अपने ब्रह्मचर्य को अनुभव कर लेता है। ले
किन हम तो बाहर तथा बाहर से डरे एवं परेशान हैं। उनमें प्रवेश ही नहीं करते, क
भीउनको जानना नहीं चाहते कभी उनमें प्रवेश करके उनकी आंतरिक जड़ में जाना नहीं चाहते। हम तो बाहर ही घबराए रहते हैं। बुरे लोग वे हैं जो बुरा काम करने में नष्ट हो जाते हैं। भले लोग वे हैं जो बुरे काम के डर से ही नष्ट हो जाते हैं।
एक गांव में एक वृद्ध अपने गांव की सीमा के बाहर बैठा रहा। वह फकीर था। गांव के बाहर ही रहता था। वहां उसने देखा, एक बड़ी विकाराल छाया गांव में प्रवेश कर रही है। उसने उस छाया से पूछा, तुम कौन हो। यह छाया किसकी है और कहां जा रही है। सुनाई पड़ा कि महामारी हूं और गांव में एक हजार बुरे लोगों को नष्ट करने आई हूं। उसने कहा, सिर्फ बुरे लोगों को न? हां सिर्फ बुरे लोगों को। तीन ि
दन उस गांव में रहूंगी और एक हजार बुरे लोगों को नष्ट करूंगी। लेकिन तीन दिन में तो कई हजार लोग गांव नष्ट हो गए। उसमें बुरे ही लोग नहीं थे। बुरे से ज्यादा भले लोग थे, साधु थे, सज्जन थे। वह वृद्ध सजग रहा। तीसरे दिन जब वह लौटी तो उसने पूछा कि यह क्याहुआ?धोखा दिया। तुमने कहा, एक हजार बुरे लोगों को

नष्ट करूंगी। तीन दिन में तो हजारों लोग नष्ट हो गए। उसमें बुरे, भले, साधु और सज्जन भीनष्ट हुए। वह महामारी बोली : मैंने तो एक हजार बुरे लोगों को नष्ट कि या, बाकी अच्छे लोग भय से नष्ट हो गए। वह मैंने नष्ट नहीं किये। मेरा जिम्मा ए क हजार का, बाकी अच्छे लोग भय से नष्ट हो गए। वह मैंने नष्ट नहीं किए। मेरा जिम्मा एक हजार का, बाकी सब अपने से मर गए।

यह तो बिलकुल ही काल्पनिक बात है, लेकिन बिलकुल सच है।बुरे लोग क्रोध करके नष्ट हो जाते हैं, अच्छे लोग क्रोध से डर कर नष्ट हो जाते हैं। तीसरा रास्ता है—न तो क्रोध करने का सवाल है, न क्रोध से लड़ने का सवाल है। क्रोध को जानने कास वाल है और न क्रोध से डर कर क्रोध को लादने का सवाल है। सवाल क्रोध को जा नकर क्रोध कोविसर्जित करने का है और जानते ही क्रोध विसर्जित हो जाता है, जा नते ही जटिलता विसर्जित हो जाती है।

ज्ञान से बड़ी कोई क्रांति नहीं हैं। अभी रास्ते में हम आते थे तो बात चलती थी कि ज्ञान हो जाए तो फिर क्या करेंगे, ज्ञान हो जाए तो फिर आचरण कैसे करेंगे। ज्ञान हो जाए तो उसे जीवन में कैसे लाएंगे।

यह बात ही गलत है। यह वैसे ही गलत है जैसे कोई पूछे कि प्रकाश हो जाए तो ि फर अंधेरे का क्या करेंगे। जैसे कोई पूछे कि यहां तो प्रकाय जल गया, अंधेरे का क या करेंगे? हम उससे क्या कहेंगे। हम उससे कहेंगे कि फिर तुम प्रकाश के जलने का अर्थ ही नहीं जानते, उसका अथ्र ही है कि अंधेरा नहीं हो गया। ज्ञान का तो अर्थ ही है कि अज्ञान नहीं हो गया और जो आचरण अज्ञान से निकलता था वह अज्ञान के चले जाने पर नहीं हो पाएगा, वह रह कैसे जाएगा। अज्ञान अनाचरण है, ज्ञान अ ाचरण है। ज्ञान को आचरण में लाना नहीं होता है। ज्ञान हो तो आचरण अपने आप हैं। अज्ञान को भी आाचरण में नहीं लाना होता अज्ञान हो तो अनाचरण अपने आप है। आप कोई क्रोध को लाते हैं। आपने कभी क्रोध लाया है?आप हमेशा पाते हैं कि क्रोध आया है। आप हमेशा पाते हैं कि क्रोध आया है। आप क्रोध को कभी लाए हैं। आपने कभी घृणा की है? आप हमेशा पाते आए हैं। आये का क्या अर्थ है। आए क ा अर्थ है भीतर अज्ञान हो तो अनाचरण आता है। ठीक वैसे ही अगर भीतर ज्ञान ह ो तोआचरण आता है, वह भी लाया नहीं जाता है। अगर भीतर ज्ञान हो तो प्रेम वै से ही आएगा जैसे घृणा आती है। अभी करूणा वैसी ही आएगी जैसे क्रूरता आती है, अहिंसा वैसे ही आएगी जैसे हिंसा आती है अभी। अज्ञान का जो प्रकाशन है वह अ नाचरण है। आचरण थोपा नहीं जाता है। वह ज्ञान से मिश्रित होता है, बहता है औ र जाता है। जीवनमें जो भी है वह बहता है और आता है। किया कुछ भी नहीं जा ता है।

और इसलिए जो मैंने कहा कि जीवन सरल हो, जटिल न हो, उससे यह अर्थ मत लेना कि आपको सरलता लानी है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि अपनी जटिल ता केवल जाननी है और जटिलता में प्रवेश करन है। जटिलता में प्रवेश का सूत्र है जटिलता के प्रति चित्त की सारी वृतियों का जागरण।

मैंने कल कहा था कि विचार के प्रति साक्षी हों तो स्वतंत्रता आएगी। भाव के प्रति साक्षी हों तो सरलता आती है। विचार के प्रति साक्षी हों तो स्वतंत्रता आती है। जो विचार को जानने लगात है वह विचार से मुक्त हो जाता है, जो भाव को जानने लगात है वह भाव से मुक्त हो जाता है। ज्ञान विचार से मुक्त है, ज्ञान भाव से मुक्ि त है। हमारा भाव जटिल हो, तो हम सत्य को नहीं जान सकते, विचार जटिल हो तो सत्य को नहीं जान सकते। विचार सरल होगा, भाव सरल होगा तो वह तैयारी हो जाएगी हमारे भीतर, जो हमें सत्य जानने के लिए आंख खोल देगी।
इसलिए मैंने दूसरे चरण की बात कही है चित्त की सरलता। कल तीसरे सूत्र की बा त करूंगा—चित्त की शून्यता। तीन ही सूत्र हैं—चित्त की स्वतंत्रता, चित्त की सरलता और चित्त की शून्यता। स्वतंत्रता सरलता और शून्यता को जो साध लेता है, वह स माधि को उपलब्ध होता है।

सप्तम प्रवचन

सत्य की पहली किरण

जैसे आप आज यहां इकट्ठे हुए है, ऐसे ही एक चर्च में एक रात बहुत से लोग इकट्ठे हुए थे। एक साधु उस रात सत्य के ऊपर उन लोगो से बात करने को था।
सत्य के सम्बंन्ध में एक अजनबी साधु उस रात उन लोगों से बोलने को था।
साधु आया, उसकी प्रतीक्षां में बहुत देर से लोग बैठे थे। लेकिन इसके पहले कि वह
बोले उसने एक प्रश्न, एक छोटा सा-प्रश्न वहां बैठे हुए लोगो से पूछा। उसने
पूछा कि क्या आप लोगों में से किसी ने भी ल्यूक का उनहत्तरवाँ अध्याय पढ़ा है... ? जिन लोगों ने पढ़ा है, वे हाथ ऊपर उठा दें। उस हाल में जितने लोग थे, सभी ने हाथ
हाथ ऊपर उठा दिये, केवल एक बूढ़े आदमी को छोड़कर। उन सभी लोगों ने स्वीकृति
दी कि उन्होंने ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय पढ़ा है। वह साधु जोर से हंसने लगा ।
और उसने कहा, तुम्हीं वे लोग हो, जिसने सत्य पर बोलना बड़ा जरूरी हैं। क्योंकि ल्यूक
का उनहत्तरवां अध्याय जैसा कोई अध्याय ही नहीं है।
सिर्फ एक आदमी हाथ नीचे किये बैठा था। साधु जब बोल चुका और सारे लोग जाने लगे तो उसने उस बूढ़े आदमी को जाकर पकड़ा और कहाः "मैं हैरान हूं, तुम जैसा
आदमी चर्च में क्यों आया ? मैंने आज तक सत्य और चर्च का कोई सम्बन्ध नहीं देखा। तूमने हाथ ऊपर नहीं उठाया तो मैं हैरान हो गया। लोग झूठे ही हाथ ऊपर उठा
रहे थे, यह तो ठीक था, इसमें कोई आश्चर्य की बात न थी, लेकिन तुम्हें बिना हाथ
उठाये देख मैं हैरान हो गया। तुमने हाथ क्यों नहीं उठाया ? मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूं। अगर तुम जैसे एकाध लोग भी जमीन पर शेष रहें तो धर्म नष्ट नहीं होगा।" उस आदमी ने कहा "महानुभाव, आप समझने में भूल कर रहे है। मेरे हाथ में दर्द है, इसलिए मैं ऊपर न उठा सका। हाथ तो मैं भी ऊपर उठाना चाहता था। मजबूरी थी, माफ करें। मजबूरी थी, माफ करें। दुबारा आप आयेंगे और हाथ उठावायेंगे तब तक मैं
भी स्वस्थ हो जाऊंगा और हाथ उठाऊंगा।"
सत्य पर मुझे भी यहां बात करनी है। सो मुझे भी ख्याल आया कि आपसे हाथ क्यों न
उठवा लूं? लेकिन फिर यह डर लगा कि हो सकता है किसी के हाथ तकलीफ हो और
वह न उठा पाये और परेशान हो। इसलिए मैं हाथ तो नहीं उठवाऊँगा। और फिर इस

कहानी के कह देने के बाद हाथ उठाना भी मुश्किल है। लेकिन प्रत्येक से यह जरूर कहूंगा कि वह अपने भीतर जरूर हाथ उठा ले और देख ले कि असत्य के लिए उसका
हाथ उठता है या नहीं। जो आदमी जीवन कि खोज में निकला हो और अपने भीतर सच्चा नहीं हो सकता है तो उसकी कोई खोज कभी पूरी नहीं होगी। जो आदमी धर्म को
या परमात्मा को या जीवन के लिए उत्सुक हुआ हो और वह अपने ही प्रति सच्चा नहीं हो तो उसकी खोज व्यर्थ ही चली जायेगी। असत्य के केन्द्र पर खड़ा श्रम सत्य के पाने में समर्थ हो भी कैसे सकता है? फिर ऐसा व्यक्ति चाहे मन्दिरों में जाये या चर्चों में या
मस्जिदो में और चाहे वह कहीं भी भटके—तीर्थों में या पहाड़ो पर, लेकिन यदि वह
अपने प्रति ही झूठा है तो वह कहीं भी जाये सत्य नहीं पा सकेगा।
सत्य की खोज का पहला चरण अपने प्रति सच्चा होना है। और हमें याद भी नहीं रहा है
कि हम अपने प्रति सच्चे हों। शायद हमें पता भी नहीं कि अपने प्रति सच्चे होने का अर्थ
क्या है। और ऐसा भी नहीं है कि अपने प्रति असत्य कोई एक व्यक्ति ही हो। और ऐसा भी नहीं है कोई एक पीढ़ी या एक युग ही ऐया भी नहीं है। किसी एक सदी में ही आकर आदमी अपने प्रति झूठा हो गया हो ऐसा भी नहीं है। हजारों साज से झूठ पाले और पोसे गये हैं और वे इतने पुराने हो गये हैं कि उन पर आज शक करना भी असम्भव सा हो गया है। बहुत दिनों तक जब झूठ प्रचलित होते है तब वे सत्य जैसे प्रतीत होने लगते हैं।
हजारों साज से जब किसी झूठ के समर्थन में बातें कही जाती है हजारो लोग उसका उपयोग करते है तो धीरे-धीरे यह बात ही हम भूल जाते है कि वह झूठ है। वह सत्य प्रतीत होने लगती है। तो यह जरूरी नहीं है कि जो झूठ हमारे जीवन को घेरे होते है वे हमारी ही ईजाद हों। हो सकता है परम्पराओं ने हजारो वर्षो में उन्हें विकसित किया हो।
और चूंकि हमने उन्हें विकसित नहीं किया होता है, इसलिए पता भी नहीं चलता है कि हम किसी झूठ का समर्थन कर रहे है। हमें यह याद नहीं आती है। हमें स्वपन में भी ख्याल नहीं आता है कि कहीं हम अतीत द्वरा छोड़े गये असत्यों में तो नहीं जी रहे हैं। इस भांति बेहोशी से जीना सुविधा और सुरक्षापूर्ण भी होता है। क्योंकि, समाज द्वरा पोषित असत्यो का समर्थन समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा भी लाता है। और ऐसा व्यक्ति किसी भी वीद्रोह, क्रान्ति और परिवर्तन से भी स्वयं का बचाव कर लेता है। लेकिन यह स्मरण रखना जरूरी है कि सुविधा, सुरक्षा और सम्मान
की आड़ में ही परतन्त्रता अपनी जंजीरों को कसती और मजबूत करती है।
सत्य को जाने बिना जीवन में कोई स्वतन्त्रता नहीं है। सत्य ही स्वतन्त्रता है। और सत्य को जो न जान सकेगा, उसके जीवन में आनन्द के झरने भी कभी न फूट सकेगें। सत्य को जो न जान सकेगा, उसका जीवन कभी भी संगीत नहीं बन सकता। वह दुःख में जीयेगा और दुःख में ही मरेगा। अर्थहीनता में व्यर्थ ही उसका समय अपव्यय होगा। उसका जीवन चुक जायेगा और वह जीवन को जानने से वंचित रह जायेगा। इसलिए ही
मनुष्य सत्य को जानना चाहते है और इसलिए तो हम उन दरो पर भटकते है जहां हमें ख्याल है कि सत्य मिल सकेगा। हम जरूर ही प्यासे हैं, नहीं जो मन्दिरों और मस्जिदों में कौन जाता। हमारे भीतर जरूर आकांक्षा है लेकिन आकांक्षा अकेली ही काफी नहीं है,
प्यास अकेली ही काफी नहीं है। हमें अपने भीतर असत्य कि उन दीवारों को भी तोड़ देना
है जो कि हमने खुद ही खड़ी कर ली है। तभी हमारा सत्य से संपर्क हो सकता है। मैंने कहा कि असत्य जो हमें घेरे हुए है, हमारी आज कि ही ईजाद नहीं है। उनके होने कि पुरानी कथा है। हर पीढ़ी करीब-करीब उन्हीं असत्यो को फिर से दोहराती है जिनको
पिछली पीढ़ी ने दोहराया था। उन असत्यो में न कोई नवीनतर है, न मौलिकता,वे सब
पुनरुक्तियां मात्र है। एक पुनराव्रत्ति है जो चलती चली जाती है। शायद यह ऐसा इसलिए है क्योंकि मनुष्य-स्वभाव एक है।

सत्य की पहली किरण

मैंने सुना है कि एक रात किसी बड़े नगर में एक छोटे से गांव का निवासी आया। यघपि वह छोटे-से गांव में रहता था, लेकिन इस बड़े नगर में जब वह युवा था, तब वह भी
शिक्षा लेने आया था। उसके पड़ोस का एक युवक आज भी उसी विघालय, उसी छात्रावास में था, जिसमें वह कभी था। उसे ख्याल आया, कि मैं जाऊं और देखूं शायद
छात्र अब बदल गये होगे, विघालय बदल गये होगे। मैं जब पढ़ता था उस बात को भी

तीस वर्ष जो हो गये होगे। निश्चय ही सब बदल गया । वह गया और उसने उस दरवाजे पर दस्तक दी जिसमें उसके गांव का वह युवक रहता था। दरवाजा खोला गया। वह भीतर गया और उसने जाकर उस युवक से कहाः'बेटे, मैं यह देखने आया हूं कि तीस
वर्ष में यहां क्या-क्या बदल गया है।'
मकान नये हो गये थे। विघालय का भवन बहुत बड़ा हो गया था। जहां थोड़े से विघार्थी
थे, वहां बहुत विघार्थी थे। रास्ते सुंदर बन गये थे। बगीचे बन गये थे। सब-कुछ बदला हुआ था। वह भीतर गया और उसने युवक कि टेबिल पर रखी बाइबिल उठायी।
और उसने बाइबिल के ऊपर का पुट्ठा उघाड़ा। भीतर बाइबिल न थी, भीतर एक उपन्यास था! युवक घबड़ा गया। उसने कहाः'यह किताब मेरी नहीं है। मैं तो किसी पड़ोसी से मांगकर लाया हूं।' यह सुन बूढ़ा हंसने लगा और बोला,'घबड़ाओ मत। हम भी ऐसी किताबें बाइबिल के कवर में छिपा कर ही पढ़ते थे, बेटे, यह तो बड़ी पुरानी कहानी है। इसमें घबड़ाने कि कोई बात नहीं है?' और चारों तरफ नजर डाली तो सामने ही अलमारी थी कपड़ों कि। उसने दरवाजे को खोला और देखा कि अलमारी में एक लड़की छिपी खड़ी है। अब तो वह युवक घबड़ा गया और बोलाः'माफ करिये, यह मेरे दूर के रिश्ते कि बहन है। आयी थी मुझसे मिलने।'
बूढ़ा तो खूब हंसने लगा और बोलाः''बिलकुल भी घबड़ाओ मत। हम भी यही करते और कहते थे। वही पुरानी कहानी है—दी सेम ओल्ड स्टोरी!'
वह बूढ़ा लौट गया आपने गांव। वहां लोगों ने उससे पूछाः'क्या देख आये हो?' उसने कहाः'जो देखा,उससे मैं बहुत हैरान हो गया हूं। मकान बदल गये हैं, रास्ते बदल गये हैं, बगीचे नये हो गये हैं, लेकिन कहानी पुरानी की पुरानी हैं। आदमी वही का वही है।
वही सब मैं देखकर आया हूं जो मेरी जिन्दगी में था तीस वर्ष पहले वही आज भी हैं।'
वह बूढ़ा आदमी बहुत हिम्मत का रहा होगा। बूढ़े आदमी ऐसी बातें कभी स्वीकार नहीं करते। वे तो कहते है अब आदमी बिगड़ गया है। कहां उनका जमाना, कहां आज का
जमाना? लेकिन सत्य यही है कि जमाने सब वही हैं। किन्तु बूढ़े भूल जाते है कि अपने जमाने में वे कैसे थे। अन्यथा सचाइयां एक ही जैसी हैं। हजारों वर्षो से आदमी पनुरुक्ियां कर रहा है। पुरानी ही बीमारियां बार-बार होती है। पुराने ही रोग दुहराते है। पुरानी बात फिर होती है। सब पुराना होता है। हम भी जिन असत्यो से घिरे है वे कोई नये नहीं है। हजारो वर्षो सक वे असत्य चल रहे है। एक आदमी के ऊपर इनकी ईजाद का जिम्मा नहीं है। पीढ़ियों दर पीढ़ियों ने उन्हें विकसित किया है और एक-एक आदमी को यह पता भी नहीं चलता है कि वह जिन चीजों से बंधा है वे सच हैं या झूठ? जब एक मन्दिर के सामने कोई हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाता है तो जो आदमी हाथ जोड़
कर खड़ा है उसने इस मन्दिर को नहीं बनाया और जिस भगवान के सामने वह हाथ जोड़ कर खड़ा है उसे भी उसने नहीं गढ़ा है। उसे तो बपौती में यह मन्दिर मिला है और ये भगवान मिले है। और अनजान अवस्था में सिखायी गयी शिक्षाएं मिली है, भय मिले है और प्रलोभन मिले है। उन्हीं शिक्षाओं में बंधा वह पूजा का रहा है, प्रार्थना कर रहा है। उन्हीं भय और प्रलोभनों से घिरा वह भगवान का स्मरण कर रहा है। न उसने भगवान का कोई पता है, न भगवान कें मंदिर का। उसे तो यह भी पता नहीं है कि जिस मन्दिर के सामने वह खड़ा है वह सत्य का है या असत्य का? उसे तो वस्तुतः: कुछ भी पता नहीं है।वह नहीं जानता है कि जिस परमात्मा को वह नमस्कार का रहा है वह परमात्मा है और है भी या कि बस

उसकी कल्पना मात्र ही है? उसे यह भी ज्ञात नहीं है कि वह जो कर रहा है उसमें कुछ अर्थवत्ता भी है या सब व्यर्थ और मूढ़तापूर्ण है? उस बेचारे ने तो अस उसे जो कहा गया है उसे स्वीकार का लिया है। उसकी यह अंधी स्वीकृति ही उसका बंधन बन गयी है। और इस अंधी स्वीकृति में ही असत्य के भवन का आधार है। यह अतर्क्य स्वीकार ही परतन्त्रता है। और आश्चर्य है कि ऐसी जड़ता को आस्तिकता कहा जाता है!

जिस सत्य को मैं नहीं जानता हूं, उसकी स्वीकृति से बड़ी और कोई मूढ़ता नहीं है।

और मूढ़ता आस्तिकता कैसे हो सकती है? नहीं! नहीं ! नहीं! मूढ़ता आस्तिकता नहीं है। वह आत्मघात है। सत्य के पक्ष में जिसे खड़ा होना है, उसके लिये मार्ग स्वीकार नहीं, साक्षात्कार है। इसलिए मैं आपसे पहली बात यही कहना चाहता हूं कि जो व्यक्ति, समाज और परम्परा के द्वारा कही गयी बातों को बिना सोचे-विचारे और बिना

स्वंय जाने स्वीकार कर लेता है, वह सदा के लिए असत्य के पक्ष में खड़ा हो जाता है।

सत्य वही है जो स्वंय जाना जाता है। दूसरे का ज्ञान मेरा सत्य नहीं बन सकता है।

सत्य सदा ही व्यक्तिगत अनुभव है, वह समष्टि की धारणा नहीं है। वह जब भी है मेरा है। दूसरे का होते ही वह मेरे लिए असत्य है। इसलिए सत्य का न कोई शास्त्र है न

परम्परा है। उसकी उपलब्धि सदा ही मौलिक है। वह प्रत्येक बार नया है। वह प्रत्येक के लिए नया ही आविर्भाव है, नया ही अवतरण है। इसलिए जिसे उसके निकट पहुंचना है

उसे अंध-स्वीकार में नहीं पड़ना चाहिए। उसकी आंख सदा खुली होनी चाहिए और

उसका सोच-विचार सजग होना चाहिए। उसका तर्क सचेत होना चाहिए। उसका चित्त

कभी भी स्वीकृति के लिए चुपचाप राजी नहीं होना चाहिए। उसके भीतर विचार और संदेह का विकास होना चाहिए। तो ही वह बच सकेगा। अन्यथा, असत्य उसे पकड़ लेगा और वह उसमें घिर जायेगा। और असत्यो में घिर जाना इतना सन्तोषदायी है,

जिसका कि कोई हिसाब नहीं। असत्यो में घिर जाना इतनी तृप्ति देता है जिसका कोई अंत नहीं। सत्य को पाना तो एक तप है। सत्य को पाना तो एक तपश्चर्या है। सत्य को

पाना एक श्रम है। और असत्य को? असत्य को तो हम निद्रा में ही स्वीकार कर लेते है।

उसके लिए तो जागना भी आवश्यक नहीं है,वहां न कोई श्रम है, न कोई तप है। सिर्फ हमारी स्वीकृति भर चाहिए। और स्वीकृति अगर हमारे अहंकार को तृप्ति देती हो, संतोष

देती हो तो फिर कहना ही क्या है! यदि मैं आपसे कहूं कि आप अमर है तो आपका मन

एकदम मानने को राजी हो जायेगा। इसलिए कि आपका मन मरने से डरता है। मृत्यु का भय है, इसलिए आत्मा की अमरता को स्वीकार करने के लिए कोई भी राजी हो जायेगा।

आत्मा की अमरता को स्वीकार करने में कोई सत्य का अनुभव हुआ हो ऐसा नहीं है, बल्कि हमारे भीतर मृत्यु का जो भय था उसको ऐसे छिप जाने के लिए सस्ती ओट मिल जाती है। ऐसे हम मृत्यु-भय से एक अस्थायी बचाव और पलायन कर लेते है।

इसलिए जो लोग मौत से जितना डरते है, जितने भयभीत होते है,उतने ही आत्मा की अमरता के विश्वासी हो जाते है। जो कौम जितनी मृत्यु से भयभीत होती है,उतनी ही

धार्मिक हो जाती है। यह धर्म असत्य है,क्योंकि धर्म का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

धर्म का सम्बन्ध है अभय से। भय (फिअर) से धर्म का क्या नाता? धर्म का सम्बन्ध

है अभय (फियरलेसनेस)से। लेकिन हमारी ये स्वीकृतियां हमारे भय पर खड़ी होती है। जिन असत्यों से हम घिरते है उनसे हमें झूठी सांत्वनाएं (कोनसोलेसन) मिलती है।

और झूठी और ये सस्ती सांत्वनाएं ही असत्यो से बांधने वाली जंजीरे सिद्ध होती हैं।

सत्य की पहली किरण

एक परिवार में कोई चल बसता है और लोग जाकर कहते है : आत्मा अमर है। रोओ मत, घबड़ाओ मत ! तो उससे बड़ा संतोष मिलता है, अड़ी सत्वाना मिलती है। और ये जो लोग कह रहे है इनके घर में जब कोई चल बसेगा तो ये भी रायेंगे और जिसके घर में इन्होने जा के समझाया था वही इनको भी समझायेगे के रोओ मत, घबड़ाओ मत। शरीर ही मरता है, आत्मा तो अमर है! इन्होने उसे जाकर सन्तावना दी थी तो वह इन्हे आकर सन्तावना देगा। न उसे आत्मा कि अमरता का कोई पता है और न इन्हे। लेकिन

आत्मा कि अमरता एक संतोष बन गयी, एक सांत्वना बन गयी। और तब इस असत्य

से चिपटे रहने का हमें आधार मिल जाता है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आत्मा अमर नहीं है, मैं तो बस यह कह रहा हूं कि जो बिना जाने इन बातों से चिपट जाता है, वह असत्य से चिपट जाता है। लेकिन जानकर, देखकर, समझकर, अनुभव से जिसके जीवन में ये प्रतीतियां उपलब्ध होती है, वह सत्य को उपलब्ध होता है। हमारी पहुंच

(अपरोक्ष), हमारी दृष्टि यदि अंधे स्वीकार की है तो हम कभी भी असत्य के ऊपर नहीं

उठ सकते।

न केवल हम जीवन और जगत के सम्बन्ध में असत्यों को स्वीकार करते है, हम अपने सम्बन्ध में भी असत्यों को स्वीकार कर लेते हैं। सुखद है वे असत्य। अड़े प्रीतिकर मालूम होते है। आदमी से कहो कि भगवान ने मनुष्य को सभी प्राणियों से श्रेष्ठ बनाया है। ओह! और वह कितनी खुशी से इसे स्वीकार कर लेता है। अहंकार को ऐसे बड़ी तृप्ति मिलती है। लेकिन क्या कभी और पशु-पक्षियों से भी इस सम्बन्ध में गवाही ली गयी है? क्या कभी उनसे भी पूछा गया है कि तुम्हारा ख्याल क्या है?आदमियों ने एक तरफा निर्णय कर लिया कि हम सर्वक्षेष्ठ है। पुरुषों से कहो कि पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ है तो सभी पुरुष सहज ही राजी हो जाते है। और स्त्रियों की गवाही लेने की तो कोई जरूरत ही नहीं है। भारतीयों से पूछो तो वे कहेंगे कि जमीन पर हमसे ज्यादा कोई श्रेष्ठ कौम नहीं है। यही पवित्र भूमि है। यहीं सदा भगवान जन्म लेते हैं। इसके लिए कोई भारतीय संदेह पैदा नहीं करता। क्योंकि सभी के अहंकार की इसमें तृप्ति होती है। जर्मनी के निवासी भी स्वयं के सम्बन्ध में ऐसा ही मानते हैं और चीन के लोग भी। सारे देशों के लोग ही ऐसा मानते है। अहंकार कि लीला विचित्र है। वह कहता है : 'मैं जगत-गुरु हुँ। मैं ही सर्वश्रेष्ठ हुँ।' लेकिन 'मैं 'में तो उसके दर्शन भी हो सकते हैं, 'हम' में तो उसके दर्शन ही दुर्लभ को जाते है। इसलिए

अहंकार के सबसे घातक रूप सदा 'हम' के होते हैं। हम भारतीय, हम जर्मन, हम इंग्लिश, हम रूसी, हम हिंदू, हम जैन, हम मुसलमान। और हम मनुष्य!

जब डरविन ने पहली बार कहा कि आदमी भी पशुओं में से एक पशु है तो सारी दुनिया में डारविन का विरेध हुआ।

इसलिए नहीं कि उसने जो कहा था वह असत्य था,बल्कि इसलिए कि उससे हमारे अहंकार को बड़ी चोट पहुँची थी।

हम प्रभु के पुत्र थे और उस नासमझ ने कह दिया कि पशुओं के पुत्र है। बहुत क्रोध आया, बहुत गुस्सा आया। हजारों साल से हम मानते थे कि सूर्य जमीन का चक्कर लगता है। फिर आये कापरनिकस और गैलीलियो और उन्होंने कहाः 'नहीं, जमीन ही सूरज का चक्कर लगाती है।'

सारी दुनिया में विरोध हुआ। चर्चो में धर्म-पुरोहितों ने कहाः 'झूठी है यह बात, क्योंकि भगवान ने आदमी अपनी शक्ल में बनाया। पृथ्वी को दुनिया का केन्द्र बनाया और आदमी पैदा किया। सूरज ही चक्कर लगाता है हमारी जमीन का। जमीन कसे उसका चक्कर लगा सकती है। हम इस जमीन पर रहते हैं। और मनुष्य जिस जमीन पर रहता है, वह जमीन सूरज का चक्कर लगायेगी? नहीं, सूरज ही हमारा चक्कर लगाता है।'

जमीन केन्द्र है दुनिया का,क्योंकि मनुष्य का अहंकार बिना इसे माने तृप्त नहीं होता है। और केन्द्र होकर भी क्या वह तृप्त होता है? वह तो शायद अनंत अतृप्ति का ही केन्द्र है! उसकी तृप्ति तो कभी भी नहीं है। बर्नार्ड शाँ ने एक बार कह दिया था कि गलत है यह बात कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है। नहीं! बिलकुल नहीं! सूरज ही पृथ्वी का चक्कर लगाता है। किसी ने पूछा किस आधार पर कहते हैं आप? अब तो सब तरह से प्रमाणित हो गया है कि जमीन ही चक्कर लगाती है? तो बर्नार्ड शाँ ने हँसकर कहा था कि इसी आधार पर कहता हूँ कि मैं बर्नार्ड शाँ इस

पृथ्वी पर रहता हूँ। और जिस पृथ्वी पर 'मैं' रहता हूँ वह किसी का चक्कर कैसे लगा सकती है?

मजाक में उसने यह बात कही थी। लेकिन पूरी आदमियत पर ही हो गया यह व्यंग्य। आदमी किसी भाँति रो धोकर डार्विन, कापरनिकस और गैलीलियो को मानो को राजी ही हो पाया था कि मार्क्स और फ्रायड ने और भी सांघातिक चोटें उसके अहंकार को पहुँचा दीं। मार्क्स ने उसके सारे धर्म और आध्यात्मिक कता के पीछे अर्थव्यवस्था को खोज लिया और फ्रयाड ने कहा कि मनुष्य के जीवन का केन्द्र यौन (सेक्स) है। इन तथ्यों ने तो और भी बेचैनी खड़ी कर दी। हजारों वर्षो का खड़ा मानचीय अहंकार का महल ही जैसे धाराशायी हो गया था। मनुष्य को ऐसा लगा कि जैसे उससे इसका सब-कुछ ही छीन लिया गया है। आह!

वह तो मानता था कि भीतर राम (गाड) हैं, और यह फ्रयाड कहता है कि राम नहीं, काम (सेक्स) है! कहाँ तो आदमी स्वंय को सब देवताओं से थोड़ासा ही नीचे मानता था और अब वह पशुओं से थोड़ा भी ऊँचा नहीं रह गया था। मनुष्य एकदम दिवालिया हो गया था और वह इसे मानने को कैसे राजी को सकता था? उसने बहुत विरोध किया...बहुत हाथ-पैर फड़फड़ाये। लेकिन तथ्यों के साथ यदि खराबी है तो बस एक यही कि वे हमारे मनोनुकूल होने को बाध्य नहीं किये जा सकते हैं। लेकिन तब भी हम एक काम कर सकते हैं? हम उनके प्रति आँख मूँद सकते हैं और अपने मनोनुकूल सपने देख सकते हैं। आदमी सदा से यही करता आया है। उसकी यह शत्रु को देख रेत में मुँह छिपा लेने की शुतुरमुर्ग जैसी आदत बहुत पुरानी है। शुतुरमुर्ग शायद ऐसा भी न करता हो और हो सकता वह केवल कवि कल्पना हो, लेकिन मनुष्य तो निश्चय ही ऐसा करता है। फ्रायड यदि आत्मा या परमात्मा की कोई बात कहता या पवित्र प्रेम की कोई कात करता तो उसे ऋषियों की लम्बी श्रृंखला में एक आदरणीय स्थान भी मिल सकता था। लेकिन उस पागल ने अपने ही हाथों अपना स्थान खो दिया तो बेचारा आदमी इसमें क्या कर सकता है।

मनुष्य तो बस उन्हीं बातों को स्वीकार करता है जिससे उसके अहंकार को तृप्ति मिलती है। और उसका यह रोग बिलकुल सनातन है। और इसका परिणाम यह हुआ कि आदमी ने अपने आसपास परिकथाओं (माइथ)का एक कल्पना-जाल बुन लिया है और उस जाल में ही वह विश्वास किये जाता है। और वह जाल इतना झूठा है कि जो भी उस जाल में घिर जाता है, वह सत्य के प्रति आँखें भी नहीं खोल पाता है। ऐसा करने से वह खुद ही डरेगा,

क्योंकि सत्य की तरफ आँखें उठाना इस जाल का टूटना बन जायेगा। किन्तु जब तक हम मनुष्य के जीवन के तथ्यों
को सीधा न जान लें, तब तक हम जीवन के सत्य को भी
नहीं जान सकते हैं।

सत्य को जान लेने के पहले जीवन के तथ्यों को जान लेना जरूरी है। क्योंकि जो जीवन-तथ्यों(फेक्टस) को ही नहीं जानता, वह जीवन-सत्य(ट्रुथ) को कैसे जान सकता है?

और फिर वे तथ्य कितने ही कड़वे,कितने ही तीखे, कितने ही जलन पैदा करने वाले क्यों न हों, उन्हें जान बहुत जरूरी है। और कल्पनाएँ कितनी ही सुखद,कितनी ही मधुर, कितनी ही प्रीतिकर क्यों न हों, वे कल्पनाएँ ही है। उन पर चढ़कर कोई सत्य की यात्रा नहीं कर सकता है।

सपनों की नावों में सागर नहीं तैरा जा सकता है। और न ही इन्द्रधनुषों के सेतुओं से परमात्मा तक पहुचाँ जा सकता है। हाँ, यह हो सकता है कि शब्द-कोश में 'सागर' है, सपनों की नावों में उसे पार किया जा सके और शास्त्रों में जो 'परमात्मा' है, उस तक इन्द्रधनुषों से ज्यादा ठोस नहीं है। और आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि सपने कहीं पहुँचाते तो नहीं, लेकिन कहीं पहुँचने से रोक अवश्य लेते हैं।

मनुष्य के जीवन में जो सबसे बड़ी दुर्घटना घट गयी है वह यही है कि उसने अपने आसपास कल्पनाओं का एक ऐसा जाल बुन लिया है जो उसे कदम-कदम पर रोकता है और सत्य की ओर बढ़ने में बाधा डालता है। लेकिन इसे तोड़ने में भी उसे बड़ी झिझक होती है, क्योंकि वह तो उसे स्वप्न नहीं, सत्य ही मानता है। और जिसे वह सत्य मानता है, उसे वह और बुनता ही चला जाता है। और फिर धीरे-धीरे
स्वयं ही उस जाल में खो जाता है। और फिर पता ही लगाना मुश्किल हो जाता है कि वह स्वयं ही कौन है?

सत्य की पहली किरण

एक सम्राट के सम्बन्ध में मैंने सुना है कि वह रोज एक घंटे के लिए अपने भवन के एक कमरे में ताला लगाकर भीतर बन्द हाक जाता था। उसके करिवार का प्रत्येक व्यक्ति उत्सुक था, उसके नगर के निवासी उत्सुक थे, उसकी रानियाँ उत्सुक थीं, उसके दरबारी उत्सुक थे, उसके वजीर उत्सुक थे कि आखिर वह वहाँ करता क्या है! वहाँ वह क्या करता है इसकी उत्सुकता सभी को थी। लेकिन कभी कोई उस द्वार के भीतर नहीं जा सका था। उसकी चाबी वह सम्राट सदा अपने ही पास रखता था। आखिर लोगों की उत्सुकता चरम सीमा पर पहुँच गयी और सारे घर के लोगों ने मिल कर एक षड़यन्त्र किया कि देखें वह वहाँ करता क्या है। उससे पूछते थे और वह हँस देता था, कभी कुछ बताता नहीं था। आखिर जब घर के सारे लोग, रानियाँ और वजीर और उसके सारे मित्र और परिजन

सहमत हो गये तो उन्होंने उस दीवार में छेद किया...रातों रात ताकि कल सुबह जब वह भीतर जाये तो वे उसमग से झाँक कर देख सकें कि वह वहाँ करता क्या है। और फिर दूसरे दिन जिसने भी झाँककर देखा, वह छेद से जल्द ही पीछे हट आया था। प्रत्येक ने कहाः 'अरे! बड़ी अजीब बात है! सम्राट यह क्या करते हैं?' सभी ने झाँककर देखा और जल्दी से लोग छेद से अलग हट आये।

वहाँ वह क्या करता था? कुछ भी नहीं, बस वहाँ जाकर वह अपने सारे वस्त्र निकाल कर फेंक देता था और नग्न खड़ा हो जाता थाः "यह हूँ मैं। वह मैं नहीं था जो अभी कपड़े पहने हुए था।" और हाथ जोड़कर परमात्मा से पुनः-पुनः कहता थाः "यह मैं हूँ। वह कोई और था जो उन वस्त्रों में छिपा था। वह झूठा आदमी था। क्योंकि सत्य को वस्त्रों की क्या आवश्यकता है? तो उन कपड़ो को पहने मैं तेरी प्रार्थना कैसे करूँ जो कि सत्य नहीं थे। वे मेरे अहंकार की सजावट तो थे, लेकिन मेरी सचाई न थे। मैं तो यह हूँ

नंगा आदमी...बिलकुल नग्न...! नग्न होकर ही मैं तेरे पास आ सकता हूँ। क्योंकि सत्य हुए बिना कोई तेरे पास कैसे आ सकता है?"

वह सम्राट निश्चित ही बड़ा अदभुत व्यक्ति रहा होगा, क्योंकि स्वंय के समक्ष स्वयं के नग्न सत्य को जानने से बड़ी और कोई साधना नहीं है। और न ही उससे बड़ी कोई तपश्चर्या है। और सत्य के प्रत्येक खोजी को ही इस तपश्चर्या से गुजरना पड़ता है। जो भी सत्य के निकट जाना चाहते हैं, उन सभी को स्वयं को स्वयं की परिपूर्ण नग्नता

(नेकेडनेस)में जानना होता है। इस साक्षात्कार से बचा नहीं जा सकता है। यह तो अत्यंत अनिवार्य चरण है। और जो इससे बचना चाहता है, वह अंततः स्वयं से ही वंचित रह जाता है।

स्मरण रहे कि जो अपने वस्त्रों और आवरणों को भी परमात्मा के मन्दिर तक ले जाना चाहता है, वह कभी उस मन्दिर के निकट भी नहीं पहुचँ पाता है। क्योंकि वस्त्रों और आवरणों के अतिरिक्त उसके मार्ग से भटकाने वाली और कोई वस्तु ही नहीं है। वह तो अत्यंत निकट है, लेकिन हमारे वस्त्र ही हमें उससे दूर किये हुए हैं। और क्या हमें ज्ञात नहीं है कि हमारे वस्त्र मात्र झूठे हैं...असत्य हैं? क्या जैसे हमारे वस्त्र हैं, ठीक उनसे विपरीत और भिन्न ही हम नहीं हैं? वस्त्र तो सौन्दर्य के हैं, और क्या भीतर कुरूपता नहीं है? असल में उस कुरूपता को ही ढाँकने को तो सौन्दर्य के वस्त्रों को ओढ़ना पड़ता है। वस्त्र को प्रेम के हैं,

लेकिन भीतर घृणा है। घृणा को छिपाने के लिए ही तो प्रेम के वस्त्र खरीदने पड़ते हैं। वस्त्र तो आनन्द के हैं और भीतर दुख है। वस्तुतः दुख विस्मरण के लिए ही तो आनन्द के वस्त्र आविष्कृत करने होते हैं। मनुष्य बड़ी पहेली है। वह जैसा बहार है, उससे ठीक उल्टा भीतर है! जब कि जैसे हम भीतर हैं वही हमारी तथ्यता (फेक्टूयालीटी) है। इस तथ्यता को ही उसकी पूर्णता में जानने को मैं कह रहा हूँ। क्योंकि उसे जानकर ही उससे ऊपर उठा जा सकता है।

वस्तुतः तो उसे जानना ही उससे ऊपर उठ जाना है। लेकिन उसके प्रति आँखें बन्द करने से तो यह नहीं हो सकता है।

उसे हम जानें तो ही उसे विदा किया किया जा सकता है। उसे भूले रहना, उस पर विजय का कोई मार्ग नहीं है। पलायन (एसकेप) तो बस निद्रा है,मूर्च्छा है। वह क्रान्ति नहीं है। वह आत्मा-परिवर्तन नहीं है। जिसे बदलना है, जिससे मुक्त होना है, उसे तो जानना ही होता है। क्योंकि उसका ज्ञान ही उसके मूल कारणों (केसूआलिटी) को उघाड़ता है और जिस तथ्य

की जड़ों (रूट) को हम जान लेते हैं, हम उनके मालिक हो जाते हैं। बिना मूल को जाने हम जो भी करते हैं वह व्यर्थ ही नहीं,अनर्थ भी होता है।

एक आदमी बीमार था। उसकी बीमारी बड़ी अजीब थी। और कोई चिकित्सक उस बीमारी का ठीक-ठीक निदान नहीं कर पाता था। उस आदमी की आँखें बहार निकली पड़ती थीं...कान में झनझन कि आवाज होती थी और चक्कर खाता हुआ मालूम पड़ता था। वह बहुत बड़ा धनपति था सो देश के जो बड़े-से-बड़े चिकित्सक थे, वे उसके पास गये। किसी ने कहा: "तुम्हारी आँखें कमजोर पड़ गयी हैं...चश्मे की जरूरत है।" उसने चश्मा लगाना शुरू किया, लेकिन बीमारी जहाँ थी वहीं रही और उल्टे उसकी आँखें खराब होने लगीं। दूसरा चिकित्सक उसकि पास गया। किसी ने कहा: 'तुम्हारे दाँत खराब हो गये हैं...सब निकाल देने पड़ेगें।' उसके सारे दाँत निकाल दिये गये। लेकिन बीमारी जहाँ थी वहीं रही। किसी ने कहा, तुम्हारे पेट में खराबी है...। उसके एपेन्डिसाइटिस का भी आपरेशन कर दिया गया, लेकिन बीमारी जहाँ थी वहीं रही। वह परेशान हो गया, लेकिन बीमारी हटती ही नहीं थी। आखिर अन्तिम चिकित्सककी बारी आयी। चिकित्सक ने उसकी जाँच कि और कहा कि बीमारी का कोई कारण नहीं मिलता है, इसलिए बीमारी ठीक नहीं हाक सकती। मैं तुम्हें बताये देता हूँ कि तुम व्यर्थ ही परेशान न होओ। तुम छह महीने से ज्यादा जिन्दा नहीं रह सकोगे। मैं तुम्हें सच्ची बात कह देता हूँ। तुम दाँत निकलवाओ या आँखें निकलवाओ, तुम्हें जो भी निकलवाना है निकलवाओ, पर तुम बीमारी से मुक्त नहीं हो सकोगे। बस तुम्हारे जीवन के छह महीने और शेष हैं।

उस आदमी ने डाक्टर को धन्यवाद दिया और कहा, 'आपने बड़ी कृपा की जो सत्य मुझसे कह दिया।' जब यह तय हो गया कि छह महीने से ज्यादा नहीं बचना है तो उसने एक बड़ा भवन खरीदा...बहुत सुंदर गाड़ियाँ खरीदीं...जो भी उपलब्ध था भोग के लिए उसने खरीद लिया। उसने सोचा अब जब कि छह महीने ही जिन्दा रहना है तो ठीक से ही जी लूँ। उसने देश के सबसे बड़े दर्जी को आज्ञा दी कि उसके लिए २०० सूट तैयार किये जायें श्रेष्ठतम वस्त्रों के। अब रोज नये कपड़े ही पहनूँगा।

क्या जरूरत है कि पुराने कपड़े दोहराऊँ?

उस दर्जी ने नाप लिया और सारा नाप आपने सहयोगी को लिखवाया। गले का नाप लिया और कहा लिखोः 'सोलह!' उस धनपति ने कहाः 'नहीं मैं हमेशा पन्द्रह का ही कालर पहनता हूँ।' यह सुन उस टेलर ने कहाः 'आप पन्द्रह नहीं, जितने का चाहें उतने का पहनिये, लेकिन पन्द्रह का आप पहनेंगे तो आँखें बहार को निकली मालूम पड़ेंगी, सिर घूमता मालूम पड़ेगा...चक्कर आते मालूम पड़ेंगे। पन्द्रह का नहीं, जितनी आपकी मर्जी हो उतने का पहनिये!'

वह धनपति तो यह सुन आवाक ही रह गया और फिर कहाः 'क्या कहते हो?' मैं हमेशा से पन्द्रह का ही पहनता हूँ और मेरी आँखें भी बहार निकली मालूम पड़ती हैं, मेरे कान भी झनझनाते हैं और मुझे चक्कर भी आते हैं।' दर्जी बोला 'आयेंगे ही।कालर जब बहुत कसा हो तो यह होनेवाला ही है।'

वह धनपति अभी जिन्दा है! यह बात हुए तीस साल हो गये हैं। उस आदमी ने ही मुझसे यह घटना कही है। कोई चिकित्सक उसे ठीक नहीं कर सका था। क्योंकि बीमारी उसकी वहाँ नहीं थी जहाँ चिकित्सक खोजते थे। आदमी की बीमारी भी वहाँ नहीं है जहाँ पुरोहित उसे बताते हैं, जहाँ चिकित्सक उसे समझाते हैं, बल्कि उनकी चिकित्सा उसे और बीमार बनाती गयी है। आदमी की बीमारी बहुत सरल व सीधी है। लेकिन चिकित्सक ही दृष्टि में वह आ नहीं सकती है। क्योंकि जो लोग शास्त्रों, शब्दों और सिद्धातों की जटिलताओं में वह आ नहीं सकती हैं, वे सीधी और सरल बात देखने में असमर्थ ही हो जाते हैं। जीवन के सरल तथ्यों को देखना भूल ही जाते हैं। जो कठिन नहीं है, जो जटिल नहीं है, वह उन्हें दिखायी ही नहीं पड़ता है। उसमें उनके लिए कोई चुनौती ही नहीं होती है। और जीवन सदा सरल है। जीवन के तथ्य सदा सीधे हैं। इसलिए शास्त्रीय बुद्धि जीवन से निरन्तर दूर से दूर होती जाती है। फिर जीवन और स्वंय के बीच सिद्धान्तों की इतनी बड़ी दीवार खड़ी हो जाती है कि उसके पार देखना असम्भव ही हो जाता है। शास्त्र और सिद्धांत कभी भी पारदर्शी (ट्रांसपेरेट) नहीं होते हैं!

शास्त्र, बुद्धि-जो कि अबुद्धि का ही दूसरा नाम है, जो निदान करती है और जो उपचार करती है उससे और नयी बीमारीयाँ दी हैं कि परमात्मा भी आश्चर्य करता होगा, क्योंकि वह स्वंय जो नहीं दे पाया था, वह तथाकथित बुद्धिमान ने स्वंय ही ईजाद कर ली हैं! शास्त्रीय बुद्धि ने मनुष्य के अज्ञान को बड़ी सुरक्षा प्रदान की है। और यह उसने किया है तथ्यों से पलायन करने की विधि द्वारा। मनुष्य में तथ्यों के प्रति असंवेदनशील होने की क्षमता विकसित करके यह किया गया है। और जो भी व्यक्ति तथ्यों के प्रति असंवेदनशील (इनसेन्सेटीव) है, वह सहज ही जीवन के प्रति जड़ता, अंधेपन और बधिरता को उपलब्ध हो जाता है। मनुष्य जाता है शास्त्रों और गुरुओं के पास अपनी समस्याओं के सुलझाव के लिए और शास्त्र और गुरु उसकी समस्याओं को कल्पनाओं, सिद्धातों और अनुमानों के जाल और धुएँ में छिपा देते हैं। ऐसे वह केवल भ्रममें ही पड़ता है। 'समस्याएँ अपनी जगह ही बनी रहती हैं और आँखों से ओझल होने के कारण और भी विकृत और विक्षिप्त रूप ग्रहण करती हैं। उनके सुलझाव के लिए प्रस्तावित कल्पनाएँ और भी नयी समस्याएँ खड़ी कर देती हैं।

मान लें एक व्यक्ति अति-काम (सेक्स) से पीड़ित है। शास्त्र उससे कहेंगेः आत्मा तो परम पवित्र और शुद्ध बुद्ध है। वह तो निर्विकार और निष्काम है। तू उसका ही ध्यान कर... उसका ही स्मरण कर... उसमें ही रमण कर। या कहेंगेः राम में मन लगा तो फिर काम कहाँ बचेगा? राम में मन नहीं है, इसलिए काम है! ऐसी बातें सुनने में भी अच्छी लगती है और काम-पीड़ित चित्त स्वंय भी यह मानने को आतुर होता है कि वह तो निष्काम है, निर्विकार है, वह तो स्वंय परमात्मा है। आह! और वह उन्हीं सपनों में खोने की कोशिश में पड़ जात है। इससे काम से मुक्ति नहीं होती, बल्कि और भी कुरूप और दमित रूपों में वह प्रवाहित होने लगता है। वह तो और भी छिपा हुआ घाव बन जाता है और जितना ही वो दुखता है, उतने जोर से राम का जप बढ़ता जाता है। ऐसे एक पागलपन पर दूसरा पागलपन और सवार हो जाता है। काम का अन्तर्जप तो चल ही रहा था और उसके ही ऊपर राम का जप और चलने लगता है। इस सबसे चित्त स्वस्थ नहीं, और अस्वस्थ और विक्षिप्त ही होता है। जिन बातों के स्मरण या चिन्तन से बीमारी का कोई भी सम्बन्ध नहीं है, उनका स्मरण और चिन्तन घातक ही सिद्ध हो सकता है। ऐसे अध्ययन, मनन और निदिध्यासन से केवल स्वंय को मूर्च्छित किया जा सकता है, स्वंय को भुलाया जा सकता है और उन तथ्यों को छिपाया जा सकता है जो कि पीड़ादायी थे। लेकिन तथयों को भुलाना पाना कोई मार्ग है? इससे ज्यादा अवैज्ञानिक और मूढ़तापूर्ण तो और कोई धारणा नहीं तो सकती। तथ्यों से पूर्णतया परिचित होना जरूरी है। उन्हें ढाँकना नहीं, उघाड़ना आवश्यक है। उनसे भीगना नहीं, उनके प्रति जागना है।

जीवन जैसा है...उसे वैसा ही...बिलकुल वैसा ही जानना है। जीवन का उसके पूर्ण निर्वस्त्र-पूर्ण नग्नरूप में साक्षात्कार करना है। और यह निरीक्षण(ओजरवेशन) अपरोक्ष(इमीजिएट) ही हो सकता है। शास्त्रों और सिद्धान्तों को बीच में नहीं लिया जा सकता है। उनके बीच में लेते ही जीवन को वस्त्र मिल जाते हैं और सब वस्त्र झूठे हैं। क्योंकि वे नग्न तथ्यों को छिपाने के लिए ही आविष्कृत किये गये हैं। निरीक्षण चाहिए सीधा (डाइरेक्ट) और बिलकुल शुद्ध। बीच में कुछ भी हो तो निरीक्षण अशुद्ध हो जाता है। उससे आँखें फिर वही नहीं देखती हैं 'जो है', बल्कि वह देखने लगती हैं जो कि 'होना चाहिए'। और देखना है उसे 'जो है' (देट वीच इज) उसे नहीं जो 'होना चाहिए' (देट वीच इज आउट टू वी)। 'जो है', वही तथ्य है। 'जो होना चाहिए', वह सब मनुष्य निर्मित कल्पनाएँ और आकांक्षाएँ हैं। और आश्चर्य जो यही है कि उसके ही कारण वह, वह नहीं हो पाता है जो कि हो सकता है। 'जो है', उसके ज्ञान से 'जो होना चाहिए'

वह सहज ही फलित होता है। 'जो होना चाहिए', उसकी कल्पनाओं और सपनों में खोये रहने से वही नहीं जाना जा सकता है जो कि 'है'। और उसके जाने बिना-उसके प्रति जागे बिना जीवन में न क्रान्ति सम्भव है, न रूपांतरण, न कोई ऊर्ध्वगमन।

तथ्य के अतिरिक्त सत्य का कोई द्वार ही नहीं है-कोई मार्ग ही नहीं है। इसलिए जब भी कोई व्यक्ति स्वंय की तथ्यता (फेक्टूयलिटी) के साक्षात् के लिए तत्पर हो जाता है, तभी उसके जीवन में एक आमूल क्रान्ति का प्रारम्भ सदा ही यही है। तथ्यों का दर्शन-वास्तविक तथ्यों का निरीक्षण-तथ्यता का सम्प्रग साक्षात् ही व्यक्ति को उस ठोस भूमि पर खड़ा करता है, जो कि जीवन की जड़ें हैं। और जीवन की जड़ों को जान लेना जीवन-क्रान्ति के सूत्रों को उपलब्ध हो जाना है। यह ज्ञान, यह बोध ही फिर क्रान्ति आरोपित नहीं होती है। वह जो सहज स्फुरणा ही, सहज रूपान्तरण ही...मौन और शांत परिवर्तन

ही होती है। जैसे बीज से अँकुर फूटता है... अज्ञात में शांत और निस्तब्ध, ऐसी ही वह क्रान्ति है। जैसे सूर्योदय के साथ ही बिना किसी पगध्वनि के पृथ्वी से अंधकार और निद्रा विदा हो जाती है और पक्षी गीत गा उठते हैं और वृक्ष जाग उठते हैं और जीवन के समस्त रूपों में जागरण ही विद्युत् दौड़ जाती है, ऐसी ही सहज और सरल वह क्रान्ति है। उसे लाना नहीं होता है। वह जो आती है। बस बोध के, होश के द्वार खुले चाहिए।

लेकिन आत्मक्रान्ति के लिए हम जो करते हैं...सदियों-सदियों से कर रहे हैं, वह बिलकुल ही उल्टा है। हम तो बोध(कोनस्सनेस) को ढाँकते हैं। हम जो तथयों और स्वंय के बीच वस्त्रों ही की दीवार खड़ी करते हैं। हमारा सारा तथाकथित व्यक्तित्व(परसोनालिटी) ही ऐसी दीवार है। व्यक्ति (इनडीविडुएल) कहाँ, हम तो बस अभिनय, झूठे चेहरे और मुखौटे...! और इनके ही बीच वह खो गया है जो कि हमारा वास्तविक और मौलिक चेहरा(ओरीजिनल फेस) है। आदमी शरीर पर ही वस्त्र पहने होता, तो भी ठीक था। लेकिन नहीं, उसने तो आत्मा पर भी वस्त्र पहन लिये हैं और उसने तो सारे जीवन को नाटय-मंच बना डाला है। हमारी सारी सभ्यता, और हमारी सारी संस्कृति और क्या है? अभिनय...वस्त्र और वस्त्र! और फिर इस सबमें मनुष्य खो ही गया हो तो आश्चर्य नहीं है। आह! बेचारा मनुष्य! दिन भर में उसे कितने वस्त्र बदलने पड़ते हैं, कितने अभिनय करने पड़ते हैं! और इस सबमें अगर उसकी निजता (इनडिविडुएलिटी) उसका स्वतादात्म्य(आइडेनटीटी) खो जाती हो तो आश्चर्य क्या है?

मनुष्य स्वंय में रह ही नहीं पाता है-वह स्वंय हो ही नहीं पाता है। प्रतिपल गिरगिट की भाँति वह रंग बदलता है। क्योंकि हर स्थिति में,हर घटना में, हर व्यक्ति के साथ उसे भिन्न-भिन्न वस्त्रों और अभिनयों में मिलना पड़ता है। उसके जीवन में एक ही साथ बहुत-से नाटक जो अभिनीत हो रहे हैं। और वह अकेला ही सब नाटकों का प्रमुख पात्र नहीं है- हीरो है। जीवन के नाटक में ऐसा कोई नहीं है, जो प्रमुख पात्र नहीं है। जीवन के नाटक में तो बस हीरो ही हीरो हैं। और यह एक ही व्यक्ति का का असंख्य नाटकों का केन्द्र होना बड़ी विक्षिप्तता (इनसेनीटि) ले आता है। उसे अपने नौकर से दूसरे वस्त्रों मिलना होता है, मालिक से दूसरे वस्त्रों में। पत्नी से दूसरे वस्त्रों में। ऐसे चौबीस घंटे उसे वस्त्र बदलने पड़ते हैं-चेहरे बदलने पड़ते हैं और तब इस भाँति स्वंय को बदलते -बदलते वे यह भूल ही जाता है कि मेरा असली चेहरा क्या है? दूसरों को दिखाने को वह बहुत चेहरे बना लेता है। यह हम सब भली भाँति जानते हैं, क्योंकि हम स्वंय ही दिन भर चेहरे बनाते हैं। हम सब बहुत कुशल अभिनेता हैं। हमारी पूरी दुनिया एक नाटयगृह है। नाटकों में जो अभिनय कर रहे हैं, वे हमसे ज्यादा कुशल नहीं हैं। नाटक में अभिनय करना तो आसान है, क्योंकि साधारणतः अभिनेता अभिनय से भिन्न ही बना रहता है। जीवन में तो अभिनय से अभिन्न ही हो जाना पड़ता है। इसीसे पागलपन पैदा होता है। ये अभिन्नता ही, यह आत्मैक्य और वह भी अनेक अभिनयों से एक ही साथ विक्षिप्तता लाता है।

एक दिन सुबह ही सुबह बर्ट्रेंड रसल के पास एक व्यक्ति आया और बोला : "महानुभव, आप ऐसी-ऐसी किताबें लिखते हैं जिनसे कि मैं बहुत परेशान हो गाया हूँ। पहले परेशानी ही बात तो यही थी कि आपकी किताबें में आप क्या लिखते हैं, यह मेरी समझ में ही नहीं आता था। लेकिन यह भी गनीमत थी : पर रात से तो आपने मुझे और भी कठिपाई में डाल दिया है। रात्रि आपका लिखा हुआ एक वाक्रय पहली बार मेरी समझ में आ गया है। और उससे मैं बहुत ही उलझाव में पड़ गया हूँ। क्योंकि वह वाक्य नितान्त असत्य है।"

रसल तो बहुत हैरान हुआ, फिर भी उसने पूछाः "महाशय, वह कौनसा वाक्य है जो आपकी समझ में आ गया है और जो नितान्त गलत है?" वह व्यक्ति बोला "आपने लिखा है, सीजर मर चुका है। यही एक वाक्य मेरी समझ में आया और यह बिलकुल ही गलत है।"

रसल समझ गया कि यह आदमी या तो पागल है या कियी विश्वविद्यायल के इतिहास-विभाग का अध्यक्ष है, क्योंकि ऐसी खोजपूर्ण बातें या तो पागलों को सूझती हैं या प्रोफेसरों को। सीजर को मरे तो सदियाँ हो चुकी हैं और अब तक इस धारणा का किसी ने भी विरोध नहीं किया है। फिर भी रसल ने उस व्यक्ति से पूछाः "क्या सीजर के जीवित होने का आपके पास कोई प्रमाण है?" वह व्यक्ति बोला "प्रमाण! प्रमाणमैं स्वंय हूँ। क्योंकि मैं ही सीजर हूँ।"

वह व्यक्ति एक अभिनेता था और सीजर का अभिनय करते-करते पागल हो गया था। वह धीरे-धीरे सीजर के अभिनय से अभिन्न ही हो गया था। यही था उसका पागलपन और यही है पागलपन आदमी का भी। हम भी अपने झूठे चेहरों और वस्त्रों और अभिनयों से अभिन्न हो जाते हैं। जिन चेहरों को हम ओढ़ते हैं वे अंततः स्वंय के चेहरे प्रतीत होने लगते हैं। इस भाँथत जिन्हें दूसरों को धोखा देने के लिए ओढ़ा था, उनसे स्वंय को ही धोखा हो जाता है, और इस आत्मवंचना से भरे हुए हम आत्मज्ञान चाहते हैं, तो यह एक असम्भावना (इमपोसीविलिटी) है। आत्मवंचना में आत्मज्ञान सम्भव ही कैसे है? जिसे अपने चेहरे का ही बोध नहीं है, उसे अपनी आत्मा का बोध कैसे हो सकता है? मित्रो,चेहरे उघाड़ो। मुखौटे अलग करो। अभिनय छोड़ों तो ही उसे जाना जा सकता है जो कि आत्मा है। दुर्भाग्य तो यही है कि हम सब अपने-अपने अभिनय में सफल हो जाते हैं, और यही सफलता अभिनय छोड़ने में बाधा बन जाती है। फिर तो अभिनय छोड़ना असफलता जैसा प्रतीत होने लगता है। लेकिन हमें जैसे ज्ञात ही नहीं है कि असत्य सफल कैसे हो सकता है? असत्य ही जब धोखा है तो उसकी सफलता भी धोखा ही हो सकती है। धोखे की नींव पर धोखे के भवन ही तो खड़े हो सकते हैं। लेकिन चूँकि हमारे शेष पड़ोसियों के भवन भी धोखे के ही भवन हैं, इसलिए हमारा धोखे का भवन भी चिन्ता का कारण नहीं बनता है। जहाँ सभी लोग एक ही बीमारी से पीड़ित हों, वहाँ तो उस बीमारी का पता चलना ही बन्द हो जाता है। वहाँ तो जो स्वस्थ हो वही उल्टे बीमार मालूम पड़ सकता है।

मैंने सुना है कि पहाड़ों में छिपा एक छोटा-सा गाँव था, जहाँ कि सभी लाग एकाक्षी थे-काने थे-एक ही आँख वाले थे। उस गाँव में जब कोई बच्चा दो आँख का पैदा हो जात था तो चिकित्सक उसकी एक आँख अलग कर देते थे। हम भी ऐसी ही बस्ती के निवासी हैं। हमारी बस्ती ही आत्मवंचकों ही है। हजारों वर्षों से श्रम करके हमने ही इसका निर्माण किया है। झूठ के यहाँ भवन हैं, पाखण्ड के रास्ते हैं, आत्मवंचना के शिवालय हैं। इसलिए सत्य जब कभी हमारे बीच सत्य जन्मता है तो हम उसे गोली मार देते हैं। असलिए सत्य सूली पर और असत्य सिंहासन पा दिखायी देता है। लेकिन मैं कहता हूँ कि सत्य के लिए भी सिंहासन है और असत्य के लिए सिंहासन भी सूली है। क्योंकि सत्य के साथ सौन्दर्य है, सत्य के साथ शिवत्व है, सत्य के साथ आनन्द है, सत्य के साथ अमृत है। लेकिन सत्य के साथ यह व्यवहार परमात्मा का है। आदमी का व्यवहार तो उल्टा ही है। हम तो एक ही व्यवहार उसके साथ कर सकते हैं-जब वह जिन्दा हो तो हम उसे मार डालें और जब वह मर जाये तो हम उसकी पूजा करें। जिन्दा सत्य को असलिए मार डालना जरूरी हो जात है, क्योंकि वह हम सबकी आलोचना बन जाता है। उसका होना ही...उसकी मौजूदगी ही हमारी निन्दा है। वह है तो हम असत्य हैं, अंधकार हैं। वह है तो हम नहीं हैं। और तब हम क्रोध से भर जाते हैं और क्राइस्ट को सूली पर लटका देते हैं, सुकरात को जहर पिला देते हैं और गांधी को गोली मार देते हैं।

मैं अभी-अभी एक महानगरी में था। प्रश्नोंत्तरों के लिए सभा थी। अहुत से प्रश्न पूछे गये थे, लेकिन उनमें एक बहुत अनूठा था। किसी ने एक कागज पर लिखकर पूछा थाः "आप ऐसी बातेंकह रहे हैं कि आपको गोली क्यों न मार दी जावे?" मैंने कहाः ऐसी भूल मत करना। ऐसी भूल पहले भी और लोग कर चुके हैं। क्योंकि जिसको भी तुम गोली मार देते हो, वह फिर मरता नहीं है। ऐसे वह अमर हो जाता है। और जिसको आज तुम गोली मारते है, कल तुम्हीं फिर उसकी पूजा भी करोगे। गोली मारना पूजा करने का प्रारम्भ है। क्योंकि गोली मारना सत्य की मौजूदगी की स्वीकृति है।" लेकिन जिसकी भी मौजूदगी हमारे वस्त्र छीनती है और हतारे अभिनय को वाष्पीभूत करती है उसे ही मिटा डालने के लिए हमारा मूढ़ चित्त आतुर हो उठता है। यह मूढ़ता ही है। यह बुद्धिमत्ता नहीं है। क्योंकि बुद्धिमान तो उसे मिटाने को नहीं वर्‌न स्वंय को ही आमूल परिवर्तित करने के लिए अभीप्सु हो उठता है। और स्वंय को बदलने के लिए स्वंय की नग्नस्थिति अत्यंत आवश्यक है। सत्य को पाने के लिए झूठ के वस्त्रों को छोड़ने की तैयारी आवश्यक है। सत्य के लिए असत्य को उसके समस्त आवरणों सहित जानने और विदा देने का साहस आवश्यक है। और सबसे बड़ा असत्य व्यक्तित्व का असत्य है। व्यक्ति जो नहीं है, वही वह दिखायी पड़ता है। और जो वह नहीं है, वैसा ही दिखायी पड़ने की सतत्‌ उसकी चेष्टा है।

एक संन्यासी आये थे मेरे पास और कहते थेकि मैं जनता-जनार्दन की सेवा करना चाहता हूँ। मद्दने उनसे कहाः "पहली सेवा तो यह करें कि आप गैरिक वस्त्र छोड़ दें। क्योंकि, संन्यासी तो स्वामी है, वह सेवक कैसे हो सकता है?" वह

संन्यारी तो बहुत हैरान हुए और कहने लगे: "मैं संन्यासी हूँ। मैं ये वस्त्र कैसे छोड़ सकता हूँ? ये तो संन्यासी के वस्त्र हैं।" मैं यह सुन हँसने लगा था और बोला: "संन्यास का वस्त्रों से क्या सम्बन्ध? संसार का तो सम्बन्ध हो भी सकता है, लेकिन संयास का वस्त्रों से क्या सम्बन्ध हो सकता है?"

लेकिन यह संन्यासी जो घर, द्वार, पहरवार और बच्चों को छोड़ने का साहस का सका था, वह भी दो पैसे के रंग में रंगे वस्त्रों को छोड़ने का साहस नहीं कर सका। क्या वस्त्र इतने मूल्यवान हैं? नहीं-वस्त्र तो मूल्यवान नहीं हैं। लेकिन वस्त्रों के बिना हम कुछ भी नहीं रह जाते हैं, क्योंकि हम तो वस्त्रमात्र ही जो हैं। वस्त्रों के अतिरिक्त हमारे पास शायद और कुछ भी नहीं है। वस्त्र ही हमारा कुल जमा व्यक्तित्व है। 'मैं संन्यासी हूँ', 'मैं सम्राट् हूँ'...

क्योंकि मेरे वस्त्र संन्यासी के हैं, क्योंकि मेरे वस्त्र सम्राट् के हैं! और वस्त्र नहीं तो मैं क्या हूँ? वस्त्र हैं तो कुछ हूँ (समबडी)। वस्त्र नहीं तो न कुछ हूँ (नोबडी), और कुछ होने से मनुष्य डरता है, इसलिए वस्त्र छोड़ने से डरता है। लेकिन स्मरण रहे कि जिस होने के पीछे सदा ही न होना छिपा है, वह होना असत्य है, वह होना मिथ्या है। इस मिथ्या के आरपार देखना है। इस मिथ्या अस्तित्व (फाल्स बीइंग) के मिथ्यात्व (फाल्सीटी) को जाना है। क्योंकि तभी और केवल तभी वह जो प्रमाणिक (औथेन्टीक) है वह जो हमारी सत्यात्मा है, उसे जाता और जिया जा सकता है।

इसलिए पहली जरूरत है कि प्रत्तयेक व्यक्ति अपने भीतर खोजे कि मैंने असत्य को तो जन्म नहीं दिया है? अपने व्यक्तित्व को मैंने असत्य की पर्तों से तो नहीं ढाँका है? असत्य का आधार ही तो मेरे जीवन का आधार नहीं है? इसे देखना, इसे बहुत खुली आँखों से जानना जरूरी है। और बड़ी पीड़ा होगी अस बात को जानकर कि मैं क्या हूँ?

लेकिन उस पीड़ा से गुजरना आवश्यक है। क्या हूँ मैं? कैसा पशु हूँ? कैसा नग्न हूँ? कैसी वृत्तियों से भरा हूँ? कैसी घृणासे कैसी हिंसा से? लेकिन हमने तो स्वंय पर ऐसे पर्दे डाल रखे हैं कि कुछ भी पहचानना कठिन हो गया है। एक आदमी भीतर तो गहरी हिंसा से भरा होता है, लेकिन पानी छान के पी लेता है या रात्रि-भोजन छोड़ देता है और मान लेता है कि मैं अहिंसक हो गया हूँ। आह! मनुष्य भी कैसे सस्ते नुस्खे खोजता है और फिर उन्हीं से संतुष्ट भी हो जाता है। क्या अफिंसा इतनी सस्ती है? क्या धर्म इतना सस्ता है? काश! ऐसा होता तो पृथ्वी कभी की अहिंसक हो गयी होती! लेकिन नहीं यह धर्म नहीं, धोखा है... यह अहिंसा नहीं, बस केवल हिंसा पर पर्दे डाल देना है। भीतर हिंसा उबलती ही रहती है...उफनती ही रहती है...वह छने पानी पीने या रात्रि-भोजन त्यागने या मांसाहार छोड़ने से समाप्त नहीं होती है। वह सताप्त हो तो मांसाहार छुट सकता है। लेकिन ऐसे बिना अहिंसक हुए अहिंसक होने का दम्भ जरूर पूरा हो जाता है और दूसरों को हिंसक मान नरकाग्नि मैं सड़ाने और जलाने की हिंसक वृत्ति को भी तृप्ति मिल जाती है।

अहिंसक शास्त्रों में भी नरक के ऐसे रसपूर्ण वर्णन हैं कि उनके भीतर प्रज्ज्वलित हिंसा के लिए किसी और गवाही की कोई जरूरत नहीं रह जाती है। और फिर ऐसे ही अहिंसक अहिंसा की रक्षा के लिए कभी भी हिंसा करने को तत्पर को उठते हों तो आश्चर्य नहीं है। और ऐसे ही हमारे शेष सद्‌गुण भी हैं-ऐसे ही झूठे, सस्ते और ऊपरी। हमारी संस्कृति ही ऐसे झूठों पर खड़ी है। हम सबका दावा है प्रेम करते हैं...लेकिन यह कोई भी नहीं अनुभव करता है कि उसे प्रेम मिलता है! जब सभी प्रेम करते हैं तो फिर सभी को प्रेम मिलता क्यों नहीं है? यह इतना सारा प्रेम आखिर चला कहाँ जात है? और इतने प्रेम करनेवाले लोगों के बावजूद भी जगत् मीं प्रेम का कहीं चि भी क्यों दिखायी नहीं पड़ता है? घृणा दिखायी देती है, द्वेष दिखता है, क्रोध दिखता है, हिंसा दिखती है...युद्ध दिखते हैं, लेकिन प्रेम कहीं भी नहीं दिखायी पड़ता है! शायद हम प्रेम की बातें भर करते हैं और प्रेम का हमग कोई पता ही नहीं है। शरीर

आलिंगन करते हैं, लेकिन प्रेम के झरने अनबहे ही रह जाते हैं। ओंठ प्रेम के गीत गाते हैं लेकिन हृदय की वीणा अस्पर्शित ही रह जाती है। पिता कहता है: मैं बेटे को प्रेम करता हूँ। बेटे भी यही कहते हैं। माँ भी यही कहती है। बेटी भी यही कहती है। पत्नी भी यही कहती है। पति भी यही कहता है। सभी यही कहते हैं, लेकिन प्रेम ही सुगन्ध किसी से भी उठती हुई नहीं मालूम पड़ती है। और कोई पति है, कोई पिता है, कोई पत्नी है, कोई माता है, सभी कोई न कोई हैं और सभी प्रेम करते हैं तो जब पृथ्वी पर सारे लोग प्रेम करते हैं तो घृणा कहाँ से आती है? फिर अप्रेम कौन करता है? फिर घृणा कौन लाता है?

फिर हिंया कौन लाता है? फिर युद्ध कौन जन्मता है? क्या इन सबकी उपस्थिति हमारे प्रेम के हावों को असत्य सिद्ध नहीं कर देती है?

नहीं, हम प्रेम करते ही नहीं हैं। हम तो केवल प्रेम की बातें ही करते हैं। प्रेम की पताका है और घृणा के मन्दिर हैं। फूलों का प्रचार है और काँटों का व्यवसाय है। इसलिए ही तो प्रेम भी चलता है और युद्ध भी खलते हैं। सूर्योदय भी अर्धरात्रि भी है! जीवन भी है और कब्र में निवास भी है। सत्य की ओर जाने वाले को ये सारी नकाबें उतार कर एक तरफ रख देनी हैं। उनमें आग लगा देनी है, ताकि केवल वही शेष बच रहे जो कि खालिस सोना है। प्रेम के मार्ग में, झूठे प्रेम के अतिरिक्त और कोई रुकावट नहीं है। अहिंसा के मार्ग पर झूठी अहिंसा के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। सत्य के मार्ग पर झूठे सत्यों के अतिरिक्त और कोई शत्रु नहीं है। असत्य सत्य को नहीं रोक सकता है, लेकिन झूठा सत्य, सत्य को रोक लेता है। अंधकार प्रकाश के मार्ग में बाधा नहीं है...वह तो केवल प्रकाश का आभीव है। लेकिन झूठा प्रकाश जरूर बाधा है और वही बाधा है। क्योंकि उसके कारण सच्चे प्रकाश की खोज की आवश्कता ही नहीं रह जाती है।

अपनी अहिंसा को देखकर देखो। अपने प्रेम को उघाड़कर देखो और अपने धर्म को भी। ताकि यदि वे असत्य हों तो उनका असत्य दिखायी पड़ सके। क्योंकि, उनके दिखायी पड़ते ही जो सत्य है ़उसकी खोज प्रारम्भ हो जाती है। वस्तुतः तो असत्य का असत्य दिखायी पड़ जाना सत्य का ही है। वह सत्य का प्रारम्भ है। वह सत्य के बीज का अँकुरित हो जाना है।

इसलिए मित्रो, जब तक हम इन गहरे लेकिन प्राचीन असत्यों को उघाड़कर नहीं देखेंगे तब तक पृथ्वी पर एक नयी मनुष्यता का, सच्ची मनुष्यता का जन्म नहीं हो सकता है। जीवन के असत्यों का दर्शन, सत्य की पहली किरण का जन्त बनता है। और जहाँ प्रकाश की एक भी किरण है,

वहाँ से सूर्श तक की यात्रा भी हो सकती है।